प्राप्ति स्थान

१ साहित्य शोध विभाग
महावीर भवन सवाई मानसिंह हाईवे
जयपुर

२ मैनेजर श्रीमहावीरजी
श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

प्रथम संस्करण मई १९६६ १० प्रति

मूल्य ५

मुद्रक :
कुमार प्रिन्टर्स
मनिहारों का रास्ता जयपुर

विषय सूची

प्रकाशकीय

'हिन्दी पद सग्रह' को पाठकों के हाथों मे देते हुये मुझे प्रसन्नता हो रही है। इस सग्रह मे प्राचीन जैन कवियों के ४०१ पद दिये गये हैं जो मुख्यत भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म शृ गार एव विरह आदि विषयों पर आधारित हैं। कबीर, मीरा, सूरदास एव तुलसी आदि प्रसिद्ध हिन्दी कवियों के पदों से हिन्दी जगत् खूब परिचित है तथा इन भक्त कवियों के पदों को अत्यधिक आदर के साथ गाया जाता है लेकिन जैन कवियों ने भी भक्ति एव अध्यात्म सम्बन्धी सैकडों ही नहीं हजारों पद लिखे हैं जिनकी जानकारी हिन्दी के बहुत कम विद्वानों को है और सभवत यही कारण है कि उनका उल्लेख नहीं के बराबर होता है। प्रस्तुत 'पद सग्रह' के प्रकाशन से इस दिशा मे हिन्दी विद्वानों को जानकारी मिलेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत सग्रह महावीर ग्रथमाला का दसवा प्रकाशन है। साहित्य शोध विभाग द्वारा इससे पूर्व ९ पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। उनका साहित्य जगत् मे अच्छा स्वागत हुआ है। देश विदेश के विश्वविद्यालयों मे इनकी माग शनै शनै बढ रही है और उनके सहारे बहुत से विश्वविद्यालयों मे जैन साहित्य पर रिसर्च भी होने लगा है। शोध विभाग के विद्वानों द्वारा राजस्थान के ८० से अधिक शास्त्र भण्डारों की ग्रथ सूचिया

तैयार करवी गयी है जो एक बहुत बड़ा काम है और जिसके द्वारा सैकड़ों अज्ञात ग्रंथों का परिचय प्राप्त हुआ है। वास्तव में ग्रंथ सूचियों ने साहित्यान्वेषण की दिशा में एक दृढ़ नींव का कार्य किया है जिसके आधार पर साहित्यिक इतिहास का एक सुन्दर महल खड़ा किया जा सकता है। इसी तरह राजस्थान के प्राचीन मन्दिरों एवं शिलालेखों का कार्य भी है जो जैन इतिहास के विलुप्त पृष्ठों पर प्रकाश डालने वाला है। शिलालेखों के कार्य में भी काफी प्रगति हो चुकी है और इसके प्रथम भाग का शीघ्र ही प्रकाशन होने वाला है।

साहित्य शोध विभाग के कार्य को और भी अधिक गति शील बनाने के लिए क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी प्रयत्नशील है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विद्वानों का एक शोध संस्था (Research Board) शीघ्र ही गठित करने की योजना भी विचाराधीन है। शोध विभाग की एक त्रैवार्षिक साहित्यान्वेषण एवं प्रकाशन की योजना भी बनायी जा रही है जिसके अनुसार राजस्थान के अवशिष्ट शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची का कार्य पूर्ण कर लिया जावेगा।

सुप्रसिद्ध विद्वान डा० रामसिंहजी तोमर अध्यक्ष हिन्दी विभाग विश्व भारती शान्तिनिकेतन के हम आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिख कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। हम श्री पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के भी पूर्ण आभारी हैं जिनकी सतत प्रेरणा एवं निर्देशन में हमारा

साहित्य शोध विभाग कार्य कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान सम्पादक डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल एवं उनके सहयोगी श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ एवं श्री सुगनचन्द जी जैन का भी हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं जिनके परिश्रम से यह पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके हैं।

गेंदीलाल साह
मन्त्री

दिनांक २०-४-६४

प्राक्कथन

जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भारतीय साहित्य और संस्कृति को महत्वपूर्ण ढंग से समृद्ध किया है। संस्कृत प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट कृतियों की रचनाएं जैनाचार्यों ने लिखी हैं। दर्शन धर्म कथा के क्षेत्र में भी उनका योगदान बहुत श्रेष्ठ है। सभी क्षेत्रों में जो उनकी कृतियां मिलती हैं उन पर जैन चिंतन की अपनी विशेषता की स्पष्ट छाप मिलती है और यह छाप है जैन धर्म और नीति विषयक दृष्टिकोण की। इसी कारण जैन साहित्य जैनेतर साहित्य की तुलना में कुछ शुष्क प्रतीत होता है। सौंदर्य कल्पना तथा भाषा की दृष्टि से जैन कथा साहित्य अनुपम है। 'वसुदेवहिंडी' 'कुवलयमाला' तथा "समराइच्च कहा' आदि ऐसी कृतियां हैं जिन पर कोई भी देश उचित गर्व कर सकता है। अपभ्रंश में भी 'पउम चरिउ' पुष्पदंत कृत 'महापुराण' भी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं।

हिन्दी में भी जैनाचार्यों ने अनेक कृतियां लिखी हैं। अर्द्ध कथानक जैसी कृतियों के यथाधिक विद्वत्तापूर्ण संस्करण हो चुके हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जैन रचनाओं का न्यूनाधिक रूप में उल्लेख मिलता है किन्तु भाषा और [illegible] की दृष्टि से सही मूल्यांकन अभी [illegible] गया है। [illegible] हैं-जैन

साहित्य की एकरसता सर्वसाधारण के लिए उसका उपलब्ध न होना और स्वय जैन समाज की उपेक्षा। प्रस्तुत सग्रह मे डा० कासलीवाल जी ने जैन कवियो की कुछ रचनाओं को सग्रहीत किया है। ये रचनाएँ पद शैली की है। हिंदी, मैथिली, बगला तथा अन्य उत्तर भारत की भाषाओ मे पदशैली मध्यकालीन कवियों की प्रिय शैली रही है। पदो को 'राग रागनियों' का शीर्पक देकर रखने की प्रथा कितनी प्राचीन है कहना कठिन है। किन्तु कविता और सगीत का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है — इतना ही प्राचीन जितनी कविता प्राचीन है। भारत के नाट्य शास्त्र के ध्रुवागीत, नाटको में विभिन्न ऋतुओं, पर्वों, उत्सवों आदि को सकेत करके गाए जाने वाले गीतों मे इसकी परम्परा का प्राचीनतम साहित्यिक प्रयोग मिलता है। छद और राग में कोई सबध रहा होगा किन्तु छद शास्त्रियो ने इस पर बहुत ही कम विचार किया है। मैथिल कवि लोचन की रागतरगिणी मे इस विषय पर थोडा सा सकेत मिलता है जो हो रागबद्ध पदों की दो परम्पराऐं मिलती हैं–एक सरस और दूसरी उपदेश प्रधान। सरस परम्परा में साहित्यिक रस और मानव अनुभूति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। उस पद परम्परा मे विद्यापति, व्रज के कृष्ण भक्त कवि, मीरा आदि प्रधान हैं। दूसरी उपदेश और नीति प्रधान धारा का प्रारम्भिक स्वरूप साधना परक बौद्ध सिद्धों के पदों में देखा जा सकता है। कबीर के पदों मेसाधना परक स्वर प्रधान होते हुये भी काव्य की झलक मिलती है। अन्य सतों

प्राक्कथन

जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भारतीय साहित्य और संस्कृति को महत्वपूर्ण ढंग से समृद्ध किया है। संस्कृत प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट कृतियों की रचनाएं जैनाचार्यों ने लिखी हैं दर्शन धर्म कला के क्षेत्र में भी उनका योगदान बहुत श्रेष्ठ है। सभी क्षेत्रों में जो उनकी कृतियां मिलती हैं उन पर जैन चिंतन की अपनी विशेषता की स्पष्ट छाप मिलती है और वह छाप है जैन धर्म और नीति विषयक दृष्टिकोण की। इसी कारण जैन साहित्य जैनेतर साहित्य की तुलना में कुछ पृथक प्रतीत होता है। सौंदर्य कल्पना तथा भाषा की दृष्टि से जैन कथा साहित्य अनुपम है। 'वसुदेवहिंडी' 'कुवलयमाला कहा' "समराइच्च कहा' आदि ऐसी कृतियां हैं जिन पर कोई भी देश गर्व कर सकता है। अपभ्रंश में भी पउम चरिउ पुष्पदंत कृत "महापुराण भी महत्वपूर्ण कृतियां हैं।

हिन्दी में भी जैनाचार्यों ने अनेक कृतियां लिखी हैं। अब कथानक ऐसी कृतियों के प्रामाणिक विद्वत्तापूर्ण संस्करण हो चुके हैं हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जैन रचनाओं का न्यूनाधिक रूप में उल्लेख मिलता है किन्तु भाषा और भावधारा की दृष्टि से सही मूल्यांकन अभी नहीं हुआ है। इसके कारण हैं–जैन

दास के समकालीन थे। हिन्दी साहित्य के इतिहासों मे जहां भक्ति काल की सीमाएँ समाप्त होती है उसके पश्चात भी भक्ति की धारा प्रवाहित होती रही। और जैन साहित्य मे तो उस धारा का कभी व्यतिक्रम हुआ ही नहीं। हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे जैन भक्ति धारा का भी सम्यक् अध्ययन होना आवश्यक है, और जैसे जैसे जैन कृतिकारों की रचनाएँ प्रकाशन मे आती जायेगी विद्वानों को इस धारा का अध्ययन करने मे और सुगमता होगी।

प्रस्तुत सग्रह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है जैन तत्त्वदर्शन और मध्ययुग की सामान्य भक्ति-भावना का इन पदों में अच्छा समन्वय मिलता है। आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत, मोक्ष-निर्वाण जैसे गभीर विषयों का क्रमबद्ध विवेचन इन पदों के आधार पर किया जा सकता है इनके सम्बन्ध मे जैन दृष्टिकोण को इन पदों मे ढूढना थोडा कठिन है। उपदेश और उद्बोधन की प्रधानता है। मध्य युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, नाम स्मरण का महात्म्य। हमारे सग्रह मे अनेक पदो मे नाम स्मरण को भव सतति से मुक्त होने का साधन बताया गया है।—

"हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै" (पद २२०) मध्ययुग के प्राय सभी सप्रदायो मे भक्ति के इस प्रकार की बड़ी महिमा है। प्रभु और महापुरुषों का गुणगान भी भक्ति का महत्त्वपूर्ण प्रकार है। अनेक पदों मे 'नेमि के जीवन का भावोच्छ्वास पूर्ण शब्दों में वर्णन किया गया है। राजुल' के वियोग और नेमि के "मुक्ति वधू" मे निमग्न होने के वर्णनो मे शात और उदासीनता दोनों का बडा ही समवेदनात्मक चित्रण हुआ है (पद ३६)।

क पदों में काव्य की मात्रा बहुत ही कम है। किन्तु उपदेश और नीति के लिए दोहा का ही प्रधान रूप से मध्ययुग के साहित्य में प्रयोग हुआ है। जैन पदों में उपदेश की प्रधानता है। वास्तव में समस्त जैन साहित्य में धर्म और उपदेश क तत्वों का विचित्र सम्मिश्रण मिलता है। जैन साहित्य की समीक्षा करते समय जैन कवियों के काव्य विषयक दृष्टिकोण को सामने रखना आवश्यक है—कवि और कविता के सम्बन्ध में जिनसेनाचार्य ने कहा है—

> त एव कवयो लोके त एव विचक्षणा।
> येषां धर्मकथाङ्गत्व भारती प्रतिपद्यते॥
> *धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।*
> शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते॥

हिंदी जैन साहित्य का अध्ययन इसी दृष्टि से होना चाहिये।

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में भक्ति की धारा सबसे पुष्ट है उसके सगुण निर्गुण (संत सूफी) दो रूप हैं। अभी तक जन संप्रदायानुयायियों की भक्ति विषयक रचनाओं का भावधारा की दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है। बा० कामताप्रसाद के नद समह' में भक्ति विषयक रचनायें ही प्रधान रूप से उद्धृत की गई हैं। इन रचनाओं का रचनाकाल सोलहवीं शती से लेकर उन्नी सवीं शती का उत्तरार्ध है। भट्टारक रत्नकीर्ति गोस्वामी तुलसी-

प्रस्तावना

काव्य रूप एवं भाव धारा की दृष्टि से जैन कवियों की अपभ्रंश एवं हिन्दी कृतियों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। काव्य के इन विभिन्न रूपों में प्रबन्ध काव्य, चरित, पुराण, कथा, रासो, धमाल, बारहमासा, हिण्डोलना, बावनी, सतसई, वेलि, फागु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल आदि कवियों की अपभ्रंश कृतियां किसी भी भाषा की उच्चस्तरीय कृतियों की तुलना में रखी जा सकती हैं। इसी तरह रल्ह, मधारु, ब्रह्म जिनदास, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास, आनन्दघन, भूधरदास आदि हिन्दी कवियों की रचनायें भी अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। काव्य के विभिन्न अंगों में निबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त जैन कवियों ने कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसी के समान पद साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा है जिनके प्रकाशन की आवश्यकता है। दो हजार से अधिक पद तो हमारे संग्रह में है और इनसे भी दुगने पदों का अभी और संकलन किया जा सकता है।

गीति काव्य की परम्परा

प्राकृत साहित्य में गीतों की परम्परा निश्चित रूप से उपलब्ध होती है। न केवल गीतों की परम्परा मिलती है वरन् शास्त्रों के वर्गीकरण में भी गेय पदों को स्थान मिला है। इसी तरह अपभ्रंश में भी गीतों की

अनेक प्रकार के कष्ट सहकर तप करने की अपेक्षा शुद्ध मन से प्रभु का स्मरण हृदय को पवित्र कर देता है और परम पद की प्राप्ति का यह सुगम साधन है– यह भाव हिंदी के भक्त कवियों की रचनाओं का अत्यन्त प्रिय भाव है। जैन भक्तों ने भी बार बार इसका उल्लेख किया है —

प्रभु के चरन कमल रमि रहिए।
भक्त वच्छल-चरन प्रभुता सुख सो मन मंडित चहिये।

विषयों का त्याग करने तथा उनके न त्यागने से भव जाल में पड़कर दुःख भोगने की भावनाओं का भक्ति–साहित्य में प्राय उल्लेख मिलता है। जैन कवियों के पद भी इसके अपवाद नहीं हैं। संक्षेप में भक्तिकाव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक रूप में इन पदों में मिलती हैं।

संगृहीत पदों में भक्ति धारा के वैष्णव कवियों के समान यथार्थ सरसता नहीं मिलती किन्तु इनमें कवि-कल्पना एवं मन को प्रसन्न करने वाले काव्यगुणयुक्त प्रयोगों का अभाव नहीं है। भावधारा और भाषा की दृष्टि से भी इस साहित्य का अध्ययन होना चाहिये। आशा है प्रस्तुत संग्रह जैन भक्तिधारा के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

डा० रामसिंह तोमर

दिनांक १८-११-६१

रेंगतेण रमत रमतैं मथउ घरिउ भमतु अणतैं ।
मदीरउ तोडिवि आवहिउ
अद्धविरोलिउ दहिउ पलोहिउ ।
का वि गोपि गोविन्दहु लग्गी
एण महारी मथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देउ आलिगणु,
ण तो मा मोहणहु मे मगणु ।

उक्त पद का हिन्दी अनुवाद महापण्डित राहुल ने निम्न शब्दों मे किया है—

धूली धूसरेहि वर मुक्त शरेहि तेहि मुरारिहि ।
क्रीडा-रस वशेहि गोपालक-गोपी हृदयहारिहि ।
रेंगतेहि रमत रमते, पथश्र घरिउ भ्रमत अनते ।
मटीरउ तोडिय आ वहिउ अर्ध विलोलिय दधिम पलोहिउ ।
कोई गोपि गोविंदहि लागी, इनहि हमारी मेथनि भोगी
एतह मोल देउ आलिगन, ना तो न आवहु मम आगन ।

हिन्दी के विकास के साथ साथ इस भाषा में सगीत प्रधान रचनायें लिखी जाने लगी । जैन कवियों ने प्रारम्भ में छोटी छोटी रचनायें लिख कर हिन्दी साहित्य को विकसित होने में पूर्ण सहयोग दिया । हिन्दी में सर्व प्रथम पद की उत्पत्ति कब हुई, अभी खोज का विषय है । वैसे पदों के प्रधान रचयिता कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास आदि माने जाते हैं । ये सब भक्त कवि थे इसलिये अपनी रचनायें गाकर सुनाया करते थे । पद विभिन्न छन्दों से मुक्त होते हैं और उन्हें राग रागनियों में गाया जाता

आदिनाथ के स्तवन के रूप में लिखा हुआ इनका एक पद बहुत सुन्दर एव परिष्कृत भाषा में है। इसी तरह १६ वीं शताब्दी में होने वाले छीहल, पूनो, बूचराज, आदि कवियों के पद भी उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत सग्रह में हमने सवत् १६०० से लेकर १६०० तक होने वाले कवियों के पदों का सग्रह किया है। वैसे तो इन ३०० वर्षों में सेकड़ों ही जैन कवि हुये हैं जिन्होंने हिन्दी में पद साहित्य लिखा है। अभी हमने राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्र थ सूची चतुर्थ भाग [1] में जिन ग्र थो की सूची दी है उनमें १८० से भी अधिक जैन कवियों के पद उपलब्ध हुये हैं किन्तु पद सग्रह में जिन कवियों के पदों का सकलन किया गया है वे अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इन कवियो ने देश में आध्यात्मिक एव साहित्यिक चेतना को जाग्रत किया था और उसके प्रचार म अपना पूरा योग दिया था। १७वी शताब्दी में और इसके पश्चात् हिन्दी जैन साहित्य में अध्यात्मवाद की जो लहर दौड गयी थी इस लहर के प्रमुख प्रवर्तक हैं कविवर रूपचन्द एव बनारसीदास। इन दोनों के साहित्य ने समाज में जादू का कार्य किया। इनके पश्चात् होने वाले अधिकाश कवियों ने अध्यात्म एव भक्ति धारा में अपने पद साहित्य को प्रवाहित किया। भक्ति एव अध्यात्म का यह क्रम १६वीं शताब्दी तक उसी रूप में अथवा कुछ २ रूप परिवर्तन के साथ चलता रहा।

---

[1] श्री महावीरजी क्षेत्र के जैन साहित्य शोध सस्थान की ओर से प्रकाशित

है इसलिये सभी हिन्दी कवियों ने विभिन्न राग वाले पदों को अधिक निबद्ध किया। इनसे इन पदों का इतना अधिक प्रचार हुआ कि कबीर मीरा एवं सूर के पद घर घर में गाये जाने लगे।

जैन कवियों ने भी हिन्दी में पद रचना करना बहुत पहिले से प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि वैराग्य एवं भक्ति का उपदेश देने में ये पद बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त जैन शास्त्र सभाओं में शास्त्र प्रवचन के पश्चात् पद एवं भजन बोलने की प्रथा सैकड़ों वर्षों से चल रही है इसलिये भी जनता इन पदों की रचना में अत्यधिक रुचि रखती आ रही है। राजस्थान के सम्पूर्ण भण्डारों की एवं विशेषतः नागौर ईडर आदि के शास्त्र भण्डारों की पूरी छानबीन न होने के कारण अभी सबसे प्रथम कवि का नाम तो नहीं लिया जा सकता लेकिन इतना अवश्य है कि १५ वीं शताब्दी में हिन्दी पदों की रचना सामान्य बात हो गई थी। १५ वीं शताब्दी के प्रमुख सन्त सकलकीर्ति द्वारा रचित एक पद देखिये—

तुम चौकमो नेम जी तोरण पधारिया
बालक पन बन ब्याहन आये उग्रसेन की बाइसीम।
राजमती विनती कर जोरैं नेम मनाय मानत न हीया।
राजमती स्वामिन सु वीनो गीरनार सूवर ध्यान धरीया।
सकलकीर्ति प्रभु तन कारी करये जीव उपगार रहिया।

सकलकीर्ति के पश्चात् ब्रह्म जिनदास के पद भी मिलते हैं।

---

[1] आमेर शास्त्र भण्डार गुटका संख्या ३ — पत्र संख्या ६१

१– भक्तिपरक पद
२– आध्यात्मिक पद
३– दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पद
४– शृंगार एवं विरहात्मक पद
५– समाज चित्रण वाले पद

इन का संक्षिप्त परिचय निम्न रूप से दिया जा सकता है —

भक्तिपरक पद

जैन कवियों ने भक्तिपरक पद खूब लिखे हैं। इन कवियों ने तीर्थंकरों की स्तुति की है जिनकी महिमा वचनातीत है। संसार का यह प्राणी उस प्रभु के विविध रूप देखता है लेकिन उनका यह देखना ऐसा ही है जैसे अन्धे पुरुष अपने मत की पुष्टि के लिए हाथी की विभिन्न प्रकार की कल्पना करके झगड़ने लगते हैं .

विविध रूप तव रूप निरूपत, बहुतै जुगति बनाई।
कलपि कलपि गज रूप अन्ध ज्यौं झगरत मत समुदाई।'

कविवर रूपचन्द

कवि बुधजन इतना ही कह सके हैं कि जिनकी महिमा को इन्द्रादिक भी नहीं पा सकते उनके गुनगान का वह कैसे पार पा सकता है।

प्रभु तेरी महिमा वरणी न जाई।
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत, मैं कछु पार न पाई ॥

कविवर रूपचद ने एक दूसरे पद में प्रभु-मुख का वर्णन करते हुए लिखा है उस मुख की किससे उपमा दी जासकती है वह अपने समान अकेला ही

पदों का विषय-वर्गीकरण

जैन कवियों ने पदों की रचना मुख्यतः जीवात्मा को जाग्रत रखने तथा उसे कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग में लगाने के लिये की है। कवि पदों से अपने जीवन को सुधारता है इसलिये बहुत से पद वह अपने को सम्बोधित करते हुये लिखता है और फिर वह यह भी चाहता है कि संसार के प्राणी भी उसी का अनुसरण करें। उसे भगवद् भक्ति के लिए प्रेरित इसी उद्देश्य से करता है कि उनके अवलम्बन से उसे सुमार्ग मिल जावे तथा उसके शुद्धोपयोग प्रकट हो सके। वह तो यह स्वयं जानता है कि परमात्मा न तो किसी को कुछ दे सकते हैं और न किसी से कुछ ले ही सकते हैं फिर भी प्रत्येक जैन कवियों ने परमात्मा की भक्ति में पर्याप्त संख्या में पद लिखे हैं। यद्यपि वे सगुण एवं निर्गुण के चक्कर में नहीं पड़े हैं। क्योंकि उनका जो रूप वे जानते हैं वही है। तीर्थंकर अवस्था में यद्यपि उनके अनेकों वैभवों की कल्पना की है फिर भी उन्हें शारीराश्रित कह कर अधिक महत्व नहीं दिया है। इन पदों में सरलता संगीतात्मकता एवं भावप्रवणता इतनी अधिक है कि उन्हें सुनकर पाठकों का प्रभावित होना स्वाभाविक है। पदों के पढ़ने अथवा सुनने से मनुष्य को आत्मिक सुख का अनुभव होता है। अपने किये हुये कार्यों की आलोचना एवं भविष्य में आत्ममय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा मिलती है। सामान्य रूप से इन पदों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है:—

जानने के लिये कहा है। यह 'आतम ज्योति' सभी को प्रकाशित करती है-

' जैसी उज्वल आरसी रे तैसी आतम जोत।
काया करमनसों जुदी रे, सबको करै उदोत ॥

आत्मा का रूप अनोखा है तथा यह प्रत्येक के हृदय में निवास करता है वह दर्शन ज्ञानमय है तथा जिसकी उपमा तीनों लोकों के किसी पदार्थ से नहीं दी जा सकती है.

आतम रूप अनुपम है घट मांहि विराजै।
केवल दर्शन ज्ञान में थिरता पद छाजै हो।
उपमा को तिहु लोक में, कोउ वस्तु न राजै हो ॥

'कवि द्यानतराय' ने आत्मा को पहिचान करके ही कहा है कि सिद्धक्षेत्र में विराजमान मुक्तात्मा का स्वरूप इसने भली प्रकार जान लिया है —

अब हम आतम को पहिचाना
जैसे सिद्ध क्षेत्र में राजै, तैसा घट में जाना।

'कवि बुधजन' ने भी आत्मा को देखने की घोषणा करदी है। उनके अनुसार आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है तथा ज्ञान दर्शन मय है। जो नित्य निरंजन है। जिसके न क्रोध है न माया है एवं न लोभ न मान है।

अब हम देखा आतम राम।
रूप परस रस गंध न जामें, ज्ञान दरश रस माना।

जानने के लिये कहा है। यह 'आतम ज्योति' सभी को प्रकाशित करती है—

जैसी उज्वल आरसी रे तैसी आतम जोत।
काया करमनसों जुदी रे, सबको करै उदोत ॥

आत्मा का रूप अनोखा है तथा वह प्रत्येक के हृदय में निवास करता है वह दर्शन ज्ञानमय है तथा जिसकी उपमा तीनों लोकों के किसी पदार्थ से नहीं दी जा सकती है

आतम रूप अनुपम है घट मांहि विराजै।
केवल दर्शन ज्ञान में थिरता पद छाजै हो।
उपमा को तिहु लोक में, कोउ वस्तु न राजै हो॥

'कवि द्यानतराय' ने आत्मा को पहिचान करके ही कहा है कि सिद्धक्षेत्र में विराजमान मुक्तात्मा का स्वरूप हमने भली प्रकार जान लिया है —

अब हम आतम को पहिचाना
जैसे सिद्ध क्षेत्र में राजै, तैसा घट में जाना

'कवि बुधजन' ने भी आत्मा को देखने की घोषणा करदी है। उनके अनुसार आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है तथा ज्ञान दर्शन मय है। जो नित्य निरंजन है। जिसके न क्रोध है न माया है एवं न लोभ न मान है।

अब हम देखा आतम राम।
रूप परस रस गंध न जामें, ज्ञान दरश रस माना।

की है :—

करो अनुग्रह अब मुझ ऊपर मेटो अब उरझेरा ।
जगतराम कर जोड़ कीनवे राखो चरणन चेरा ॥

लेकिन कवि दौलतराम ने स्पष्ट शब्दों में भव पीर को हरने की प्रार्थना की है । उन्होंने कहा है "मैं दुख तपित दयामृत सागर लखि आयो तुम तीर तुम परमेश मोक्ष मग दर्शक मोह दवानल नीर ॥

आध्यात्मिक पद

पं रूपचन्द बनारसीदास जगतराम भूधरदास द्यानतराय एवं बुधजन आदि कुछ ऐसे कवि हैं जिनके अधिकांश पद किसी न किसी रूप में अध्यात्म विषय से ओत-प्रोत हैं । वे कविगण आत्मा एवं परमात्मा के गुणगान में ऐसे रमे हुये हैं कि उनका प्रत्येक शब्द आध्यात्मिकता की छाप लेकर निकला है । ऐसे आध्यात्मिक पदों को पढ़ने से हृदय को शान्ति मिलती है एवं आत्म-सुख का अनुभव होने लगता है ।

आत्मा की परिभाषा बतलाते हुये जगतराम ने कहा है कि आत्मा न गोरा है न काला है वह तो ज्ञानदर्शन मय चिदानन्द स्वरूप है तथा वह सभी से भिन्न है —

नहिं गोरो नहिं कारो चेतन अपनो रूप निहारो ।
दर्शन ज्ञान मयी चिन्मूरत सकल करम ते न्यारो रे ॥

'द्यानतराय ने हृदय के आकाश चमकती हुई आत्म ज्योति को

मोदू भाई देखि हिये की आंखें ।
जो करषै अपनी सुख सम्पति, भ्रम की सम्पति नासैं ॥

* * * * * *

मोदू भाई समुझ सबद यह मेरा ।
जो तू देखैं इन आंखिन सों, तामैं कछू न तेरा ।

बनारसीदास आगे चल कर कहते हैं कि यह जीव सदा अकेला है । यह जो कुटुम्ब उसे दिखाई देता है वह तो नदी नाव के संयोग के समान है । यह सारा संसार ही असार है तथा जुगनू के खेल (चमक) के समान है । सुख सम्पत्ति तथा सुन्दर शरीर जल के बुदबुदे के समान थोडे समय में नष्ट हो जाता है ।

चेतन तू तिहुँकाल अकेला ।
नदी नाव संजोग मिले, ज्यों त्यों कुटम्ब का मेला ।
यह संसार असार रूप सब, जो पेखन खेला ।
सुख सम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनसत नाही बेला ।

लेकिन जगतराम ने इसे मोंदू न कहकर सयाना कहा है तथा प्यार दुलार के साथ जड़ चेतन का सम्बन्ध बतलाया है ।

रे जिय कौन सयाने कीना ।
पुद्गल के रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड़ जु विचारा ।
काम भया अति हीना ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक ।
मूरति वहै प्रवीना ॥

जो किसी भी पाठक के सहज ही समझ में आ सकता है आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है लेकिन वह अपनी शक्ति की पहिचान नहीं पाता है। इसके लिये इन कवियों ने अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए भी कितने ही पद लिखे हैं। कवि 'रूपचन्द' ने एक पद में कहा है:— हे जीव! तू व्यर्थ ही में क्यों उदास हो रहा है? तू अपनी स्वाभाविक शक्तियों को सम्भाल करके मोक्ष क्यों नहीं चला जाता? एक दूसरे पद में इसी कवि ने लिखा है कि हे जीव! तू पुद्गल से क्यों स्नेह बढ़ा रहा है। अपने विवेक को भूलकर अपना २ ही करता रहता है —

चेतन काहे को अलसात।
सहज शक्ति सम्हारि आपनी क्यों न शिवपुर जात।

* * * * * *

चेतन परसौं प्रेम बढ़्यो।
स्वपर विवेक बिना भ्रम भूल्यो मैं मैं करत रह्यो।

एक अन्य पद में भी इस जीवात्मा को कवि गंवार कह कर सम्बोधित करता है तथा उसे शक्ति सम्हाल कर कुछ उद्यम करने के लिये प्रोत्साहित करता है।

बनारसीदास जी ने इस जीवात्मा को भौंदू कह कर सम्बोधित किया है तथा उसे हृदय की आंखें न खोलने के लिये काफी फटकारा है। वे कहते हैं कि यथार्थ में जो वस्तु इन आंखों से देखी जाती है उसमें इस जीव का कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

भोंदू भाई देखि हिये की आँखें ।
जो करषै अपनी सुख सम्पति, भ्रम की सम्पति नाखैं ॥

*　　*　　*　　*　　*　　*

भोंदू भाई समुझ सबद यह मेरा ।
जो तू देखैं इन आंखिन सों, तामैं कछू न तेरा ।

बनारसीदास आगे चल कर कहते हैं कि यह जीव सदा अकेला है। यह जो कुटुम्ब उसे दिखाई देता है वह तो नदी नाव के संयोग के समान है। यह सारा संसार ही असार है तथा जुगनू के मेल (चमक) के समान है। सुख सम्पत्ति तथा सुन्दर शरीर जल के बुदबुदे के समान थोड़े समय में नष्ट हो जाता है।

चेतन तू तिहुँकाल अकेला ।
नदी नाव संजोग मिले, ज्यों त्यों कुटंब का मेला ।
यह संसार असार रूप सब, ज्यों पेखन खेला ।
सुख सम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनसत नाही बेला ।

लेकिन जगतराम ने इसे भोंदू न कहकर सयाना कहा है तथा प्यार दुलार के साथ जड़ चेतन का सम्बन्ध बतलाया है।

ए जिय कौन सयाने कीना ।
　　　　पुदगल के रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड़ जु विचारा ।
　　　　काम भया अति हीना ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक ।
　　　　मूरति रहे प्रवीना ॥

आत्मा की वास्तविक स्थिति बतला कर तथा मला पुष्ट करने के पश्चात् उसे सुदृढ़ करने के लिये संसार का स्वरूप समझाते हैं तथा कहते हैं कि यह संसार घन की छाया के समान है। स्त्री पुत्र मित्र शरीर एवं सम्पत्ति तो कर्मोदय से एकत्रित हो गये हैं। इन्द्रियों के विषय तो बिजली की चमक के समान हैं जो देखते २ नष्ट हो जाती है।

जगत तन दौलत घन की छाया।
पुत्र कलत्र मित्र तन सम्पति,
उदय पुद्गल जुरि आया।
इन्द्रिय विषय लहरि तड़ता है
देखत जाय विलाया॥

कवि फिर समझाते हैं कि यह संसार तो असार है ही पर इस प्रकार का (मानव) जन्म भी बार २ नहीं मिलता। यह मनुष्य भव बड़ी ही कठिनता से प्राप्त हुआ है और वह चिन्तामणि रत्न के समान है जिसको यह अज्ञानी जीव (कौवे के उड़ाने हेतु) सागर में डाल देता है। इसी तरह यह उस अमृत के समान है जिसे यह प्राणी पीने के बजाय पांव धोने के काम में लेता है। कवि द्यानतराय ने इन भावों को सुन्दर शब्दों में लिखा है उन्हें पढ़िये —

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
कठिन कठिन लह्यो मानुष भव
विषय तजि मति हार।
पाय चिन्तामन रतन शठ
छिपत उदधि मझार॥

कुटुम्ब काज सब लागत फीके।
नैक न भावत आन ॥
अब तो मन मेरो प्रभु ही के।
लग्यो है चरन कमलान ॥
तारन तरन विरद है जिनको।
यह कीनी परमान ॥
वख्तराम हमकू हूँ तारोगे।
करुणा कर भगवान ॥

इस प्रकार राजुल नेमि का यह वर्णन अध्यात्म एव वैराग्य के गुण गाने वाले साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है ।

दार्शनिक एव सैद्धान्तिक पद

भक्ति एव अध्यात्म के अतिरिक्त बहुत से पदो में दार्शनिक चर्चा की गयी है क्योंकि दर्शन का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध है तथा धर्म की सत्यता दर्शन-शास्त्र द्वारा सिद्ध की जाती रही है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा अनादि है पुद्‌गल कर्मों के साथ रहने से इसे ससार का परिभ्रमण करना पड़ता है। किन्तु यदि इनसे छुटकारा मिल जावे तो फिर दुबारा शरीर धारन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों को लेकर रचे हुये बहुत से पद इस सग्रह में मिलेंगे। अनेकान्त द्वारा वस्तु के स्वभाव का सम्यक् रीति से जानाजा सकता है। इसी का वर्णन करते हुये 'छत्र' कवि ने अनेकान्त के रहस्य को अपने पदों में समझाया है। आत्मा का वास्तविक ज्ञान होने के पश्चात्

भूधरदास ने भी नेमि के बिना राजुल का हृदय कितना गर्म रहता है इन्हीं भावों को अपने पद में व्यक्त किया है।

नेमि बिना न रहै मेरो जियरा।
भूधर के प्रभु नेमि पिया बिन
शीतल होय न राजुल हियरा।

जब किसी भी तरह नेमि प्रभु वैराग्य छोड़ कर राजुल की सुधि लेने नहीं आते हैं तब वह अपना सन्देशा उनके पास भेजती है तथा कहती है कि वे थोड़ी देर ही उसका इन्तजार करें क्योंकि वह भी उन्हीं के साथ तपस्या करने के लिये जाना चाहती है—

म्हारा नेम प्रभु लौं कहज्यो जी।
मैं भी तप करना संग चालों
प्रभु पलिक ठहर रहिज्यो जी॥

राजुल की प्रार्थना करते २ जब सभी आशायें टूट जाती हैं तब अपनी सखियों से उसी स्थान पर जहां नेमि प्रभु ध्यान कर रहे थे ले चलने की प्रार्थना करती है। बखतराम ने राजुल के असीम हृदय को टटोल कर मानो यह पद लिखा है—उसका रसास्वादन स्वयं पाठक करें—

सखी री वहां ले चल री।
जहाँ जहां नेमि धरत हैं ध्यान॥
उन बिन मोहि सुहात न सब ही।
[illegible] हैं मेरे प्राण॥

करते करते ही प्रभात हो जाता है। कवि 'कुमुदचन्द्र' के शब्दों में देखिये—

सखी री अबतो रह्यो नहिं जात।
प्राणनाथ की प्रीत न विसरत,
क्षण क्षण छीजत जात (गात)।
नहि न भूख नहीं तिसु लागत,
घरहि घरहि मुरझात।

* * * *

नहिं नींद परती निशिवासर,
होत विसरत प्रात।

राजुल की इसी भावना को 'जगतराम' ने उन्हीं शब्दों में लिखा है—

सखी री बिन देखे रह्यो न जाय।
ये री मोहि प्रभु को दरस कराय॥

राजुल नेमि से प्रार्थना करती है कि वे एक घडी के लिये ही घर आ जावे तथा प्रात होते ही चाहे वे वैराग्य धारण कर लेवें। 'रत्नकीर्ति' ने इस पद में राजुल की सम्पूर्ण इच्छाओं का निचोड़ कर रख दिया है—

नेमि तुम आओ घरिय घरे,
एक रयनि रही प्रात पियारे।
बोहरी चारित धरे॥

सखी री ! सावनि घटाई सतावे।
रिम झिम बूंद बदरिया बरसत
नेमि मेरे नहिं आवे।
कूंजत कीर कोयला बोलत
पपीया वचन न भावे।

कवि शुभचन्द्र ने तो नेमिनाथ की सुधि लाने के लिए सखियों को उनके पास भेज भी दिया। वे जाकर राजुल की दुखावस्था एवं उसके विरह की व्यथा भी गाने लगी लेकिन सारा उपदेश यों ही गया और अन्त में उन्हें निराश ही वापिस आना पड़ा—

कौन सखी सुध लावे श्याम की।
कौन सखी सुध लावे ॥

• • • •

एक सखी मिल मनमोहन के ढिग।
जाय कथा जु सुनावे ॥
सुनो प्रभु श्री 'शुभचन्द्र' के साहिब।
कामिनी सुख क्यों लजावे ॥

विरह में राजुल इतनी अधिक पागल हो जाती है तथा वह अपनी सखियों से कहने लगती है कि अब तो नेमि के बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकती। उनकी प्रीति को वह भुलाना चाहती है तथा क्षण क्षण में उसका शरीर क्षीण होता जाता है। उनके वियोग में न भूख लगती है और न प्यास। रात्रि को नींद भी नहीं आती है तथा सदा चिन्तन

नेमि तुम कैसे चले गिरिनारि।
कैसे विराग धर्यो मन मोहन,
प्रीत विसारि हमारी।'

उसकी दृष्टि में पशुओं की पुकार तो एक बहाना था वास्तव में तो उन्होंने मुक्ति रूपी वधू को वरण करने के लिये राजुल जैसी कुमारी को छोड़ा था—

मन मोहन मंडप ते बोहरे,
पसु पोकार बहाने।

* * * * *

रतन कीरति प्रभु छोरी राजुल,
मुगति वधू विरमाने॥

नेमि के विरह में राजुल को चन्दन एव चन्द्रमा दोनों ही विपरीत प्रभाव दिखाते हैं। कोयल एव पपीहा के सुन्दर बोल भी विरहाग्नि को भड़काने वाले मालूम होते हैं इसलिए वह सखियों से नेमि से मिलाने की प्रार्थना करती है।

सखि को मिलावो नेमि नरिंदा।
ता बिन तन मन योवन रजत है,
चारु चन्दन अरु चन्दा।
कानन भुवन मेरे जीया लागत,
दुसह मदन का फंदा॥

शृंगार एवं विरहात्मक पद

जैन साहित्य में ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नेमिनाथ का तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की अकेली घटना है। इसी घटना को लेकर जैन कवियों ने पर्याप्त साहित्य लिखा है। इस सम्बन्ध में उनके कुछ पद भी अच्छी संख्या में मिलते हैं जिनमें से थोड़े पदों का प्रस्तुत संग्रह में संकलन किया गया है। यद्यपि वे अधिकांश पद हैं किन्तु कहीं कहीं उनमें शृंगार रस का वर्णन भी मिलता है।

नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे। उनका विवाह उग्रसेन राजा की राजकुमारी राजुल से होना निश्चित हुआ था। जब नेमिनाथ तोरण द्वार पर आये तो राजप्रासाद के निकट एकत्रित बहुत से पशुओं को देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि सभी पशु बरातियों के भोजन के लिए लाये गये हैं। परम अहिंसक नेमिनाथ यह हिंसा कार्य कब सहने वाले थे। वे संसार से उदासीन हो गये और वैराग्य धारण करके पास ही में जो गिरिनार पर्वत था उस पर जाकर तपस्या करने लगे। नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने के पश्चात् जब राजुल के माता पिता ने अन्य राजकुमार के साथ उसका विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो राजुल ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

राजुल नेमि के विरह से व्यथित रहने लगी। पहिले तो उसे यही समझ में नहीं आया कि वे गिरिनार क्यों चले गये तथा किस प्रकार उसके पवित्र प्रेम को ठुकरा कर वैराग्य धारण कर लिया।

वह फिर सोचता है कि यह जन्म बेकार ही चला गया। धर्म अर्थ एव काम इन तीनों में से एक को भी उसने प्राप्त नहीं किया।

जनमु अकारथ ही जु गयो।
धरम अरथ काम पद तीनों,
एको करि न लयो॥

पश्चात्ताप के अतिरिक्त उसे यह दुःख होता है कि वह अपने वास्तविक घर कभी न आया। दौलतराम कहते हैं कि दूसरों के घर फिरते हुये बहुत दिन बीत गये और वहां वह अनेक नामों से सम्बोधित होता रहा। दूसरे के स्थान को ही अपना मान उसके साथ ही लिपटा रहा है वह अपनी भूल स्वीकार कर रहा है लेकिन अब पश्चात्ताप करने से क्या प्रयोजन। ऐसे प्राणियों के लिये दौलतराम ने कहा है कि अब भी विषयों को छोड़कर भगवान की वाणी को सुनो और उस पर आचरण करो —

हम तो कबहू न निज घर आये।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते,
नाम अनेक धराये।
पर पद निज पद मान मगन ह्वै
पर परणति लिपटाये॥

* * * * * *

यह बहु भूल भई हमरी फिर,
कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहू विषयन को,
सतगुरु बचन सुनाये॥

पाइ अमृत पाय धोये
करत सुगुरु पुकार ।
ताको विषय कषाय 'धानत
क्यों उतरो भव पार ॥

और जब हम प्राणी की आत्मा परमात्मा संसार तथा मनुष्य जन्म के बारे में इतना समझते हैं तो उसमें कुछ सुबुद्धि आती है और वह अपने किये हुये कार्यों की आलोचना करने लगता है तथा उसे अनुभव होने लगता है कि उसने यह मनुष्य भव व्यर्थ ही में खो दिया। जप तप व्रत आदि कुछ भी नहीं किये और न कुछ भला काम ही किया। कृपण होकर दिन प्रतिदिन अधिक जोड़ने में ही लगा रहा पर भी दान नहीं दिया। कुटिल पुरुषों की संगति को अच्छा समझा तथा साधुओं की संगति से दूर रहना ही ठीक समझा। कुमुदचन्द्र के शब्दों में पढ़िये —

मैं तो नरभव वादि गमायो ॥
न कियो तप जप व्रत विधि सुन्दर
काम भलो न कमायो ॥

* * * * * *

कृपण भयो कछु दान न दीनो
दिन दिन दाम मिलायो ।

* * * * *

विषय कुटिल शठ संगति बैठो
साधु निकट बिघटायो

इस जीवात्मा के जो विचार उत्पन्न होते हैं—उनको निम्न पद में देखिये:—

अब हम अमर भए न मरेंगे।
तन कारन मिथ्यात दियो तजि, क्यों करि देह धरेंगे ॥
उपजै मरे काल तें प्रानी, तातें काल हरेंगे।
राग दोष जग बंध करत है, इनको नाश करेंगे ॥
देह विनाशी मैं अविनाशी, भेद ज्ञान करेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरेंगे ॥

'रूपचन्द ने—जीव का आत्मा मे स्नेह लगाने का क्या फल होता है इसका आलंकारिक रीति से वर्णन किया है। जीवात्मा एकाकार हो जाता है तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को भी प्राप्त कर लेता है।

चेतन सों चेतन लौ लाई।
चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सों बनि आई।

*　　*　　*　　*　　*　　*

चेतन मौन बने अब चेतन, चेतन माँ चेतन ठहराई।
'रूपचन्द' चेतन भयो चेतन, चेतन गुन चेतनमति पाई ॥

और जब आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान लिया जाता है तो वह प्राणी किसी का कुछ अहित करना नहीं चाहता। 'बनारसीदास' के शब्दों में इस रहस्य को समझिये —

हम बैठे अपने मौन सौं।
दिन दस के मिहमान जगत जन, बोलि बिगारे कौन सौं।

*　　*　　*　　*　　*　　*

मुनि श्रावक आचार बतावत, तृतीय भेद पद डारी।
जीव अजीवादिक तत्वनि की, सप्तम भेद कहानी॥

जैन कवि 'मोर मुकुट पीताम्बर ओढ़े गल बैजन्ती माल' के स्थान पर 'ता जोगी चित लावो मेरे' का उपदेश देते हैं। उनके योगी–'संयम' की डोरी बनाकर 'शील' की लंगोटी बांध रखी है तथा उसमें संयम एवं शील एकाकार होकर घुलमिल गये हैं। गले में ज्ञान के मणियों की माला पड़ी हुई है। इस पद की कुछ पंक्तियां देखिये —

ता जोगी चित लावो मेरे बाला।
संयम डोरी शील लंगोटी, घुल घुल गांठ लगाले मेरे बाला॥
ग्यान गुदड़िया गल बिच डाले, आसन दृढ़ जमावे।
'अलखनाथ' का चेला होकर मोह का कान फड़ावे मोरे बाला॥
धम शुकल दोऊ मुद्रा डाले, कहत पार नहीं पावे मोरे बाला॥

एक दूसरे पद में 'दौलतराम' ने भगवान की मूर्ति का जो चित्र खींचा है उससे तीर्थंकरों की ध्यान–मुद्रा एवं उन्हीं के समान बनी हुई मूर्तियों की स्पष्ट झलक मिल जाती है। भगवान ने हाथ पर हाथ रख कर 'स्थिर' आसन लगा रखा है तथा वे संसार के समस्त वैभव को धूलि के समान छोड़कर परमानन्द पद आत्मा का ध्यान कर रहे हैं —

देखो जी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है।
कर–ऊपर–कर सुभग विराजै आसन थिर ठहराया है।
जगत विभूति भूति सम तजि कर निजानन्द पद ध्याया है।

इस नगरी में किस विधि रहना,
नित उठ तलब लगावेरी रहेना।

इसी प्रकार अन्य कवियों के पदों में भी जहाँ तहाँ सामाजिक चित्रण मिलता है।

भाषा शैली एवं कवित्व

भाषा . इन कवियों की पद रचना का उद्देश्य वैराग्य एवं अध्यात्म का अधिक से अधिक प्रचार करना था इसलिये ये पद भी जनता की सीधी सादी भाषा में लिखे गये। इन कवियों की किसी विशेष भाषा में दिलचस्पी नहीं थी किन्तु सम्वत् १६५० तक हिन्दी का काफी प्रचार हो चुका था तथा यही बोलचाल की भाषा बन गई थी इसलिये इन कवियों ने भी इसी भाषा में अपने पद लिखे। कुछ विद्वान कभी कभी जैन कवियों के भाषा का परिष्कृत न होने की शिकायत भी करते रहते हैं लेकिन यदि पदों की भाषा देखी जाये तो यह पूर्णत परिष्कृत भाषा है। इनके पदों में यद्यपि अपने अपने प्रदेशों की बोलियों का व्यवहार भी हो गया है। रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र बागड एवं गुजरात प्रदेश में विहार करते थे इसलिये इनके पदों में यहाँ वहाँ गुजराती का प्रभाव भी आ गया है। इसी तरह रूपचन्द, बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, जगतराम आदि विद्वान आगरे के रहने वाले थे इसलिये इनके पदों में उस प्रदेश की बोली के शब्दों का प्रयोग हुआ है जो स्वाभाविक भी है। बनारसीदास ने अपने अर्द्धकथानक की भाषा को मध्य प्रदेश की बोली कहा है। इस प्रकार ये सभी पद बोल चाल की भाषा में लिखे हुये हैं,

लेकिन इस संग्रह में आये हुये रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र आनन्द घन, आदि को छोड़कर शेष सभी कवि गृहस्थ थे फिर भी जिस शैली में उन्होंने पद लिखे हैं वह सब साधुओं के कहने की शैली है। गृहस्थ होते हुये भी वे वैराग्य तथा आत्मानुभव में इतने मस्त हो गये थे कि पदों में उनकी आत्मा की पुकार ही व्यक्त होती थी। उन्होंने जो कुछ कहा है वह बिना किसी लाग लपेट के तथा निर्भिक होकर कहा है। जगत को जो भक्ति एवं वैराग्य का उपदेश दिया है उसमें किंचित अयथार्थ नहीं है तथा वह आत्मा तक सीधी चोट करने वाला है। रूपचन्द, बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, छत्रदास तथा दौलतराम सभी सत कवि थे इनको किसी का डर नहीं था तथा वे गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करने वाले थे। उन्होने कितने ही पद तो अपने को ही सम्बोधित करके कहे हैं। बनारसीदास ने 'भोंदू' शब्द का कितने ही पदों में प्रयोग किया है जो उनके स्वयं के लिये भी लागू होता था, क्योंकि उन्हें सदा ही जीवन में असफलताओं का सामना करना पड़ा। वे न तो पूर्ण व्यापारी बन सके और न साधु जीवन ही धारण कर सके। इस तरह जैन कवियों की वर्णन शैली में स्पष्टता एवं यथार्थता दिखाई देती है। उसमें न पांडित्य का प्रदर्शन है और न अलकारों की भरमार। शब्दाडम्बरों से वह एक दम परे है उन्होंने गागर में सागर भरा है।

काव्यत्व—लेकिन वर्णन शैली सरल तथा पांडित्य प्रदर्शन से रहित होने पर भी इन पदों में काव्यत्व के दर्शन होते हैं। इन पदों के पढने से ऐसा मालूम नहीं होता कि ये कवि अनपढ थे और उन्होंने पद न लिखकर केवल तुकबन्दी कर दी है। सरल एवं बोलचाल के

शब्दों का प्रयोग करके भी उन्होंने पदों को माधुर्य से वंचित नहीं रखा है। इन कवियों ने लोक प्रचलित भाषा के रूप का इस प्रकार प्रयोग किया है जिससे भाषा की स्वाभाविकता में किंचित भी कमी नहीं हुई है। उन्होंने प्रसाद एवं माधुर्य गुण युक्त पद-योजना पर अधिक ध्यान दिया है। किसी २ पद में तो एक ही शब्द का प्रयोग किया है लेकिन उनके अर्थ भिन्न हैं। कुमुदचन्द्र का रघुपति गौरि नेमि साथ हरिवदनी के मन भाये (१) तथा रूपचन्द का चेतन हो चेतन क्यों भई इसके सुन्दर उदाहरण हैं। प्रथम पद में हरि शब्द तथा दूसरे पद में 'चेतन' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। कविता वह जीवन तत्व है जिसमें साधारण अनुभूति को भी असाधारण अभिव्यक्तिकरण का रूप मिलता है तथा जिसमें भावना एवं कल्पना के मिश्रण में सरसता का सन्निवेश किया जाता है। जैन कवियों की इन पदों में अपनी आत्मानुभूति के आधार पर उनका सुन्दर शब्द *विन्यास* पदों को *पूर्णतः* सरसता और कोमलता से भरा देता है।

पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव

जैन अध्यात्म के प्रमुख ग्रन्थों का कुन्दकुन्द समन्तभद्र जोइन्दु गुणभद्राचार्य अमृतचन्द्र, शुभचन्द्र मुनिरामसिंह आदि विद्वान हो चुके हैं जिन्होंने भगवान महावीर के पश्चात् अध्यात्म की अबाधित धारा बहाई और यही कारण है कि इन के बाद होने वाले प्रायः सभी कवि उनके अनुगामी बने रहे और उन्होंने अपने साहित्य में वही सन्देश प्रवाहित किया जो पूर्ववर्ती आचार्यों ने किया था। इस

आचार्यों ने आत्मा एवं परमात्मा का जो रूप प्रस्तुत किया है उसमें संकीर्णता, कट्टरता तथा अन्य धर्मों के प्रति जरा भी विद्वेष की गन्ध नहीं मिलती। इनका लक्ष्य मानव मात्र को सन्मार्ग पर लगा कर उसके जीवन को उच्चस्तर पर उठाना था। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्-चारित्र मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। जीव आत्मा का ही नामान्तर है जो आचार्य नेमिचन्द्र के शब्दों में उपयोगमय है अमूर्त है, कर्ता है, स्वदेहप्रमाण है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध एवं स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है। आत्मा देह से भिन्न है किन्तु इसी देह में रहता है। इसी की अनुभूति से कर्मों का क्षय होता है[1]। योगीन्द्र के शब्दों में यह आत्मा अक्षय निरंजन एवं ज्ञानमय समचित्त में है[2]।

पाहुड दोहा में मुनि रामसिंह ने कहा कि जिसने आत्मज्ञान रूपी माणिक्य को पा लिया वह संसार के जंजाल से पृथक होकर आत्मानुभूति में रमण करता है।[3]

आचार्य कुन्दकुन्द कृत समयसार का तो बनारसीदास के जीवन पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि वे उसकी स्वाध्याय से पक्के अध्यात्मी बन

---

१. जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो,
मोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥

२ अप्पउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ समचित्ति।

३ जाइ लद्धउ माणिक्कडो जोइय पुहवि भमंत,
बंधिज्जइ णिय कप्पडइ जोइज्जइ एक्कंत।

गये । वे इसकी प्रतिदिन चर्चा करने लगे । नगरों में घर घर में समयसार नाटक की बात का बखान होने लगा और समय पाकर अध्यात्मियों की भी बन गई । ४

इन जैन आचार्यों के अतिरिक्त संवत् १६ के पहिले जैनेतर कवियों में कबीरदास मीरा और सूरदास जैसे हिन्दी के महाकवि हो चुके थे जिन्होंने अध्यात्म एवं भक्ति की धारा बहायी थी । कबीर निर्गुणोपासक एवं मीरा तथा सूरदास सगुणोपासक कवि थे । इन्होंने भारतीय वातावरण में ईश्वर भक्ति की जो धारा बहाई उससे जैन कवि अप्रभावित नहीं रह सके और इनकी रचनाओं का भी थोड़ा बहुत प्रभाव ही इन कवियों पर अवश्य पड़ा । तुलसीदास के बनारसीदास एवं रूपचन्द समकालीन कवि थे । तुलसीदास रामोपासक थे और इन्होंने रामायण के माध्यम से रामकथा का प्रचार घर घर कर दिया था इसलिये तुलसी भक्ति का भी जैन कवियों पर थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा ।

अब यहां संक्षिप्त रूप में कबीर मीरा एवं तुलसीदास के साथ जैन कवियों के भावों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

माया को कबीर एवं भूधरदास दोनों कवियों ने ठगिनी शब्द से सम्बोधित किया है । कबीर ने इस माया के विभिन्न रूप दिखलाये हैं जबकि भूधरदास ने इसे बिजली की आभा के समान माना है जो

---

४ दस दिसि बीच बचनिका फैली समै पाई अध्यातम सैली
प्रगटी जगमाहिं जिनवानी घर घर नाटक कथा बखानी ।

मूल प्राणियों को ललचाती रहती है। जो मनुष्य इसका जरा भी विश्वास कर लेता है उसे अन्त में पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता तथा वह नरक में गमन करता है। कबीर ने उसके कमला, भवानी मूरति, पानी, आदि विचित्र नाम दिये है तो भूधरदास ने 'केते कथ किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया" कह करके सारे रहस्य को समझा दिया है। कबीर ने माया की अकथ कहानी लिखकर छोड़दी है लेकिन भूधरदास ने उसका "जो इस ठगनी को ठग बैठे मैं तिनको शिरनायौ" कहकर अच्छा अन्तकिया है। दोनों पद पाठकों के अवलोकनाथ दिये जा रहे हैं।

कबीरदास :

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुन फाम लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी,
केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन शिवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी,
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कोड़ी कानी
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहत कबीर सुनो हो संता, यह सब अकथ कहानी।

भूधरदास:

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछताया॥
आभा तनक दिखाय बिज्जु, ज्यों मूढ़मती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनों, अन्त नरक पहुँचाया॥

यदि कबीरदास प्रभु के भजन करने में आनन्द का अनुभव करते हैं तो जगतराम कवि 'भजन सम नहीं काज दूजो" इसी की माला जपते रहते हैं। दोनों ही कवियों ने भगवद् भजन की अपूर्व महिमा गायी है। कबीर का पद देखिये

भजन में होत आनन्द आनन्द,
बरसे शब्द अमी के बादल, भींजे महरम सन्त
कर अस्नान मगन होय बैठे, चढा शब्द का रंग,
अगर बास जहां तत की नदियां, बहत धारा गंग
तेरा साहिब है तेरे मांही, पारस परसे अंग,
कहत कबीर सुनो भाई साधो जपले ओऽम् सोऽहं

*　　*　　*　　*

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अंग अनेक यामें, एक ही सिरताज।
करत जाके दुरत पातक, जुरत संत समाज ॥
भरत पुण्य भण्डार यातैं, मिलत सब सुख साज ॥१॥
भक्त को यह इष्ट ऐसो, ज्यों क्षुधित को नाज।
कर्म ईंधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद यातैं, होत अविचल राज ॥३॥

दौलतराम ने भगवान महावीर से संसार की पीर हरने तथा कर्म बेडों को काटने की प्रार्थना की है तो कबीरदास ने भगवान से निवेदन किया है कि उनके बिना भक्त की पुकार कौन सुन सकता है।

भ. रत्नकीर्ति कुमुदचन्द्र बुलाकीदास बख्तराम आदि के नाम प्रमुख रूप से गिनाये जा सकते हैं। सभी कवि साहित्य के महारथी थे। उन्होंने अपने अगाध ज्ञान से हिन्दी साहित्य के वृक्ष को पल्लवित किया था। पन्द्रह कवियों का जिनके इस संग्रह में प्रमुख रूप से पद दिये हैं उनका संक्षिप्त परिचय भी पदों के साथ ही दे दिया गया है। परिचय के साथ १ उन कवियों का एक निश्चित समय भी देने का प्रयास किया गया है। जो जहाँ तक हो सका है निश्चित प्रमाणों के आधार पर ही आधारित है। १५ प्रमुख कवियों के अतिरिक्त शेष २५ कवियों में ठक्कुर शुभचन्द्र मनराम साहिबराम आनन्दघन सुरेन्द्रकीर्ति, देवाब्रह्म माणिकचन्द्र धर्मपाल देवीदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि ठाकर [illegible] अकबर के उच्चस्तरीय अधिकारी थे। इन्हीं के पुत्र दिदिदास द्वारा लिखी गई ज्ञानार्णव की संस्कृत टीका अभी हमें प्राप्त हुई है। शुभचन्द्र भट्टारक चन्द्रकीर्ति की परम्परा में होने वाले भ. विजयकीर्ति के शिष्य थे मनराम १७ वीं शताब्दी के हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा जिनकी अभी ८ रचनायें प्रकाश में आ चुकी हैं। आनन्दघन देवाब्रह्म अपने समय के अच्छे विद्वान थे। इनके बहुत से पद एवं रचनायें मिलती हैं। सुरेन्द्रकीर्ति आमेर के भट्टारक थे जिनको साहित्य से विशेष अभिरुचि थी। इसी प्रकार धर्मपाल माणिकचन्द्र एवं देवीराम आदि भी अपने समय के अच्छे विद्वान् थे।

---

१ देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची' चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या ११

राग रागनियों के नामों से पता चलता है कि सभी जैन कवि गीत के अच्छे ज्ञाता थे। वे अपने पदों को स्वयं गाते थे तथा जनता अध्यात्म एवं भगवद् भक्ति की ओर आकर्षित करते थे। प्राचीन काल इन पदों के गाने का खूब प्रचार था तथा वे भजनानन्दियों को कण्ठस्थ रहते थे। आज भी जयपुर में ७-८ शैलियां हैं जिनका कार्यक्रम सप्ताह में एक दिन सामूहिक रूप से पद एवं भजनों के गाने का रहता है। सभी जैन कवि एक ही राग के गायक नहीं थे किन्तु उनकी अलग रागें थी। वैसे जैन कवियों ने केदार, सारंग, बिलावल, सोरठ, मांढ, आसावरी, रामकली, बिलो, मालकोश, ख्याल, तमाशा आदि रागों में अधिक पद लिखे हैं

आभार—

सर्व प्रथम मैं क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यों एवं मुख्यत भूतपूर्व मंत्री श्री केसरलाल जी बख्शी, बाबू सुभद्रकुमार जी पाटनी तथा वर्त्तमान मंत्री श्री गैंदीलाल जी साह एडवोकेट का अत्यधिक आभारी हूँ जिनके सद् प्रयत्नों से श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य की खोज एवं उसके प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन हो रहा हैं वास्तव में क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस ओर नई दिशा प्रदान की है। आशा है भविष्य में साहित्य प्रकाशन का कार्य और भी शीघ्रता से कराया जावेगा। विश्वभारती शान्तिनिकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं अपभ्रंश साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान, डा. रामसिंह

हमारी पीर हरो मम पीर — दौलतराम

बाप बिन कौन सुने प्रभु मोरी — कबीरदास

इसी तरह यदि कबीरदास ने "साधो मूरत बेटा जायो गुरु परताप साधु की संगत खाय कुटुम्ब सब जायो"—के पद में बालक का नाम 'ज्ञान' रखा है तो बनारसीदास ने बालक का नाम 'मौंधू' रखकर नाम रखने वाले पंडित को ही बालक द्वारा खा लेने की अच्छी कल्पना की है। इसमें बनारसीदास की कल्पना निस्संदेह चमत्कार की है। दोनों पदों का अन्तिम भाग देखिये।

कबीरदास :

> 'ज्ञान' नाम धरयौ बालक को, शोभा बरनी न जाई
> कहै कबीर सुनो भाई साधो घर घर रहा समाई।

बनारसीदास

> नाम धरयौ बालक को 'मौंधू' रूप बरन कछु नाहीं।
> नाम धरते पांडे खाये कहत बनारसी भाई।

मीरा ने एक ओर "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" के रूप में मन बालापन को भक्ति की ओर आकर्षित किया तो बनारसीदास ने "जगत में सो देवन को देव जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव" का प्रचार लगाया। इसी तरह एक ओर मीरा ने प्रभु से होली खेलने के लिये निम्न शब्द लिखे।

होली पिया बिन लागत खारी सुनो री सखी मेरी प्यारी।
होरी खेलत है गिरधारी।

तो दूसरी ओर जैन कवि आत्मा से भी होली खेलने को आगे बढ़े और उन्होंने निम्न शब्द में अपने भावों को प्रकट किया।

होरी खेलूंगी घर आए चिदानन्द।

शिशर मिथ्यात गई अब आई काल की लब्धि बसंत।
इसी प्रकार महाकवि तुलसीदास ने यदि,

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे,
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।

का सन्देश फैलाया तो रूपचन्द ने जिनेन्द्र का नाम जपने के लिये तो प्रोत्साहित किया ही किन्तु अपने खराब परिणामों को पवित्र करने के लिये और मन में से कांटे को निकाल कर उनके स्मरण के लिए भी कहा।

पद संग्रह के सम्बन्ध में—

प्रस्तुत पद संग्रह में ४०१ पदों का संकलन है। ये पद ४० जैन कवियों के हैं जिनमें १५ प्रमुख कवियों के ३४६ पद तथा शेष २५ कवियों के ५५ पद हैं। इन पदों का संग्रह प्राचीन ग्रन्थों एवं गुटकों में से तथा कुछ पदों का प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर किया गया है। ४० कवियों में बहुत से कवि तो ऐसे हैं जिनके पद पाठकों को प्रथम बार पढ़ने को प्राप्त होंगे। ऐसे कवियों में

यदि कबीरदास प्रभु के भजन करने में आनन्द का अनुभव करते हैं तो जगतराम कवि 'भजन सम नहीं काज दूजो'' इसी की माला जपते रहते हैं। दोनों ही कवियों ने भगवद् भजन की अपूर्व महिमा गायी है। कबीर का पद देखिये

भजन में होत आनन्द आनन्द,
बरसै शब्द अमी के बादल, भींजै महरम सन्त
कर अस्नान मगन होय बैठे, चढा शब्द का रंग,
अगर वास जहा तत की नदिया, बहत धारा गंग
तेरा साहिब है तेरे मांही, पारस परसे अंग,
कहत कबीर सुनो भाई साधो जपले ओऽम् सोऽहं

*　　*　　*　　*

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अंग अनेक यामें, एक ही सिरताज।
करत जाके दुरत पातक, जुरत संत समाज ॥
भरत पुण्य भण्डार यातैं, मिलत सब सुख साज ॥१॥
भक्त को यह इष्ट ऐसो, ज्यों क्षुधित को नाज।
कर्म ईंधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद यातैं, होत अविचल राज ॥३॥

दौलतराम ने भगवान महावीर से संसार की पीर हरने तथा कर्म बेडी को काटने की प्रार्थना की है तो कबीरदास ने भगवान से निवेदन किया है कि उनके बिना भक्त की पुकार कौन सुन सकता है।

होली पिया विन लागत खारी, सुनो री सखी मेरी प्यारी।
होरी खेलत है गिरधारी।

तो दूसरी ओर जैन कवि आत्मा से ही होली खेलने को आगे बढे और उन्होंने निम्न शब्द में अपने भावों को प्रकट किया।

होरी खेलूंगी घर आए चिदानन्द।

शिशर मिथ्यात गई अब आई काल की लब्धि बसत।
इसी प्रकार महाकवि तुलसीदास ने यदि,

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे,
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।

का सन्देश फैलाया तो रूपचन्द ने जिनेन्द्र का नाम जपने के लिये तो प्रोत्साहित किया ही किन्तु अपने खराब परिणामों को पवित्र करने के लिये और मन में से कांटे को निकाल कर उनके स्मरण के लिए भी कहा।

पद सग्रह के सम्बन्ध में—

प्रस्तुत पद सग्रह में ४०१ पदों का सकलन है। ये पद ४० जैन कवियों के हैं जिनमें १५ प्रमुख कवियों के ३४६ पद तथा शेष २५ कवियों के ५५ पद हैं। इन पदों का सग्रह प्राचीन ग्रन्थों एव गुटकों में से तथा कुछ पदो का प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर किया गया है। ४० कवियों में बहुत से कवि तो ऐसे हैं जिनके पद पाठकों को प्रथम बार पढने को प्राप्त होंगे। ऐसे कवियों में

म यशकीर्ति कुमुदचन्द्र बुलाकीदास बख्तराम आदि के नाम प्रमुख रूप से गिनाये जा सकते हैं। सभी कवि साहित्य के महारथी थे। उन्होंने अपने अगाध ज्ञान से हिन्दी साहित्य के कोष को पल्लवित किया था। पन्द्रह कवियों का जिनके इस भाग में प्रमुख रूप से पद दिये हैं उनका संक्षिप्त परिचय भी यहीं के साथ ही दे दिया गया है। परिचय के साथ २ उन कवियों का एक निश्चित समय भी देने का प्रयास किया गया है। जो कहाँ तक ही सका है निश्चित प्रमाणों के आधार पर ही आधारित है। १५ प्रमुख कवियों के अतिरिक्त शेष ९५ कवियों में टोडर शुभचन्द्र मनराम सांईदास आनन्दघन सुरेन्द्रकीर्ति, देवाब्रह्म माणिकचन्द्र, धर्मपाल देवीदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि टोडर [illegible] आगरा के उच्चपदस्थ अधिकारी थे। इन्हीं के पुत्र रिषिदास द्वारा लिखवायी हुई ज्ञानार्णव की संस्कृत टीका अभी हमें प्राप्त हुई है। शुभचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्ति की परम्परा में होने वाले भ० विजयकीर्ति के शिष्य थे मनराम १७ वीं शताब्दी के हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा जिनकी अभी ८ रचनायें प्रकाश में आ चुकी हैं। आनन्दघन देवाब्रह्म अपने समय के अच्छे विद्वान थे। इनके बहुत से पद एवं रचनाएँ मिलती हैं। सुरेन्द्रकीर्ति आमेर के भट्टारक थे जिनकी साहित्य से विशेष अभिरुचि थी। इसी प्रकार धर्मपाल माणिकचन्द्र एवं देवीराम आदि भी अपने समय के अच्छे विद्वान् थे।

देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची' चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या १२

राग रागनियों के नामों से पता चलता है कि सभी जैन कवि संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। वे अपने पदों को स्वयं गाते थे तथा जनता को अध्यात्म एवं भगवद् भक्ति की ओर आकर्षित करते थे। प्राचीन काल में इन पदों के गाने का खूब प्रचार था तथा वे भजनानन्दियों को कंठस्थ रहते थे। आज भी जयपुर में ७-८ शैलियां हैं जिनका कार्यक्रम सप्ताह में एक दिन सामूहिक रूप से पद एवं भजनों के गाने का रहता है। सभी जैन कवि एक ही राग के गायक नहीं थे किन्तु उनकी अलग रागें थीं। वैसे जैन कवियों ने केदार, सारंग, विलावल, सोरठ, माढ, आसावरी, रामकली, जिलो, मालकोश, ख्याल, तमाशा आदि रागों में अधिक पद लिखे हैं

आभार—

सर्व प्रथम मैं क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यों एवं मुख्यतः भूतपूर्व मंत्री श्री केसरलाल जी बख्शी, बाबू सुभद्रकुमार जी पाटनी तथा वर्त्तमान मंत्री श्री गैंदीलाल जी साह एडवोकेट का अत्यधिक आभारी हूँ जिनके सद् प्रयत्नों से श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य की खोज एवं उसके प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन हो रहा है वास्तव में क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस ओर नई दिशा प्रदान की है। आशा है भविष्य में साहित्य प्रकाशन का कार्य और भी शीघ्रता से कराया जावेगा। विश्वभारती शान्तिनिकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं अपभ्रंश साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान, डा. रामसिंह

तोमर का मैं पूर्णतः आभारी हूँ जिन्होंने समय न होते हुवे भी इस ग्रन्थ पर प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। गुरुवर्य पं० चैनसुखदास जी सा० का भी मैं पूर्ण कृतज्ञ हूँ जिनके निर्देशन में जयपुर में साहित्य शोध का यह कार्य हो रहा है।

अन्त में मैं अपने सहयोगी भाई अनूपचंद जी न्यायतीर्थ एवं श्री सुगनचंद जी जैन का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इसके सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सहयोग दिया है।

कस्तूरचन्द कासलीवाल

पदानुक्रमणिका

बनारसीदास

पद	पद संख्या	पृष्ठ संख्या

भगवीतन

पद		पद संख्या	पृष्ठ संख्या

जगतराम

भूधरदास

पद	पद संख्या	पृष्ठ संख्या

मग्नराम साह

नवलराम

बुधजन

दौलतराम

छत्रपति

५८ महाचन्द

भागचन्द

विविध कवियों के पद

भट्टारक रत्नकीर्त्ति

(सवत् १५६०-१६५६)

रत्नकीर्त्ति जैन सन्त थे तथा सूरत गादी के भट्टारक थे। इनका जन्म सवत् १५६० के आसपास घोघा नगर (गुजरात) में हुआ था। इनके पिता का नाम देवीदास एव माता का नाम सहजलदे था। आरम्भ से ही ये व्युत्पन्न मति थे एव साहित्य की ओर इनका झुकाव था। भट्टारक अभयचन्द के पश्चात् सवत् १६४३ में इनका पट्टाभिषेक हुआ। इस पद पर ये सवत् १६५६ तक रहे।

रत्नकीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध कवि एव साहित्यिक विद्वान् थे। अब तक इनके ४० हिन्दी पद एव नेमिनाथ फाग, नेमिनाथ

बारहमासा नेमीश्वर हिण्डोलना एवं नेमिश्वर रास आदि रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। इनके पदों में नेमिनाथ के विरह में राजुल की दशा एवं उसके मनोभावों का अच्छा चित्रण मिलता है। हिन्दी के साथ में वे गुजराती मराठी एवं संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। गुजराती का इनकी रचनाओं पर प्रभाव है एवं मराठी भाषा में इनके कुछ पद मिलते हैं।

इनके शिष्य परिवार में भ. कुमुदचन्द्र, जयसागर एवं राघव के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने इनके बारे में काफी लिखा है।

राग-गुज्जरी

वृषभ जिन सेवो बहु सुखकार ॥
परम निरंजन भय भय भंजन
संसारार्णवतार ॥ वृषभ० ॥१॥
नाभिराय कुल मंडन जिनवर ।
जनम्या जगदाधार ॥
मन मोहन मरूदेवी नंदन ।
सकल कला गुणधार ॥ वृषभ० ॥२॥
कनक कांति सम देह मनोहर ।
पाचर्सें धनुष उदार ॥
उज्वल रतनचंद्र सम कीरति ।
विस्तरी भवन मझार ॥ वृषभ० ॥३॥
[१]

राग–नट नारायण

नेम तुम कैसे चले गिरिनारि ॥
कैसे विराग धरयो मन मोहन, प्रीत[1] विसारि हमारी ॥१॥
सारंग देखि सिधारे सारंग, सारंग नयनि निहारी ॥
उनपे तंत मंत मोहन है, वेसो नेम[2] हमारी ॥ नेम० ॥२॥
करो रे संभार सांवरे सुन्दर, चरण कमल पर वारि ॥
रतनकीरति प्रभु तुम बिन राजुल विरहानलहु जारी ॥
॥ नेम० ॥३॥
[२]

---

१ मूलपाठ–परिवि २ तेम

राग–कनड़ा

कारण कोउ पिया को न जाने ॥
मन मोहन मंडप ते बाहुरे पसु पोकार बहाने ॥ कारण० ॥१॥
सो म बूझ पशी नहि परतरति भात तात ए तान ॥
अपन उर की भालो बरखी सजन रहे मन ग्यान ॥ कारण ॥२॥
आये बहोत दिवाज राजे सारंग मय भूली वाने ॥
रतनकीरति प्रभु भारी राजुल मुगति वधू विरमाने ॥ कारण० ॥३॥

[३]

राग–देशाख

सखी री नेम न जानी पीर ॥
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि
संग भर हलधर वीर ॥ सखी ॥ १ ॥
नेम मुख निरखी हरखीयन मू
अब तो होइ मन धीर ॥
ताम पशुय पुकार सुनि करि
गयो गिरिवर के तीर ॥ सखी ॥ २ ॥
चन्द्रवदनी पोकारती डारती
मंडन हार उर चीर ॥
रतनकीरति प्रभू भय वैरागे
राजुल चित कियो धीर ॥ सखी० ॥ ३ ॥

[४]

राग-देशाख

सखि को मिलावो नेम नरिंद ॥
ता विन तन मन योवन रजत है,
चारु चन्दन अरु चदा ॥ सखि० ॥ १ ॥
कानन भुवन मेरे जीया लागत,
दुसह मदन को फदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी ॥
वेअति दुख को कदा ॥ सखि० ॥ २ ॥
तुम तो संकर सुख के दाता,
करम काट किये मदा ॥
रतनकीरति प्रभु परम दयालु,
सेवत अमर नरिंदा[1] ॥ सखि० ॥ ३ ॥

[५]

राग-मल्हार

सखी री सावनि घटा ई सतावे ।
रिमि झिमि बूंद बदरिया वरसत,
नेमि नेरे नहि आवे ॥ सखी री० ॥ १ ॥
कूजत कीर कोकिला बोलत,
पपीया वचन न भावे ॥

---

१ मूलपाठ—वरिंदा

दादुर मोर पपीहा घन गरजत
इन्द्र-धनुष डरावे ॥ सखी री० ॥ २ ॥
सम सिन्धु री सुपति बचन को
जदुपति कुछु सुनावे ॥
रतनकीरति प्रभु अब निठोर भयो ।
अपनो बचन बिसरावे ॥ सखी री ॥ ३ ॥

[६]

राग–केदार

बरज्यो न माने नयन निठोर ॥
सुमिरि सुमिरी गुन भये सजल घन
उमंगी[1] चले मति फोर ॥ बर० ॥ १ ॥
चंचल चपल रहत नहीं रोके,
न मानत जु निहोर ॥
नित उठि चाहत गिरि को मारग
जेहीं बिधि चंद-चकोर ॥ बर० ॥ २ ॥
तन मन धन यौवन नहीं भावत
रजनी न भावत[2] भोर ॥
रतनकीरति प्रभु वेगें मिलो
तुम मेरे नयन के चोर ॥ बर ॥ ३ ॥

[७]

---

१ उमगी २ भावत

राग-केदार

ता पै मदन करत पावस नैन भर
होत रे बैरागन नेम की चेरी ॥
सील न मजन देउ, मान मोसी न लेउ ।
अब पौरहुँ तेरे गुननी चेरी ॥ १ ॥
काहू सूं बोल्यो न भावे, जीया में जु ऐसो आवे ।
नहीं गमे सात मात न मेरी ॥
आली को कह्यो न करे, बावरी सी होइ फिरे ।
चकित कुरंगिनी यु सर घेरी ॥ २ ॥
निठुर न होइए लाल, बलिहूँ नैन बिशाल ।
कैसे री तन ख्याल भले भलेरी ॥
रतनकीरति प्रभु तुम्ह बिना राजुल ।
यों उदास गृहे क्यु रहेरी ॥ ३ ॥

[८]

राग-कनडो

सुदर्शन[1] नाम के मैं वारी ॥
तुम बिन कैसे रहूँ दिन रयणी ।
मदन सतावे भारी ॥ सुदर्शन० ॥ १ ॥
जावो मनावो आनो गृह मोरे ।
यो कहे अभिया रानी ॥

---

१ सुदरशण

पेनील आदि नर पटोरी ॥ सुदरी० ॥ १ ॥
निरखती नेह भरि नेम नो साह कु ।
रथ बैठे आये सग हलधर जोरी ॥
रतनकीरति प्रभु निरखि सारंग ।
वेग दे गिरि गये मानसरोरी ॥ सुदरी० ॥ २ ॥

(११)

राग–केदार

सरद की रयनि सुदर सोहात ॥ टेक ॥
राका शशधर जारत या तन ।
जनक सुता विन भ्रात ॥ सरद० ॥ १ ॥
जब याके गुन आवत जीया में ।
वारिज वारी वहात ॥
दिल विदर की जानत सीआ ।
गुपत मते की वात ॥ सरद० ॥ २ ॥
या विन या तन सह्यो न जावत ।
दुसह मदन को जात ॥
रतनकीरति कहे विरह सीता के ।
रघुपति रह्यो न जात ॥ सरद० ॥ ३ ॥

(१२)

राग–केदार

राम [1] सतावे रे मोहि रावन ॥
दस मुख दरस देखें डरती हूँ ।

बग करो तुम आवन ॥ राम० ॥ १ ॥
निमिष पलक बिनु होत बरिपमो ।
कोई सुनावो आवन ॥
सारंगधर सौं इतनो कहियो ।
अब तो गयो है सावन ॥ राम ॥ २ ॥
करुनासिंधु ! निराधार सागत ।
मेरे तन कु दरावन ॥
रतनकीरति प्रभु वेगे मिलो किन ।
मेरे जीय के भावन ॥ राम ॥ ३ ॥
(१२)

राग—केदार

नेम तुम आव्यो[1] धरिय घर ॥ टेक ॥
एक रयनि रही प्रात पियारे ।
बोहोरी चारित धरे ॥ नेम ॥ १ ॥
समुद्र विजय नंदन नृप तुही जिन ।
मनमथ माहो न रे ॥
परम वीर चारु इदु सें ।
दाहत अग न धरे ॥ नेम ॥ २ ॥
त्रिलोकनी तारि जन मन मोहन ।
समभाल गिरि जा चरे ॥
रतनकीरति कहे मुगति सिधारे ।
अपना काज करे ॥ नेम ॥ ३ ॥
(१४)

---

१ मूलपाठ-आयो

भट्टारक कुमुदचन्द्र

(सं० १६२५-१६८७)

कुमुदचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। इनके पिता का नाम 'सदाफल' एव माता का नाम 'पद्माबाई' था। यह 'गोमडल' के रहने वाले थे तथा मोढ वश में उत्पन्न हुये थे। बचपन से ये उदासीन रहने लगे और युवावस्था आने के पूर्व ही इन्होंने सयम ले लिया। ये शरीर से सुन्दर, वाणी से मधुर एव मन से स्वच्छ थे। अध्ययन की ओर इनका प्रारम्भ से ही झुकाव था। इसलिये इन्होंने बाल्यावस्था में ही व्याकरण, छद, नाटक, न्याय, आगम एव अलङ्कार शास्त्र का गहरा अध्ययन कर लिया। कुछ समय के पश्चात् ये भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य

बन गये और उन्हीं के साथ रहने लगे। इनकी विद्वता एवं प्रगाढ ज्ञान को देखकर रत्नकीर्ति इन पर मुग्ध होगये और इन्हें अपना प्रमुख शिष्य बना लिया। संवत् १६५६ में बारडोली नगर में इन्हें भट्टारक दीक्षा दी गई।

कुमुदचन्द्र अपने समय के बड़े भारी विद्वान थे। हिन्दी में इनकी कितनी ही रचनायें मिलती हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में नेमिनाथ बारहमासा नेमीश्वर गीत हिन्दोलना गीत बणजारा गीत दशधर्म गीत सप्तव्यसन गीत पार्श्वनाथ गीत चिन्तामणि पार्श्वनाथ गीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी तरह इनके ५० से अधिक छोटे बड़े पद भी अब तक मिल चुके हैं।

कुमुदचन्द्र की भाषा राजस्थानी है तथा उस पर कहीं कहीं मराठी, एवं गुजराती का प्रभाव है। इन्हें बोली–चाली भाषा में लिखने का अधिक चाव था। इनके पद अध्यात्म स्तवन शृंगार एवं विरह पर मिलते हैं। कुछ पद तो इनके बहुत ही ऊँची श्रेणी के हैं।

राग—नट नारायण

आज मैं देखे पास जिनेश ॥

सांवरे गात सोहामनि मूरति, शोभित शीस फणेश ॥

आज॰ ॥ १ ॥

कमठ महामद भंजन रंजन भविक चकोर सुवेश ।

पाप तमोपह भुवन प्रकाशक उदित अनूप दिनेश ॥

आज ॥ २ ॥

भुविज-दिविज पति विनुत जिनेश्वर सेवितपद अरविन्द ।

कहत गुरु चन्द्र होय सब सुख, देखत वामानंद ॥

आज॰ ॥ ३ ॥

[१५]

राग—सारंग

जो तुम दीन दयाल कहावत ॥

हमसे अनाथनि हीन दीन कूं काहे न नाथ निवाजत ।

जो तुम॰ ॥ १ ॥

सुर नर किन्नर असुर विद्याधर सब मुनिजन जस गावत ॥

देव महीरुह कामधेनु तें अधिक जपत सब पावत ॥

जो तुम॰ ॥ २ ॥

चंद चकोर जलद ज्यु सारंग मीन सलिल ज्यु ध्यावत ॥

कहत कुमुद पति पावन तुहि, तुहि हिरदे मोहि भावत ॥

जो तुम॰ ॥ ३ ॥

[१६]

राग-धन्यासी

मैं तो नरभव वादि गमायो ॥
न कियो तप जप व्रत विधि सुन्दर ॥
काम भलो न कमायो ॥ मैं तो ॥ १ ॥
विकट लोभ तें कपट कूट करी ।
निपट विषै लपटायो ॥
विटल कुटिल शठ संगति बैठो ।
साधु निकट विघटायो ॥ मैं तो ॥ २ ॥
कृपण भयो कछु दान न दीनों ।
दिन दिन दाम मिलायो ॥
जब जोबन जंजाल पकर्यो तब ।
परत्रिया तनु चित लायो ॥ मैं तो ॥ ३ ॥
अंत समै कोउ संग न आवत ।
झूठहिं पाप लगायो ॥
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही ।
प्रभु पद जस नहीं गायो ॥ मैं तो ॥ ४ ॥

[१७]

राग-धन्यासी

प्रभु मेरे तुम कुं ऐसी न चाहिये ॥
सघन विघन घेरत सेवक कुं ।
मौन धरी किउं रहिये ॥ प्रभु ॥ १ ॥

विघन-हरन सुख-करन सबनिकु ।
चित चिंतामनि कहिये ॥
अशरण शरण अबंधु बधु कृपासिंधु-
को विरद निबहिये ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
हम तो हाथ बिकाने प्रभु के ।
अब जो करो सोई सहिये ॥
तो फुनि कुमुदचन्द्र कहे शरणा-
गति की सरम जु गहिये ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[१८]

राग-सारंग

नाथ अनाथनि कूं कछु दीजे ॥
विरद सभारी धारी हठ मनते, काहे न जग जस लीजे ।
नाथ० ॥ १ ॥
तुही निवाज कियो हूँ मानष, गुण अवगुण न गणीजे ।
व्याल बाल प्रतिपाल सविषतरु, सो नहीं आप हणीजे ॥
नाथ० ॥ २ ॥
में तो सोई जो ता दीन हूतो, जा दिन को न छूइजे ।
जो तुम जानत और भयो है बाधि बाजार वेचीजे ॥
नाथ० ॥ ३ ॥
मेरे तो जीवन धन सब तुमहि नाथ तिहारे जीजे ।
कहत कुमुदचन्द्र चरण शरण मोहि, जे भावे सो कीजे ॥
नाथ० ॥ ४ ॥

[१६]

राग—सारग

सखी री चपलो रह्यो नहिं जात ।
प्राणनाथ की प्रीत न बिसरत कहा करूं छीजत जात ।
सखी० ॥ १ ॥

नहिं न भूख नहीं तिसु लागत भरहिं भरहिं दुरम्भात ।
मन तो उरमी रह्यो मोहन सु सेवन ही दुरम्भात ॥
सखी ॥ २ ॥

नाहिं ने नींद परती निसिवासर, होत बिसुरत प्रात ।
चन्दन चन्द्र समान नलिनी दल मन्द मरुत न सुहात ॥
सखी ॥ ३ ॥

गृह आंगनु देख्यो नहीं भावत दीन भई बिललात ।
बिरही बावरी फिरत गिरि गिरि लोचन तें न लजात ॥
सखी ॥ ४ ॥

पीव बिन पलक कल नहीं जीव कूं न रुचित रसिक गु बात ।
सुसुदचन्द्र प्रभु सरस दरस कूं नयन चपल ललचात ॥
सखी ॥ ५ ॥

राग-मलार

आली री अ विरगा ऋतु आजु आई ।
ाअत जात नवी तुम चितहु, पीउ आवन सुध पाई ॥
आली० ॥ १ ॥

ाात तस भर बादर दरकारे, वसत[1] हेम भर लाई ।
ोलत मोर पपीईया दादुर, नेमि रहे कत छाई ॥
आली० ॥ २ ॥

ारजत मेह उदित अरु ामिनी, मोपे रह्यो नहीं जाई ।
ुमुदचन्द्र प्रभु मुगति वधू मू, नेमि रहे विरमाई ॥
आली० ॥ ३ ॥

[२१]

राग-प्रभाति

आवो रे सहिय सहिलडी सगे ।
विघन हरण पूजिये पास मन रंगे ॥ आवो० ॥
नील वरण तनु सुन्दर सोहे ।
सुर नर किन्नर ना मन मोहे ॥ आवो० ॥ १ ॥
जे जिन वदित वाछित पूरे ।
नाम लेत सहु पातक चूरे ॥ आवो० ॥ २ ॥
सुप्रभाति उठि गुण जो गाये ।
तेहने घरि नव निधि सुख थाये ॥ आवो० ॥ ३ ॥

---

१ मूलपाठ वसत

राग—सारग

सखी री मनसों रह्यो नहिं जात ।
प्राणनाथ की प्रीति न बिसरत छण छण छीजत गात ।
सखी ॥ १ ॥

नहिं न भूख नहीं तिस लागत घरहिं घरहिं मुरझात ।
मन तो अरुझि रह्यो मोहन सु सेवन ही मुरझात ॥
सखी ॥ २ ॥

नाहिं नै नींद परती निसिबासर होत बिसुरत प्रात ।
चन्द्रम चन्द्र समान महिनी सम मन्द मरुत न सुहात ॥
सखी ॥ ३ ॥

गृह आंगन देख्यो नहीं भावत दीन भई बिललात ।
फिरी बाउरी फिरत गिरि गिरि, लोचन तें न अघात ॥
सखी ॥ ४ ॥

पीउ बिन पलक कल नहीं जीउ हू न रुचित रसिक गुपाल ।
[illegible]चन्द्र प्रभु सरस बरस हू मगन चपल ब्रजबाल ॥
सखी० ॥ ५ ॥

[२०]

राग-मलार

आली री अ विरखा ऋतु आजु आई ।
आवत जात सखी तुम कितहु, पीउ आनन सुध पाई ॥
आली० ॥ १ ॥

देखत तम भर बादर दरकारे, चमत¹ हेम सर लाई ।
बोलत मोर पपीईया दादुर, नेमि रहे कत छाई ॥
आली० ॥ २ ॥

गरजत मेह उदित अरु दामिनी, मोपे रह्यो नहीं जाई ।
कुमुदचन्द्र प्रभु सुगनि वधू सू, नेमि रहे विरमाई ॥
आली० ॥ ३ ॥

[२१]

राग-प्रभाति

आवो रे सहिय सहिलडी सगे ।
विघन हरण पूजिये पास मन रंगे ॥ आवो० ॥
नील वरण तनु सुन्दर सोहे ।
सुर नर किन्नर ना मन मोहे ॥ आवो० ॥ १ ॥
जे जिन वंदित वाछित पूरे ।
नाम लेत सहु पातक चूरे ॥ आवो० ॥ २ ॥
सुप्रभाति उठि गुण जो गाये ।
नेहने घरि नव निधि सुख थाये ॥ आवो० ॥ ३ ॥

---

१ मूलपाठ चमत

भव 'भय' वारण त्रिभुवननायक।
दीन दयाल ए शिव सुख दायक ॥ आयो० ॥ ४ ॥
अतिशयवंत ए जग मांहि गाजे।
विघन हरण वाल विरुद बिराजे ॥ आयो० ॥ ५ ॥
ताहनी सेव करे धरणेंद्र ।
जय जिनराज तु कहे कुमुदचन्द्र ॥ आयो० ॥ ६ ॥

[२२]

राग-धन्यासी

आज सखनि मैं हूं बड भागी ॥
सोवनवास पाय परसन कु ।
मन मेरा अनुरागी ॥ आजु ॥ १ ॥
वामा नंदन दुरित निकंदन ।
अश्वसेन नंदन जिनवर ।
जनम जरा मरणादि निवारण
करण सुख के सुंदर ॥ आजु ॥ २ ॥
नील बरण सुर नर मन रंजन
भव भंजन भगवंत ।
कुमुदचन्द्र कहे देव देवनि के
पास प्रभु सब संत ॥ आजु ॥ ३ ॥

[२३]

संपत्ति विपत्ति नमतनि दोउ ढोवत ॥ जागि हो० ॥२॥
सजन मित्र सब आप सवारथ ।
तुहि बुराइ आप शिर नावत ।
कहत कुमुदचन्द्र बात भयो तुहि,
निकसत बीज न नीर बिलोवत ॥ जागि हो ॥३॥

[२५]

राग-कल्याण

चेतन चेतत किउ बावरे ॥
विषय विष लपटाय रह्यो कहा
दिन दिन छीजत जात आपरे ॥१॥
धन धन यौवन चपल सपन को
योग मिल्यो जेस्यो नदी नाउ रे ॥
काहे रे मूढ न समझत अजहू
कुमुदचन्द्र प्रभु पद जस गाउ रे ॥२॥

[२६]

पं० रूपचन्द

(संवत् १६३०—१७००)

पं० रूपचन्द १७ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अध्यात्मिक विद्वान् थे कविवर बनारसीदास ने अर्द्धकथानक में इनका अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। कवि आगरे के रहने वाले थे और वहीं अपने मित्रों के साथ मिल कर अध्यात्म चर्चा किया करते थे। उन्होंने किस कुल में जन्म लिया एवं उनके माता पिता कौन थे इस सम्बन्ध में इनकी रचनायें मौन है।

रूपचन्द अध्यात्म रसिक थे । इनकी अधिकांश रचनायें इसी रस से ओतप्रोत हैं। अब तक इनके विभिन्न पदों के अतिरिक्त परमार्थ-दोहाशतक, परमार्थ गीत, पंचमंगल, नेमिनाथरासो, अध्यात्मदोहा,

सकल विकार रहितु बिनु अम्बर सुन्दर सुभ करनी ।
निराभरन भासुर छवि छाजत कोटि तरुन तरनी ॥
प्रभु तेरी ॥ २ ॥

वसु रस रहित सांत रस राजित लखि इहि साधु पनी ।
जाति विरोधि जंतु जिहि देखत तजत प्रकृति अपनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ३ ॥

दरसनु दुरितु हरे चिर संचितु, सुर नर मन मोहनी ।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा त्रिभुवन मुकुट मनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ४ ॥

[२८]

राग—रामकली

प्रभु मुख की उपमा किहि दीजै ॥
ससि अरु कमल दोष मल दूषित ।
तिनकी यह सरभरि क्यों कीजै ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
यह अति रूप सकोप सकलंकितु ।
कबहूँ घटै कबहूँ छिन छीजै ॥
यह पुनि कह पंकज रज रंजित ।
सकुचै निसि अरु हिम भीजै ॥ प्रभु ॥ २ ॥
अनूपम परम मनोहर मूरति ।
अचल अनूपम सिरि बसनि कहीजै ॥

रूपचन्द भव तपति तपनु जनु ।
दरसनु देखत ज्यों सुख लीजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[२९]

राग-विलावल

दरसनु देखत हीयौ सिराइ ॥
होइ परम आनदु अंतरगत ।
अरु मम नयन जुगलु सइताइ ॥ दरसनु० ॥ १ ॥
सहज सकल संताप हरे तन,
भव भव पाप पराछित जाइ ।
दारुन दुसह दुसह दुख नासइ,
सुख सुख रासि हदै समाइ ॥ दरसनु० ॥ २ ॥
श्री ह्री धृति कीरति मति विजया,
सो सि तुष्टि ए होइ सहाइ ।
सकल घोर उपसर्ग परीसह,
नासहि प्रभु के परम पसाइ ॥ दरसनु० ॥ ३ ॥
सकल विघन उपसमहि निरन्तर,
चोर मारि रिपु प्रमुख सुआइ ।
रूपचन्द प्रसन्न परिनामनि,
अशुभ करम निरजरहि न काइ ॥ दरसनु० ॥ ४ ॥

[३०]

अध्यात्मशतैया परमार्थ हिंडोलना पदहोलना गीत आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। बनारसीदास का अध्यात्मवाद की ओर झुकाव था प्रमुख कारण संभवतः इनकी रचनायें एवं धार्मिक चर्चायें थी। कवि ने जो कुछ लिखा है वह अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से ही लिखा है। इनकी आन्तरिक अभिलाषा स्वाध्याय के अतिरिक्त मनुष्य मात्र को आत्मा-परमात्मा के चिन्तन एवं मनन के वास्तविक भेद को समझाना रहा है। वे नहीं चाहते थे कि कठिनता से प्राप्त नर भव को यह मनुष्य व्यर्थ ही गंवा दे। इसीलिए संपत्ति स्वजन यौवन आदि को कुछ दिन की बैठी बहारी हैं आदि का सन्देश देना पड़ा। कवि के सभी पद एक से एक सुन्दर हैं। भाषा शैली एवं विषय वर्णन की दृष्टि से भी कवि की रचनायें हिन्दी की उच्चकोटि की रचनायें हैं।

रूपचन्द भव तपति तपनु जनु ।
दरसनु देखत ज्यों सुख लीजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[२९]

राग-बिलावल

दरसनु देखत हीयौ सिराइ ॥
होइ परम आनदु अ तरगत ।
अरु मम नयन जुगलु सहताइ ॥ दरसनु० ॥ १ ॥
सहज सकल सताप हरे तन,
भव भव पाप पराछित जाइ ।
दारुन दुसह दुसह दुख नासइ,
सुख सुख रासि हृदै समाइ ॥ दरसनु० ॥ २ ॥
श्री ह्री धृति कीरति मति विजया,
सो ति तुष्टि ए होइ सहाइ ।
सकल घोर उपसर्ग परीसह,
नासहि प्रभु के परम पसाइ ॥ दरसनु० ॥ ३ ॥
सकल विघन उपसमहि निरन्तर,
चोर मारि रिपु प्रमुख सुआइ ।
रूपचन्द प्रसन्न परिनामनि,
अशुभ करम निरजरहि न काइ ॥ दरसनु० ॥ ४ ॥

[३०]

सकल विकार रहितु बिनु अम्बर सुन्दर सुभ करनी ।
निरामरण भासुर छवि सोभत कोटि तरुन तरनी ॥
प्रभु तेरी ॥ २ ॥

प्रभु रस रहित सांत रस राजित मति इहि साधु पनी ।
जाति विरोधि जंतु जिहि देखत तजत प्रकृति अपनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ३ ॥

दरसनु दुरितु हरे चिर संचितु सुर नर मन मोहनी ।
रूपचन्द्र कहा कहौं महिमा त्रिभुवन मुकुट मनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ४ ॥

[२८]

राग–रामकली

प्रभु मुख की उपमा किहि दीजै ॥
ससि अरु कमल दाग ग्रज दूषित ।
तिनकी यह सरवरि क्यों कीजे ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
वह आ त्प सन्ताप कलकितु ।
कबहूँ बढ़े कबहूँ छिन छीजै ॥
वह पुनि जड़ पंकज रज रंजित ।
सकुचे निसमैं अरु हिम भीजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
अनूपम परम मनोहर मूरति ।
अद्भुत अर्घान गिरि सनमि सहीजे ॥

वसु दस दोप रहितु को इहि विधि,
को तेरी सरि औरु गनावै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
समोसरन सिरि राज विराजति,
और निरंजनु कौनु कहावै ।
केवल दृष्टि देखि चराचर,
तत्व भेद को [1]ज्ञान जनावै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
को वरनै अनत गुन गरिमा,
को जल निधि घट मांहि समावै ।
रूपचन्द भव सागर मज्जत,
को प्रभु विन पर तीर लगावै ॥ प्रभू० ॥ ४ ॥

[३२]

राग–गूजरी

प्रभु की मूरति विराजै, अनुपम सोभा यह और न छाजै ॥
निरंवर मनोहर निराभरन भासुर,
विकार रहित मुनिजन मनु राजै ॥ प्रभु० ॥ ॥ १ ॥
सुन्दर सुभग सोहै सुर नर मनु मोहै,
रूप अनुपम मदन मद भाजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
प्रहसित वन्यौ मुख भ्रकुटिन भ्रू धनुष,
तपन कटाख सर संधान न लाजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
तम तेज दूरि करै तपति जडता हरै,
चन्द्रमा सूरजु जाकी जोति करि लाजै ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

---

१ जनानि

लीजे राखि सरन अपने प्रभु,
रूपचन्द जनु कृपा करी ॥ हमहि० ॥ ५ ॥

[३४]

राग-एही

प्रभु मुख चन्द अपूरब तेरो ॥
सतत सकल कला परिपूरन,
पारे तुम तिहुँ जगत उजेरो ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
निरुप राग निरदोष निरजनु,
निरावरनु जड जाड्य निवेरो ॥
कुमुद विरोधि कृसी कृत सागरु,
अहि निसि अमृत अवै जु घनेरो ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
वदै अस्त घन रहितु निरन्तरु,
सुर नर मुनि आनन्द जनेरो ॥
रूपचन्द इमि नैनन देखति,
हरपित मन चकोर भयो मेरो ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३५]

राग-कान्हरौ

मानस जनमु वृथा तैं खोयो ॥
करम करम करि आइ मिल्यौ हो,
निध करम करि २ सु विगोयो ॥ मानस० ॥ १ ॥

रूपचन्द गुरु पद्दे बहुत बड़ो सौ,
दरसन करत सकल दुरित दुख भाजै ॥ प्रभु ॥ ४ ॥

[३२]

राग–सारंग

हमहि कहा यही भूल परी ॥
सासति इतनी हमरी कीजै
इनके नाम कहा बिगरी ॥ हमहि० ॥ १ ॥
किधौं सीस मधु मीपी किधौं–
इम बोल्यो मृषा नीति बिसरी ॥
किधौं पर द्रव्य हरयौ तृष्णा वश
किधौं परम नर तरुणि हरी ॥ हमहि० ॥ २ ॥
किधौं बहुत आरम्भ परिग्रह,
यह ही हमरी दृष्टि परी ॥
किधौं सुरा मधु मांस भख्यो
किधौं निश भखू निश भरी ॥ हमहि० ॥ ३ ॥
अनादि अविद्या संतान अमित
राग द्वेष परनति न टरी ॥
दुखी सर्व साधारन संसारी,
जीवनि कष्ट परी भरी ॥ हमहि० ॥ ४ ॥
तू समरथ दयालु जग जीवन
असरण सरण संसार तरी ।

तू त्रिलोकपति वृथा अन कत रंक ज्यौं विललात ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

सहज सुख विन, विषय सुख रस भोगवत न अघात ।
रूपचंद चित चेत ओसनि प्यास तौं न वुझात ॥
चेतन० ॥ ४ ॥

[३७]

राग-कल्याण

चेतन सौं चेतन लौं लाई ॥
चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सौं बनि आई ।
चेतन० ॥ १ ॥

चेतन तैं अब चेतन उपज्यौ सुचेतन कौं चेतन क्यों जाई ।
चेतन गुन अरु गुनि फुनि।चेतन, चेतन चेतन रह्यो समाई ॥
चेतन० ॥ २ ॥

चेतन मौन मनैश्वर चेतन, चेतन मौं चेतन ठहराई ।
रूपचद चेतन भयो चेतन, चेतन गुन चेतन मति पाई ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[३८]

राग-केदार

जिय जिन करहि पर सौं प्रीति ।

माग बिसेस सुधा रस पायो
सो है चरननिको मल धोयो।
चिंतामनि फैंक्यो बायस को,
कुंवर मरि मरि ई धन होयो ॥ मानस ॥ २ ॥

धन की तृषा प्रीति वनिता की
मुक्ति रत्नो तृप तैं मुख गोयो।
सुख के हेत विषय-रस सेय
विरत के बरन सलिल विलोयो ॥ मानस ॥ ३ ॥

मति रत्नो प्रसाद मद मदिरा
अरु कंदर्प सर्प विष मायो।
स्वपद चेत्यो न चितायो
मोह नींद निरभय है सोयो ॥ मानस० ॥ ४ ॥

[११]

राग—कल्याण

चेतन काहे कौं बरसात ॥
सहज सुमति सम्हारि आपनी काहे न सिवपुर जात ॥
चेतन० ॥ १ ॥

इहिं चहुरगति विपति मीतरि, रत्नो क्यों न सुहात ॥
अरु अचेतन असुचि तन मैं कैसे रत्नी विरमात ॥
चेतन० ॥ २ ॥

अद्भुत अनुपम रतन मांगत भीख क्यों न लजात।

भव दुख तपनि तपत जन पाए, अग अग सहताने।
रूपचद चित भयो अनदसु नाहि नै वनतु वखाने॥
प्रभु० ॥ ४ ॥

[४०]

राग-कल्याण

चेतन परस्यौं प्रेम वढयो ॥
स्वपर विवेक विना भ्रम भूल्यो, मे मे करत रह्यो।
चेतन० ॥ १ ॥
नरभव रतन जतन वहु तैं करि, कर तेरे आइ चढयो।
सुक्यौं विषय-सुख लागि हारिए, सव गुन गढनि गढयो॥
चेतन० ॥ २ ॥
आरभ के कुसियार कीट ज्यौं, आपुहि आपु मढयो।
रूपचद चित चेतत नाहितैं, सुक ज्यौं वादि पढयो॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[४१]

राग-विभास

चरन रस भीजे मेरे नैन ॥
देखि देखि आनंद अति पावत, श्रवन सुखित सुनि वैन।
चरन० ॥ १ ॥
रसना रसि नाम रस भीजि, तन मन को अति चैन।

एक प्रकृति न मिले आसौं, क्यो मरे तिहि नीति ॥
मित्र ॥ १ ॥
तू महंत सुजान प्रभु सब एक ठौर वसीति ।
मित्र मान रहै सदा पर तक तोहि परतीति ॥
मित्र० ॥ २ ॥
पर सुखी करु हो सुगुरु ऐसी अतीव समीति ।
तोहि मोहि बसिके जु राख्यो सुतोहि पायो जीति ॥
मित्र ॥ ३ ॥
प्रीति आपु समान त्यौं करि ज्यौं कमल की रीति ।
रूपचंद चित चेत चेतन कहां पइके प्रीति ॥
मित्र ॥ ४ ॥
[२६]

राग-कान्हरो

प्रभु तेरे पद कमल निज न जाने ॥
मन मधुकर रस रसि कुवसि कुमतो अब अनत न रति माने ।
प्रभु ॥ १ ॥
अब लगि सीम रह्यो कुवासना कुविसन कुसम सुहाने ।
सीख्यो भगति वासना रस बस अवस घर सबहि भुलाने ॥
प्रभु ॥ २ ॥
श्री निवास संताप निवारन निरुपम रूप सरूप बखाने ।
मुनि जन राजहंस जु सेवित सुर नर सिर सनमाने ॥
प्रभु ॥ ३ ॥

मोह शत्रु जिहि जीत्यौ, तप बल त्रासनि मदनु छपानौं।
ज्ञान राजु निकटकु पायौ, सिवपुरि अविचल थानौं॥
हौं जगदीश० ॥ २ ॥

वसु प्रतिहार जु प्रभु लक्षण कै मेरे हृदै समानौं।
अनत चतुष्टय श्रीपति चौतिस अतिसय गुन जु खानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ३ ॥

समोसरन राउर सुर नर मुनि सोभत सभहि सुहानौं।
धर्म नीति सिव मारगु चाल्यो तिहू भुवन् कौ रानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ४ ॥

दीन् दयाल भगत जन वच्छल जिहि प्रभु कौ यह बानौं।
रूपचद जन होइ दुखी क्यों मनु इह भरम भुलानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ५ ॥

[४४]

राग–सारंग

कहा तू वृथा रह्यो मन मोहि॥
तू सरवज्ञ सरवदरसी कों कहि समुझावहि तोहि।
कहा० ॥ १ ॥
तजि निज सुख स्वाधीनपनौ कत, रहयो पर वस जड जोहि।
घर पंचामृत मागतु भीख जु, यह अचिरज चित मोहि॥
कहा० ॥ २ ॥

सब मिलि कलित जगत भूषन कै अब लागे सुख दैन ॥
चरन ॥२॥

[४२]

राग–केदार

मन मानहि किन समझायो रे ॥
अब तब आयु कालहि सु मरण दिन देखत सिरपर आयो रे ।
मन ॥१॥

कुविसन पटल आत दिन दिन सिथल होत मद आयो रे ।
करि कछु तैं सु करपर चाहत है पुनि रहि है पछितायो रे ॥
मन० ॥२॥

नरभव रतन जतन बहुतनि तैं करम करम करि पायो रे ।
विषय विकार काच मणि बदलै सु अहलै जात गवायो रे ॥
मन ॥३॥

इस भव भ्रम मूरछी कित भटकत कछु आपकी आयो रे ।
रूपचंद चलहि न तिहि पंथ सु, सद्गुरु प्रगटि दिखायो रे ॥
मन० ॥४॥

[४३]

राग-सारग

हौं जगदीस की सरणानौ ॥
संतत सरन गही चरननि की और प्रभु हि न पिछानौ ।
हौं जगदीश० ॥१॥

अनेकात किरना छवि राजि, विराजत भान विकास्यौ ॥
सत्तारूप अनूपम अद्भुत ज्ञेयाकार विकास्यौं ॥
चेतन० ॥ २ ॥
आनंद कद अमद अमूरति सूरति मैं मन वास्यो ॥
चतुर 'रूप' के दरसत जो सुख, जानै वाकू वास्यो ॥
चेतन० ॥ ३ ॥
[४७]

राग—जैतश्री

चेतन अनुभव घन मन भीनौं ॥
काल अनादि अविद्या वधन सहज हुवौ वल छीनो ।
चेतन० ॥ १ ॥
घट घट प्रकट अनत नट नाटक, एक अनेकन कीनौ ।
अग अग रग विरग विराजत, वाचक वचन विहीनौ ॥
चेतन० ॥ २ ॥
आपुन भोगी भुगतिन मुगता, करता भाव विलीनौं ।
चतुर 'रूप' की चित्र चतुरता चीन्ही चतुर प्रवीनो ॥
चेतन० ॥ ३ ॥
[४८]

प्रभु मेरो अपनी खुशी को दानि ॥
सेवा करि कैसी उमरो कोऊ, काहू को नहीं कानि ।
प्रभु० ॥ १ ॥

सुगुरु प्रकासेउ सहज न कहूं फिरि देखे सब पद टोहि।
रूपचंद चित चेति चतुर मति सब पद लीन जिन होहि ॥
म्हा० ॥ २ ॥

[४५]

राग-विभास

प्रभु मोकौं अब सुप्रभात भयो ॥
तुम दरिसन दिनकर उग्यो अनुपम मिथ्या ससि बिलयो।
प्रभु० ॥ १ ॥
सुपर प्रकास भयो जिन स्वामी भ्रम तम दूरि गयो।
मोह नींद गइ सब मिसानई, सुनय मगनु चलयो ॥
प्रभु ॥ २ ॥
असुभ चोर क्रोधादि पिसाचादि गोचर गमनु ठयो।
अति मांगइ तप तेज प्रबल बल काम बिकार नयो ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥
चेतन चक्रवाक मति चकई, विषय विरहु बिलयो।
रूपचंद चित कमल प्रफुल्लित सिव सिरि वास लयो ॥
प्रभु ॥ ४ ॥

[४६]

राग-जैतश्री

चेतन अनुभव घट प्रतिभास्यौ ॥
अनय पथ की मोह अंधियारी जारी सारी नास्यौ।
चेतन ॥ १ ॥

स्वान समान भान को पापी हमहु प्रभु की बानि।
भया निहाल अमर पदु पाया जिन प्रभु की पहिचानि॥
प्रभु० ॥ १ ॥

सिगरी जनमु करी प्रभु सफा सेवक जन प्रिय जानि।
इतनी चूक न बकसी साहिब भई मूल पद हानि॥
प्रभु० ॥ २ ॥

प्रेम प्रभु को ध्यान भरासो कीजै हरषु मन मानि।
रूपचन्द चित सावधान ह्वै रहिये प्रभुहि पिछानि॥
प्रभु ॥ ४ ॥

[४६]

राग—केदार

नरक दुख क्यों सहिहै तू गंवार॥
पंच पाप नित करत न संकतु, तब परत की मार।
नरक० ॥ १ ॥

किंचित असुभ उदय जब आवत होति कछु न पीर।
सोऊ न सहिन सकतु अति बिलपतु दुख हरै सरीर॥
नरक ॥ २ ॥

पूरब कृत सुभ असुभ तनो फल देखत दरसि तु हार।
तदपि न समुझ बुद्धि तु भ्रम हेतु माह मगनउ बार॥
नरक० ॥ ३ ॥

लसुन के पात्र कि बास कपूर की, कपूर के पात्र कि लसुन की होइ ।
जो कछु सुभासुभ रचि राख्यौ है, पर वस अपुन ही है सोइ ॥
अपनौ० ॥ २ ॥

बाल गोपाल सबै कोइ जानत, कहा काहू कछु राख्यौ गोइ ।
रूपचद दिष्टान्त देखियत, लुनियै सोई जु राख्यौ बोइ ॥
अपनौ० ॥ ३ ॥

[५४]

राग-कल्याण

तोहि अपनपौ भूल्यौ रे भाई ॥
मोह मुगधु ह्वै रह्यौ निपट ही, देखि मनोहर वस्तु पराई ॥
तोहि० ॥ १ ॥

तैं परु, मूढ आपु करि जान्यौ, अपनी सब सुधि बुधि बिसराई ।
सधन दारादि कनक करि देखत, कनक मत्तु ज्यउ जनु बौराई ॥
तोहि० ॥ २ ॥

परि हरि सहज प्रकृति अपनी ते, परहि मिले जड जाति न साई ।
भयो दुखी गुणु सीलु गवायौ, ग्को कछू भई न भलाई ॥
तोहि० ॥ ३ ॥

एक मेक हुई रह्यउ तोहि मिलि, कनक रजत व्यवहार की नाई ।
लछन भेद भिन्न यह पुदगल, कस न तेरी कसठ हराई ॥
तोहि० ॥ ४ ॥

सुर नर फनिपति समुन अमरपद मेरा मनु माइ राप।
विविध भप धरि धरि प्रभु भ्रम्यौ कौनु नाच मौ नाचे ॥
गुसइयां० ॥ २ ॥

सुध स्याग मैं करा कहा जिहि दिन दरा धीरजु मांचे।
रूपचंद कहि सु कछु दीजै, जु जम बैरी सौ बांचै ॥
गुसइयां ॥ ३ ॥

[५२]

राग–बिलावल

जनमु अकारथ ही जु गयौ ॥
धरम अरथ काम पद तीनौं एकौ करि न लयौ।
जनमु० ॥ १ ॥
पूरब ही सुभ करमु न कीनौं सु सब विधि हीनु भयौ ॥
औरो जनमु जाइ किहि इहि विधि सोई बहुरि ठयौ ॥
जनमु ॥ २ ॥
विषयनि लागि दुसह दुख देखत तबहू न तनकु भयौ।
रूपचंद चित चेत तू नाही लाग्यौ हो ताहि दयौ ॥
जनम ॥ ३ ॥

[५३]

राग–बिलावल

अपनी किस्यौ कछू न होइ ॥
बिनु कृत कर्म न कछू पाईये आरति करि मरै सबै कोइ।
अपनी ॥ १ ॥

राग-गूजरी

तरसत हैं ए नैननि तारे॥

कबसु महूरत ह्वै है जिहि हो,
जागि देखि हौं जगत उजारे॥ तरसत०॥ १॥

कैसी करो करम इहि पापी,
क्षेत्र छुडाइ दूरि करि डारे।
जो लगि आउ प्रतिवंधक-
तौ लगि प्रभु परनाम न रहत हमारे॥ तरसत॥ २॥

अतरंग मौजूद विराजत,
ज्ञान परोक्ष न देखत सारे।
मनु अकुलात प्रतिक्ष दरसि कहु,
कैसी करौं अवरन हैं भारे॥ तरसत०॥ ३॥

धन्य वह क्षेत्र काल धन्य ह्वांके,
प्रभु जे रहत समीप सुखारे।
रूपचन्द चितव कहा मोहि,
पायो है मारगु जिहि जन तारे॥ तरसत०॥ ४॥

[५७]

राग-सारंग

भरयौ मद करतु बहुत अपराध,
मूढ जन नाहि न करतु कह्यौ।

जामि बूम्बि तू इत उत खोजत बस्तु मुठि है भरी दिपाई।
रूपचंद बंदिये अपने पटे, इसौ कहीं अहा चतुराई ॥
सोहि० ॥ ५ ॥

[५५]

राग—सारग

देखि मनोहर प्रभु मुख चंदु ॥
लोचन नील कमल प बिगसे
मुंचत है मकरंदु ॥ देखि ॥ १ ॥

देखत देखत तृपति होत नहिं,
चितु चकोर अति करतु आनन्दु ।
मुख समुद्र आरुयौ मुन जानो
कहाँ गयो ता महि दुख दंदु ॥ देखि० ॥ २ ॥

अ अक्षर जु हुतो अंतराय
सोइ निपट परयौ अब मंदु ।
सुपर प्रकास भयो सकल मन्यौ
मेरो बन्यो सबहि विधि चंदु ॥ देखि ॥ ३ ॥

बरसतु बचन सुधारस नूतनि,
मयो सकल संताप निकंदु ।
रूपचन्द तन मन लावाने
सु ध्यावत भयौ पद सदु चंदु ॥ देखि० ॥ ४ ॥

[५६]

राग-गूजरी

तरसत हैं ए नैननि नारे॥

कबसु महूरत ह्वै है जिहि ह्वौ,
जागि देखि ह्वौ जगत उजारे॥ तरसत०॥ १॥

कैसी करो करम इहि पापी,
क्षेत्र छुडाइ दूरि करि डारे।

जो लगि आउ प्रतिबंधक-
तौ लगि प्रभु परनाम न रहत हमारे॥ तरसत॥ २॥

अंतरंग मौजूद विराजत,
ज्ञान परोक्ष न देखत सारे।

मनु अकुलात प्रतिक्ष दरिस कहु,
कैसी करौ अवरन हैं भारे॥ तरसत०॥ ३॥

धन्य यह क्षेत्र काल धन्य ह्वाके,
प्रभु जे रहत समीप सुखारे।

रूपचन्द चितावे कहा मोहि,
पायो है मारगु जिहि जन तारे॥ तरसत०॥ ४॥

[५७]

राग-सारंग

भरयौ मद करतु बहुत अपराध,
मूढ जन नाहि न करतु कह्यौ।

परन कषाय चर चोरन करि
क्यों फिरतु कुगइ निबह्यो ॥ मरयो० ॥ १ ॥
शील साख अरु संजम मन्दिर,
चर पस मारि दह्यो ।
किंचित इंद्रिनि के सुख कारण
भव बहु भूल रह्यो ॥ मरयो० ॥ २ ॥
नरक निगोद वारि पंचन परि
दारुण दुःख लह्यो ।
करम महारव कर चढि परवश
अति संताप सह्यो ॥ मरयो० ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमिरि स्वाधीन सहज
अन्तर अधिक भयो ।
रूपचन्द प्रभु पद रेखा छुइ
इहि दुख भाजि गयौ ॥ मरयो ॥ ४ ॥

[५८]

राग—गौरी

राखि लै प्रभु राखिलै अबै भाग तू पायौ ॥
नाथ अनाथ भए अब तोहि
चाहि अनादि गमायौ ॥ राखिलै ॥ १ ॥
मिथ्या देव बहुत मैं सेये

मिथ्या गुरु भरमायौ ।
काज कछू ना सरयौ काहू तैं,
चित्त रह्यौ परिभायौ ॥ राखिलै० ॥ २ ॥
सुख की करै लालसा भ्रम तैं,
जह्वा तह्वा डहकायौ ।
सुख कौ हेतु एक तू साहिब,
ताहि न मैं मनि लायौ ॥ राखिलै ॥ ३ ॥
हौं प्रभु परम दुखी इहि-
करम कुसगति वहुत सतायौ ।
रूपचन्द प्रभु दुख निवेरहि,
तेरै सरनै अव आयौ ॥ राखिलै० ॥ ४ ॥

[५६]

राग—एही

असद्दस वदन कमल प्रभु तेरौ ॥
अमलिनु सदा सहज आनन्दितु,
लछमी कौ जु विलास वसेरौ ॥ असद्दस० ॥ १ ॥
राजसु अति रज रहितु मनोहरु,
ताप विधि प्रताप वडेरौ ।
सीतल अरु जन जडता नासुन,
कोमल अति तप तेज करेरौ ॥ असद्दस० ॥ २ ॥
नहि जड जनिनु नहीं पुन पकजु,

पसरयउ उस परिमलु जिस करा ।
रूपचन्द रस रसि रह लोचन
चरित प्रभन करत मही परी ॥ ममटस० ॥१॥
[६०]

राग-कल्याण

काहे रे भाई भूल्यो स्वारथ ॥
भाव प्रमाण घटति दिन हूँ दिन
समुझु है जब जनमु अकारथ ॥ काहे ॥१॥
चक्र पार चीत कितन मर,
सुर नर फनिपति प्रमुख महारथ ।
हम तुम सो सु बापुरो आपु,
तिहि सुथिर मन तम गुनत परमारथ ॥ काहे ॥२॥
कुसुमित फलित तजि देखत सुन्दर
जानि अनित्य ति सकल पदारथ ।
रूपचन्द नर भव फल लीजे
कीजे जानि कछु परमारथ ॥ काहे० ॥३॥
[६१]

राग-केदार

चतन चसि चतुर सुजान ॥
कहा रंग रचि रही परसों
प्रीति करि अनि बान ॥ चेतन० ॥१॥

तू महतु त्रिलोकपति जिय,
जान गुन परधानु ।
यह अचेतन हीन पुदगलु,
नाहि न तोहि समान ॥ चेतन० ॥ २ ॥
हुइ रह्यो असमरथु आपुनु,
परु कियौ पजवान ।
निज सहज सुख छोडि परवस,
पर्यो है किहि जान ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
रह्यौ मोहि जु मूढ यामैं,
कहा जानि गुमान ।
रूपचन्द चित चेति नर,
अपनौ न होइ निदान ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[६२]

राग-विलावल

मूरति की प्रभु सूरति तेरी, कोउ नहि अनुहारी ॥
रूप अनुपम सोभित सुंदर,
कोटि काम वलिहारी ॥ मूरति० ॥ १ ॥
सांत रूप मुनि जन मनु मोहिति,
सोहति निज उजियारी ।
जाकी जोति सूर ससि जीते,
सुर नर नयन पियारी ॥ मूरति० ॥ २ ॥

दरिसन देखत पातगु भाजै
मन वंछित सुखकारी ।
रूपचन्द त्रिभुवन चूड़ामनि
पटतर कौनु विहारी ॥ मूरति० ॥ ३ ॥

[६१]

राग—आसावरी

हौं भटका तू माह मेरी नाइक ।
सो न मिल्यो तू पूरे थेई साइक ॥ हौं० ॥ १ ॥

भव विदेस सए मोहि फिरावै
बहु विधि भव भ्रमाइन भावै ।
ज्यौं ज्यौं करम पसावनु आवै
त्यौं त्यौं नच्च मोहि पै नाचै ॥ हौं ॥ २ ॥

करम सुरग रंग रस राच्यौ,
लख चौरासी स्वांग धरि नाच्यौ ॥
धरत स्वांग धारयतु दुख पायौ,
भटक भटक कहु हाथ न आयौ ॥ हौं ॥ ३ ॥

रागादिक पर परिनति लगै
भटक जीउ मूरखा भ्रम रंगे ।
हरि हराहि कु सुपति सुभाव्यौ,
बिन स्वामी तेरौ मरमु न जान्यौ ॥ हौं ॥ ४ ॥

अब मोहि सद्गुरु कहि समझायौ,
सो सौ प्रभु बड़े भागनि पायौ।
रूपचन्द नटु विनवै तोही,
अब दयाल पूरौ दै मोही ॥ हौं० ॥ ५ ॥

[६४]

राग—गंधार

मन मेरे की उलटी रीति ॥
जिनि जिनि तें तू दुख पावत है,
तिन ही सौं पुनि प्रीति ॥ मन० ॥ १ ॥
धर्म विरोधउ होउ आपुसौं,
परसौं अधिक सप्रीति ।
इहकतु वार वारजि परिग्रह,
तिन ही की परतीति ॥ मन० ॥ २ ॥
गफिल भयौ रहतु यह सतत,
बहुत करतु अनीति ।
इमनी सका मानतु नाही,
जु घेरनि माहि वसीति ॥ मन० ॥ ३ ॥
मेरे कहे सुने नहीं मानतु,
हौं इहि पायौ जीति ।
रूपचन्द अब हारि दाउ दयौ,
कहा बहुत कैफीति ॥ मन० ॥ ४ ॥

[६५]

राग—नट नारायण

तपतु मोह प्रभु प्रबल प्रताप ॥
करत भगत गुननि मति मुनि
पुनि जाके हरित ताप ॥ तपतु० ॥ १ ॥
जीते जिहि सुर नर फनपति
सब कि जसि बिनु सरचाप ।
हरि हर ब्रह्मादिक पुनि जाके
ते तजत जिय दाप ॥ तपतु ॥ २ ॥
जाके बस बस प्रमुख पुरुष
बहु बिधि करत बिलाप ।
रूपचन्द जिम देव एक तजि
कीनु दुखित इहि पाप ॥ तपतु ॥ ३ ॥

[६६]

राग—नट नारायण

ही बलि पास सिव दातार ॥
पास बिस हरत सह जिनवर
जगत मांझ आधार ॥ ही ॥ १ ॥
थावर जंगम सम बिसहर
मूल मन्तर सार ।
भूत प्रेत पिसाच डाकिनि
साकिनी भयहार ॥ ही ॥ २ ॥

बनारसीदास

संवत् १६४३–१७ १)

बनारसीदास १७ वीं शताब्दी के कवि थे। इनका जन्म संवत् १६४३ में जौनपुर नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम खरगसेन था। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये व्यापार करने लगे। कभी कपड़े का कभी जवाहरात का एवं कभी किसी वस्तु का लेन देन किया लेकिन उसमें इन्हें कभी सफलता नहीं मिली। इसीलिए डा॰ मोतीचन्द ने इन्हें असफल व्यापारी के नाम से सम्बोधित किया है। दरिद्रता ने इनका कभी पीछा नहीं छोड़ा और अन्त तक वे उससे जूझते रहे।

साहित्य की ओर इनका प्रारम्भ से ही झुकाव था। सर्व प्रथम ये शृंगार रस की कविता करने लगे और इसी चक्कर में

इश्कबाजी में भी फसे लेकिन अचानक ही इनके जीवन में एक मोड़ आया और उन्होंने शृंगार रस पर लिखी हुई सभी कविताओं की पाडुलिपि को गोमती में बहा दिया। इश्कबाजी से निकल कर ये अध्यात्मी बन गये और जीवन भर अध्यात्म के गुण गाते रहे। ये अपने समय में ही प्रसिद्ध कवि हो गये और समाज में इनकी रचनाओं की माग बढने लगी। इनकी रचनाओं में नाममाला, नाटक समयसार, बनारसी विलास, अर्द्धकथानक, मांझा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नाटक समयसार कवि की प्रसिद्ध अध्यात्मिक रचना है। बनारसी विलास इनकी छोटी छोटी रचनाओं का सग्रह ग्रंथ है। अर्द्धकथानक में इनका स्वय का आत्मचरित है।

बनारसीदास प्रतिभा सपन्न एव धन के पक्के कवि थे। हिन्दी साहित्य को इनकी देन निराली है। कवि की वर्णन करने की शक्ति अनूठी है। इनकी प्रत्येक रचना में अध्यात्म रस टपकता है इसलिए इनकी रचनायें समाज मे अत्यधिक आदर के साथ पढी जाती है।

राग-सारग वृंदावनी

जगत में सो देवन को देव॥
जासु चरन परसे इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव॥
जगत में० ॥ १ ॥
जो न क्षुधित न तृषित न भयाकुल इन्द्री विषय न वेव॥
जनम न होय जरा नहिं व्यापै मिटी मरन की टेव॥
जगत में ॥ २ ॥
जाके नहिं विषाद नहिं विस्मय नहिं आठों अहमेव॥
राग विरोध मोह नहिं जाके, नहिं निद्रा परसेव॥
जगत में० ॥ ३ ॥
नहिं तन रोग न श्रम नहिं चिंता दोष अठारह भेव॥
मिटे सहज जाके ता प्रभु की करत 'बनारसि' सेव॥
जगत में० ॥ ४ ॥

[९६]

राग—रामकली

म्हारे प्रगटे देव निरंजन॥
अटको कहां कहां सर भटकत कहां कहूं जन रंजन॥
म्हारे ॥ १ ॥
खंजन दृग दृग नयनन गाऊं चाऊं चितवत रंजन॥
सजन घट अंतर परमात्म सकल दुरित भय भंजन॥
म्हारे ॥ २ ॥

थोड़ी कामदेव रोग काम घट थोड़ी सुधारस मज्जन ॥
और उपाय न मिले बनारसी, सकल परमरूप व्यञ्जन ॥
म्हारे० ॥ ३ ॥

[७०]

राग–सारंग

चित गये पच सियान हमारे ॥ चित० ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे ॥
कपटी लोगों से साझा कर कर हुये आप विचारे ॥
चित० ॥ १ ॥

आप सियाना गद्द गह बैठो, लिख लिख कागद डारे ॥
बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पाचों होगये न्यारे ॥
चित० ॥ २ ॥

रुक गयो शब्द नहि निकसत, हा हा कर्म सों हारे ॥
बनारसि या नगर न बसिये, चल गये सीचन हारे ॥
चित० ॥ ३ ॥

[७१]

राग–जंगला

वा दिन को कर सोच जिय मनमें ॥
वनज किया व्यापारी तूने, टाडा लादा भारी रे ।
ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी रे ॥

आखिर बाजी हारी करले चलने की तय्यारी ।
इक दिन डेरा होयगा वन में ॥ वा दिन० ॥ १ ॥
झूठे नैना उलफत बांधी किसका सोना किसकी चांदी ॥
इक दिन पवन चलेगी आंधी किसकी बीबी किसकी बांदी ॥
नाहक चित्त लगावै धन में ॥ वा दिन ॥ २ ॥
मिट्टी सेती मिट्टी मिलियो पानी से पानी ।
मूरख सेती मूरख मिलियो ज्ञानी से ज्ञानी ॥
यह मिट्टी है तेरे तन में ॥ वा दिन ॥ ३ ॥
कहत बनारसि सुनि भवि प्राणी यह पद है निरवाना रे ॥
जीवन मरन किया सो नांही सिर पर काल निशाना रे ॥
सूझ पड़ेगी बुढ़ापे पन में ॥ वा दिन ॥ ४ ॥

[७२]

मूलन बेटा आयो रे साधो मूलन ॥
जाने खोज कुटुम्ब सब खायो रे साधो ॥
मूलन ॥ १ ॥
जन्मत माता ममता खाई मोह लोभ दोइ भाई ।
काम क्रोध दोई काका खाये खाई तृषना दाई ॥
साधो ॥ २ ॥
पापी पाप परोसी खायो अशुभ करम दोइ मामा ।

मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा ॥
साधो० ॥ ३ ॥

दुरमति दादी खाई दादो, मुख देखत ही मूओ ।
मगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हूओ ॥
साधो० ॥ ४ ॥

नाम धर्यो बालक को भोंदू, रूप बरन कछु नाहीं ।
नाम धंरते पाडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई ॥
साधो० ॥ ५ ॥

[७३]

रागअष्ट-पदी मल्हार

देखो भाई महाविकल ससारी ॥
दुखित अनादि मोह के कारन, राग द्वेष भ्रम भारी ॥
देखो भाई० ॥ १ ॥

हिसारभ करत सुख समझै, मृषा बोलि चतुराई ।
परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढत बडाई ॥
देखो भाई० ॥ २ ॥

वचन राख काया दृढ राखै, मिटै न मन चपलाई ।
यातैं होत और की औरैं, शुभ करनी दुख दाई ॥
देखो भाई० ॥ ३ ॥

जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै ।
कथनी कथत महत कहावै, ममता मूल न त्यागै ॥
देखो भाई० ॥ ४ ॥

आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिय आठ मद आनै ।
जाति लाभ कुल बल तप विद्या प्रभुता रूप बखानै ॥
ऐसो भाई० ॥ ५ ॥

जड़ सौं राचि परम पद साधै आतम शक्ति न सूझै ।
बिना विवेक विचार दरब के गुण परजाय न बूझै ॥
ऐसो भाई० ॥ ६ ॥

जस वाले जस सुनि संतोषै तप वाले तन सोखै ।
गुन वाले परगुन को दोषै मतवाले मत पोखै ॥
ऐसा भाई० ॥ ७ ॥

गुरु उपदेश सहज उदयागति मोह विकलता छूटै ।
कहत 'बनारसि' है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै ॥
ऐसो भाई ॥ ८ ॥

[७४]

राग–काफी

चिन्तामन स्वामी साँचा साहिब मेरा ॥
शोक हरै तिहुं लोक को, उठ लीजतु नाम सवेरा ॥
चिन्तामन ॥ १ ॥

सूरसमान उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा ।
देखत मूरत भाव सौं मिट जात मिथ्यात अंधेरा ॥
चिन्तामन० ॥ २ ॥

दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जो निस वेरा ।
मोहि अभय पद दीजिये, फिर होय नहीं भव फेरा ॥
चिन्तामन० ॥ ३ ॥

बिंब विराजत आगरे, थिर थान थयो शुभ वेरा ।
ध्यान धरै विनती करैं, 'बनारसि' वंदा तेरा ॥
चिन्तामन० ॥ ४ ॥

[७५]

राग–गौरी

भौंदू भाई, देखि हिये की आंखैं ॥
जे करषैं अपनी सुख संपति, भ्रम की संपति नाखैं ॥
भौंदू भाई० ॥ १ ॥

जे आंखै अमृतरस बरसैं, परखैं केवलि वानी ।
जिन्ह आखिन विलोकि परमारथ, होहि कृतारथ प्रानी ॥
भौंदू भाई० ॥ २ ॥

जिन आखिन्ह मैं दशा केवलि की, कर्म लेप नहिं लागै ।
जिन आखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै ॥
भौंदू भाई० ॥ ३ ॥

जिन आंखिन सों निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै ।
जिन आखिन सौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै ॥
भौंदू भाई० ॥ ४ ॥

जिन आँखिन के आगे जगत के लागैं काज सब झूठे।
तिन सौं गमन होय शिव सनमुख विषय-विकार अपूठे॥
भैया माई ॥५॥

जिन आँखिन में प्रभा परम की पर सहाय नहिं लखैं।
जे समाधि सौं तकै अलखित, ढकै न पलक निमेखैं॥
भैया माई० ॥६॥

जिन आँखिन की ज्योति प्रगटिकै, इन आँखिन मैं भासै।
तब इनहू की मिटै विषमता, समता रस परगासै॥
भैया माई ॥७॥

जे आँखें पूरन स्वरूप धरि लोकालोक लखावैं।
अब यह वह सब विकलप तजिकैं, निरविकलप पद पावैं॥
भैया माई ॥८॥

[७१]

राग-गौरी

भैया माई समुझ सबद यह मेरा॥
जो तू देखै इन आँखिन सौं, तामैं कछू न तेरा॥
भैया माई ॥१॥

ए आँखें भ्रम ही सौं उपजी भ्रम ही के रस पागी।
जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम तू इनही की रागी॥
भैया माई० ॥२॥

ए आखैं दोउ रची चामकी, चामहि चाम विलोवै।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै ॥
भौंदू भाई० ॥ ३ ॥

इन आखिन कौ कौन भरोसौ, ए विनसैं छिन माहीं।
है इनको पुदगल सौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं ॥
भौंदू भाई० ॥ ४ ॥

पराधीन वल इन आखिन कौ, विनु प्रकाश न सूझै।
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनों कर बूझै ॥
भौंदू भाई० ॥ ५ ॥

खुले पलक ए कछु इक देखहि, मु दे पलक नहि सोऊ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आखैं दोऊ ॥
भौंदू भाई० ॥ ६ ॥

जगम काय पाय ए प्रगटै, नहि थावर के साथी ।
तू तो मान इन्हें अपने दृग, भयौ भीमको हाथी ॥
भौंदू भाई० ॥ ७ ॥

तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै ।
कै तो सहज खुलै वे आखैं, कै गुरु सगति खोलै ॥
भौंदू भाई, समुझ शबद यह मेरा ॥ ८ ॥

राग–सारग वृन्दावनी

विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥

मरमी होय मरम सो जाने मूरख माने नाहिं ।

विराजै ॥ १ ॥

आतम 'राम' ज्ञान गुन 'लछमन' 'सीता' सुमति समेत ।
शुभपयोग 'वानरदल' मंडित वर विवेक 'रण खेत' ॥

विराजै० ॥ २ ॥

ध्यान 'धनुष टंकार' शोर सुनि गई विषय दिति भाग ।
भई भस्म मिथ्यामत 'लंका' उठी धारणा 'आग' ॥

विराजै० ॥ ३ ॥

जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल' लरे निकांछित 'सूर' ।
जूझे रागद्वेष सेनापति संसै 'गढ़' चकचूर ॥

विराजै ॥ ४ ॥

बिलखत 'कुम्भकरण' भव विभ्रम पुलकित मन 'दरयाव' ॥
थकित उदार वीर 'महिरावण' सेतुबंध सम भाव ॥

विराजै ॥ ५ ॥

मूर्छित 'मंदोदरी' दुराशा सजग चरन 'हनुमान' ।
घटी चतुर्गति परणति 'सेना' छुटे छपक गुण 'बान' ॥

विराजै० ॥ ६ ॥

निरखि सकति गुन 'चक्र सुदर्शन' उदय 'विभीषण' दीन ।
फिरै 'कबंध' मही 'रावण की' प्राण भाव शिरहीन ॥

विराजै ॥ ७ ॥

इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सहज 'संग्राम'।
यह विवहार दृष्टि 'रामायण' केवल निश्चय राम ॥
विराजै० ॥ ८ ॥

[७८]

राग-सारंग

हम बैठे अपनी मौन सौं ॥
दिन दस के मिहमान जगत जन, बोलि बिगारै कौनसौं।
हम० ॥ १ ॥
गये बिलाय भरम के बादर, परमारथ-पथ-पौनसौं ॥
अब अन्तर गति भई हमारी, परचे राधारौनसौं ॥
हम० ॥ २ ॥
प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहिं लागै बौनसौं।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौनसौं ॥
हम० ॥ ३ ॥
रहे अघाय पाय सुख सपति, को निकसै निज भौनसौं।
सहज भाव सदगुरु की संगति, सुरझै आवागौनसौं ॥
हम० ॥ ४ ॥

[७९]

राग-सारंग

दुविधा कब जैहै या मन की ॥
कब निजनाथ निरंजन सुमिरौं, तज सेवा जन-जन की ॥
दुविधा० ॥ १ ॥

कब रुचि सौं पीवैं दृग चातक, बूंद अखयपद घन की।
कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की॥
दुविधा० ॥ २ ॥

कब घट अन्तर रहै निरन्तर दिढ़ता सुगुरु-वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ मिटै धारना धन की॥
दुविधा० ॥ ३ ॥

कब घर छाँड़ि होउं एकाकी, लिये लालसा वन की।
ऐसी दशा होय कब मेरी हौं बलि बलि वा छन की॥
दुविधा० ॥ ४ ॥

[८०]

राग–धनाश्री

चेतन तोहि न नेक संभार॥
नख सिख लौं दिढ़ बंधन बेढ़े कौन करै निरवार॥
चेतन ॥ १ ॥

जैसैं आग पखान काठ में लखिय न परत लगार।
मदिरापान करत मतवारो ताहि न कछू विचार॥
चेतन ॥ २ ॥

ज्यों गजराज पखार आप तन आपहि डारत छार।
आपहि उगलि पाट को कीरा तनहि लपेटत तार॥
चेतन ॥ ३ ॥

सहज फनूतर लोटन गो मो, सुनै न पेन अपार।
गीर उपाय न वनै वनारसि सुमिरन भजन अधार॥
चेतन०॥ ४॥

[८१]

राग—आसावरी

रे मन! कर सदा सन्तोष,
जातैं मिटत सब दुख दोष॥ रे मन०॥ १॥

बढत परिग्रह मोह बाढत,
अधिक तृष्णा होति।

बहुत ईंधन जरत जैसैं,
अगनि ऊंची जोति॥ रे मन०॥ २॥

लोभ लालच मूढ जन सो,
कहत कंचन दान।

फिरत आरत नहिं विचारत,
धरम धन की हान॥ रे मन०॥ ३॥

नारकिन के पाय सेवत,
सकुचि मानत संक।

ज्ञान करि बूझै 'बनारसी'
को नृपति को रंक॥ रे मन०॥ ४॥

[८२]

राग–आसावरी

तू आतम गुण जानि रे जानि
साधु वचन मनि आनि रे आनि ॥ तू आतम० ॥ १ ॥
भरत चक्रवर्ति षटखंड साधि
भावना भावति लही समाधि ॥ तू आतम० ॥ २ ॥
प्रसन्नचन्द्र-रिषि भयो सरोष
मन फेरत फिर पायो मोष ॥ तू आतम० ॥ ३ ॥
रावन समकित भयो उदोत
तब बांध्यो तीर्थंकर गोत ॥ तू आतम० ॥ ४ ॥
सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल
पहुंच्यो पंचमगति तिहिं काल ॥ तू आतम० ॥ ५ ॥
सिंह अहार करि हिंसाचार
गये मुकति निज गुण अवधार ॥ तू आतम० ॥ ६ ॥
देखहु परतछ भृंगी ध्यान
ध्यावत कीट भयो ताहि समान ॥ तू आतम० ॥ ७ ॥
कहत 'बनारसि' बारम्बार
और न तोहि छुड़ावण हार ॥ तू आतम० ॥ ८ ॥
[८३]

राग–बिलावल

ऐसैं यौं प्रभु पाइये सुन पंडित प्रानी।
ज्यौं मथि माखन काढ़िये दधि मेलि मथानी ॥
ऐसैं ॥ १ ॥

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै ।
त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै ॥
ऐसैं० ॥ २ ॥

जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै ।
तैसे पंडित पिंड की, रचना निरवारै ॥
ऐसैं० ॥ ३ ॥

पिंड स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई ।
जानै मानै रवि रहै, घट व्यापक सोई ॥
ऐसैं० ॥ ४ ॥

चेतन लच्छन जीव है, जड लच्छन काया ।
चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया ॥
ऐसैं० ॥ ५ ॥

लच्छन भेद विलोकिये, सुविलच्छन वेदै ।
सत्तसरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै ॥
ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों रज सोधै न्यारिया, धन सौं मनकीलै ।
त्यों मुनिकर्म विपाक में, अपने रस झीलै ॥
ऐसैं० ॥ ७ ॥

आप लखै जब आपको, दुविधा पद मेटै ।
सेवक साहिब एक है, तब को किहि भेंटै ॥
ऐसैं० ॥ ८ ॥

राग–आसावरी

तू आतम गुण जानि रे जानि
साधु वचन मनि आनि रे आनि ॥ तू आतम० ॥ १ ॥
भरत चक्रवर्ति षटखंड साधि
भावना भावति लही समाधि ॥ तू आतम० ॥ २ ॥
प्रसनचन्द्र-रिषि भयो सरोष
मन फेरत फिर पायो मोष ॥ तू आतम० ॥ ३ ॥
रावन समकित भयो उदोत
तब बांध्यो तीर्थंकर गोत ॥ तू आतम० ॥ ४ ॥
सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल
पहुंच्यो पंचमगति तिहिं काल ॥ तू आतम० ॥ ५ ॥
सिंह अहार करि हिंसाचार
गये सुकति निज गुण अवधार ॥ तू आतम ॥ ६ ॥
देखहु परतछ भृंगी ध्यान
करत कीट भयो ताहि समान ॥ तू आतम ॥ ७ ॥
कहत 'बनारसि' बारम्बार
और न तोहि छुड़ावन हार ॥ तू आतम ॥ ८ ॥
[८१]

राग–विलावल

ऐसें यों प्रभु पाइये सुन पंडित ग्यानी।
ज्यों मथि माखन काढ़िये दधि मेलि मथानी ॥
ऐसें ॥ १ ॥

करता भरता भोगता, घट सो घट माहीं।
ज्ञान विना सदगुरु विना, तू समुझत नाहीं॥
ऐसें० ॥ ८ ॥

[८५]

राग—रामकली

मगन है आराधो साधो अलख पुरष प्रभु ऐसा।
जहा जहा जिस रस सौं राचै, तहा तहा तिस भेसा॥
मगन है० ॥ ॥ १ ॥

सहज प्रधान प्रधान रूप मे, ससै मे ससैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान मे लैसा॥
मगन है० ॥ २ ॥

उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयसरुप उदैसा।
व्यवहारी व्यवहार करम में, निहचै में निहचैसा॥
मगन है० ॥ ३ ॥

पूरण दशा धरै सम्पूरण, नय विचार में तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा॥
मगन है० ॥ ४ ॥

नाहीं कहत होइ नाहींसा, है कहिये तो हैसा।
एक अनेक रूप है वरता, कहौं कहां लौं कैसा॥
मगन है० ॥ ५ ॥

राग–बिलावल

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये सुन मूरख प्रानी।
जैसे निरख मरीचिका मृग मानत पानी॥
ऐसैं ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुरैल का विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै भ्रम भूलत यों ही॥
ऐसैं ॥ २ ॥

देह अपावन खेदकी अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करम की तैं निज कर जानी॥
ऐसैं० ॥ ३ ॥

नाव कहावति लोक की सो तो नहीं भूलै।
जाति जगत की कल्पना तामें तू भूलै॥
ऐसैं० ॥ ४ ॥

माटी भूमि पहार की तुझ संपति सूझै।
प्रगट पहेली मोह की तू तउ न बूझै॥
ऐसैं ॥ ५ ॥

तैं कबहूं निज गुन विषै निज दृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुसौं अपनायत कीनी॥
ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों मृगनाभि सुवास सौं ढूंढत बन दौरे।
त्यों तुझ मैं तेरा धनी तू खोजत औरे॥
ऐसैं ॥ ७ ॥

राग-भैरव

या चेतन की सब सुधि गई,
व्यापत मोहि विकलता भई ॥
है जड़ रूप अपावन देह,
तासों राखै परम सनेह ॥ १ ॥
आइ मिले जन स्वारथ बंध,
तिनहि कुटम्ब कहै जा बंध ॥
आप अकेला जनमैं मरै,
सकल लोक की ममता धरै ॥ २ ॥
होत विभूति दान के दिये,
यह परपंच विचारै हिये ॥
भरमत फिरै न पावइ ठौर,
ठानै मूढ़ और की और ॥ ३ ॥
बंध हेत को करै जु खेद,
जानै नहीं मोक्ष को भेद ।
मिटै सहज संसार निवास,
तब सुख लहै बनारसीदास ॥ ४ ॥

[८८]

राग-धनाश्री

चेतन उलटी चाल चले ॥
जड़ संगत तैं जड़ता व्यापी निज गुन सकल टले ।
चेतन० ॥ १ ॥

यह अपार ज्यों रतन अमोलिक बुद्धि विवेक ज्यों ऐसा
दरसित वचन विलास 'बनारसि' यह जैसे का तैसा ॥
मगन ॥६॥

[८६]

राग–रामकली

चेतन तू तिहुँकाल अकेला

नदी नाव संजोग मिलै ज्यों
त्यों कुटुंब का मेला ॥ चेतन ॥१॥

यह संसार असार रूप सब
ज्यों पटपेखन खेला ।
सुख सम्पति शरीर जल बुद बुद
विनशत नाहीं बेला ॥ चेतन ॥२॥

मोह मगन आतम गुन भूलत
परि तोहि गल जेला ॥
मैं मैं करत चहूँ गति डोलत
बोलत जैसे छेला ॥ चेतन ॥३॥

कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तज
होय सुगुरु का चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय
होय सहज सुरझेला ॥ चेतन ॥४॥

[८७]

ये है दर्शन निरमल कारी,
गुरु ज्ञान सदा सुभकारी ॥
कहै बनारसी श्रीजिन भजले,
यह मति है सुखकारी ॥ साधो० ॥३॥
[६०]

जगजीवन

(संवत् १६५०–१७२०)

कवि जगजीवन आगरे के रहने वाले थे। ये अग्रवाल जैन थे तथा गर्ग इनका गोत्र था। इनके पिता का नाम अभयराज एवं माता का नाम मोहनदे था। अभयराज जाफरखां के दीवान थे जो बादशाह शाहजहां के पांच हजारी उमराव थे। ये बड़े कुशल शासक थे। इनके पिता अभयराज सर्वाधिक सुखी व्यक्ति थे इनके अनेक पत्नियां थी जिनमें से सबसे छोटी मोहनदे से जगजीवन का जन्म हुआ था।

जगजीवन स्वयं विद्वान् थे और बनारसीदास के प्रशंसकों में से थे इनकी एक शैली भी थी जो अध्यात्म शैली कहलाती थी। पं० हेमराज रामचन्द्र, संघी मथुरादास, भवालदास, भगवतीदास एवं पं० जगजीवन

इस शैली के प्रमुख स्तम्भ थे। पं. हीरानन्द ने समवसरणविधान की रचना सम्वत् १७०१ में की थी। उन्होंने अपनी रचना में जगजीवन का परिचय निम्न प्रकार लिखा है—

> अब सुनि नगरराज आगरा सकल सोभ अनुपम सागरा।
> साहजहां भूपति है जहां राज करै नयमारग तहां ॥ ७५ ॥
>
> • • • • •
>
> ताको जाफरखां उमराउ पंच हजारी प्रगट कराउ।
> ताको अगरवाल दीवान गरग गोत सब विधि परवान ॥७८॥
>
> संघी अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए।
> वनितागण नाना परकार, तिनमें लघु मोहनदे सार ॥ ८० ॥
>
> ताको पूत पूत सिरमौर जगजीवन जीवन की ठौर ॥
> सुन्दर सुभग रूप अभिराम परम पुनीत धरम धन धाम ॥८१॥

जगजीवन ने सम्वत् १७०१ में बनारसीविलास का सम्पादन किया। इसमें बनारसीदास की छोटी-छोटी रचनाओं का संग्रह है। वे स्वयं भी अच्छे कवि थे और अब तक इनके ४५ पद उपलब्ध हो चुके हैं। इन छोटे छोटे पदों में ही इन्होंने अपने अभीष्ट भावों को लिखने का प्रयास किया है। अधिकांश पद स्तुति परक हैं। 'जगत सब दीखत घन की छाया' इनका बहुत ही प्रिय पद है। कवि ने और कितनी रचनायें लिखी यह अभी खोज का विषय है।

राग–मल्हार

जगत सब दीसत घन की छाया ॥
पुत्र कलत्र मित्र तन संपति,
उदय पुद्गल जुरि आया।
भव परनति वरषागम सोहै,
आश्रव पवन बहाया ॥ जगत० ॥ १ ॥
इन्द्रिय विषय लहरि तडता है,
देखत जाय बिलाया ।
राग दोष बगु पंकति दीरघ,
मोह गहल घरराया ॥ जगत० ॥ २ ॥
सुमति विरहनी दुख दायक है,
कुमति संजोग ति भाया।
निज संपति रतनत्रय गहि कर,
मुनि जन नर मन भाया ॥
सहज अनंत चतुष्टय मंदिर,
जगजीवन सुख पाया ॥ जगत० ॥ ३ ॥

[६१]

राग–रामकली

आछी राह बताई, हो राज म्हांनै ॥ आछी० ॥
निपट अन्धेरो भव वन मांही ।

समकित दो पटसारी दीनी ।
चारित्र सिवमग दिखाई ॥ हो राज ॥ २ ॥
यूँ प्रभु भव सिवपुर पास्यौं ।
जगजीवण सुखदाई ॥ हो राज ॥ ३ ॥

[६२]

राग-रामकली

आजि मैं पायो प्रभु दरसण सुखकार ॥
दरसि परस जीव जैसी भाई ।
कबहूँ न छांड़ू सार ॥ आजि मैं ॥ १ ॥
दरसण करत महा सुख उपजत ।
पतछिन कटै भौ भार ॥
जैन दिखय करता दुख हरता ।
जगजीवण आधार ॥ आजि मैं ॥ २ ॥

[६३]

राग-बिलावल

करिये प्रभु ध्यान पाप कटै भव भव के ।
क मै महोत्स भवाई हो ॥ करिये । ॥
परम चरित्र की या विरिया है यो प्यारे ।
आलसी नींद निवारी हो ॥ करिये प्रभु ॥ १ ॥

तन सुध करिके, मन थिर कीज्ये हो प्यारे।

जिन प्रभु का नाम उचारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ २ ॥

जगजीवन प्रभु को, या विधि ध्यावो हो प्यारे।

येही शिव सुखकारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ ३ ॥

[६४]

राग-सिन्दूरिया

थे म्हारे मन भाया जी, नेम जिनद ॥

अद्भुत रूप अनूपम राजित।

कोटि मदन किये मद ॥ थे म्हारे मन० ॥ १ ॥

राग दोष तैं रहित हो स्वामी।

तारे भविजन वृन्द ॥ थे म्हारे मन० ॥ २ ॥

जगजीवण प्रभु तेरे गुण गावे।

पावै सिव सुखकंद ॥ थे म्हारे मन० ॥ ३ ॥

[६५]

राग-सिन्दूरिया

दरसण कारण आया जी महाराज,

प्रभूजी थाका दरसण कारण आया जी महाराज ॥

दरसण की अभिलाष भई जब,

पुन्य वृक्ष उपजाया जी ॥

प्रभु जी० ॥ १ ॥

तुम समीप आवे कू धायो
छपत पुष्प सुधाय जी ॥
प्रभू जी ॥२॥

तुम मुखचन्द्र विलोकन आवे,
पल अमृत फलि आया जी ॥
प्रभू जी० ॥३॥

जगजीवन पावै शिव सुख सारे,
निरखे ये कर ध्याया जी ॥
प्रभू जी ॥४॥

[६१]

राग-रामकली

निस दिन ध्याइयो जी प्रभु को
जो नित मंगल गाइयो जी ॥
अष्ट द्रव्य उत्तम कू सवारि
प्रभु पद पूज रचाइयो जी ॥
निस दिन ॥१॥

अति उछाह मन वच तन सेती
हरषि हरषि गुण गाइयो जी ॥
निस दिन ॥२॥

इनही सू सुरपदवी पावै
अनुक्रम शिवपुर जाइयो जी ॥
निस दिन ॥३॥

थी गुरुजी थें मिश्र बताई,
जगजीवण सुन्दरा सोजी ॥
निस दिन० ॥४॥

[६७]

राग–मल्हार

प्रभुजी आजि मैं सुख पायो
अब नागन छवि समता रस भीनी,
सो लखि मैं हरषायो ॥
प्रभु जी० ॥१॥
भव भव के संचित पाप कटे हैं,
ज्ञान भान दरसायो ॥
प्रभु जी० ॥२॥
जगजीवण के भाग जगे हैं,
तुम पद सीस नमायो ॥
प्रभु जी० ॥३॥

[६८]

राग–मल्हार

प्रभु जी म्हारो मन हरष्यो छै आजि ॥
मोह नींद में सूतो छो मैं,
थें जगायो आजि प्रभु जी ।

भरम भुलायो मेरा चित दुखसायो
ये कीनू उपगार ॥
प्रभु जी० ॥ १ ॥

निज परणति प्रभू भेद बतायो जी
भरम मिटायो सुख पायो ये कीनू हितसार
प्रभु जी ॥ २ ॥

निज चरणा को ध्यान धारयो जी
करम नसाय शिवपाये अगजीवन सुखकार ॥
प्रभु जी ॥ ३ ॥

[६६]

राग–कनड़ो

हो मन मेरा तू भरम नैं जांबरा
जा सेये तैं शिव सुख पावे
सो तुम नांहि पिछाणदा ॥

हिंसा कर कुमि परधम बांधा
पर त्रिय सौं रति चांहदा ॥ हो मन ॥ १ ॥

झूठ वचनि करि बुरो कियो पर
परिग्रह मार बंधावदा ॥

आठ पहर तृष्णा कर संकल्पै
रुद्र भाव मैं मिलयदा ॥ हो मन ॥ २ ॥

क्रोध मान छल लोभ करत्रो हो,
मद मिथ्यातैं न छाडिदा ॥
यह अघकरि सुख सम्पति चाहै,
सो कबहूँ न लहावदा ॥ हो मन० ॥ ३ ॥
इनकू त्यागि करो प्रभु सुमरण,
रतनत्रय उर लांवदा ॥
जगजीवण तैं वही सुख पावै,
अनुक्रम शिवपुर पावदा ॥ हो० ॥ ४ ॥
[१००]

राग-बिलावल

मूरति श्री जिनदेव की
मेरैं नैंनन माहि वसी जी ॥
अद्भुत रूप अनोपम है छवि,
रागदोष न तनकसी ॥
मूरति० ॥ १ ॥
कोटि मदन वारू या छवि पर,
निरखि निरखि आनन्द भर वरसी ॥
जगजीवन प्रभु की सुनि वाणी,
सुरग मुकति मगदरसी ॥
मूरति० ॥ २ ॥
[१०१]

राग—बिलावल

जिन थांके दरस कीयो जी
म्हारे आजि भयो जी आनन्द ॥
आजि ही नैन सुफल भये मेरे
मिटे सकल दुख दंद ॥
मोह सुभट सब दूरि भगे हैं
उपज्यो ज्ञान अमंद ॥ जिन थांके ॥ १ ॥
पुनि प्रभू पूजा रची अब तेरी
नसे कर्म सब विघ्न ॥
जगजीवण प्रभु सरण गही मैं
दीजे सिव सुख वृंद ॥ जिन थांके ॥ २ ॥
[१०२]

राग—मल्हार

जनम सफल कीयो जी प्रभुजी
अब थांका चरणां आया ॥
म्हे तो म्हांको जनम ॥
अद्भुत कल्पवृक्ष चिंतामणि
सो जग मैं हम पाया ॥
तीन लोक नायक सुखदायक,
आदिनाथ पद ध्याया ॥
जिनजी अब ॥ १ ॥

दरस कीयो सब वाञ्छापूरी,
तुम पद शीश नवाया ॥
जिनवाणी सुणि के चित हरष्यो,
तत्व भेद दरसाया ॥
जिनजी अब० ॥ २ ॥

यातैं मो हिय सरधा उपजी,
रहिये चरण लुभाया ॥
जगजीवण प्रभु उचित होय सो
जो कीज्ये मन भाया ॥
जिनजी अब० ॥ ३ ॥

[१०३]

राग—बिलावल

जामण मरण मिटावो जी,
महाराज म्हारो जामण मरण० ॥
भ्रमत फिरयो चहुगति दुख पायो,
सोही चाल छुडावो जी ॥
महाराज म्हारो जामण मरण० ॥ १ ॥
विनही प्रयोजन दीनबन्धु तुम,
सोही विरद निवाहो जी ॥
महाराज म्हारो० ॥ २ ॥

जगजीवन प्रभु तुम सुखदायक
मोहू शिवसुख द्याज्यो जी ॥
महाराज म्हारो० ॥ ३ ॥
[१ ४]

राग–रामकली

हो दयाल दया करियो ॥
तनक भूप मैं मद कवि कीन्ही
आनी लाज गहियो ॥ हो० ॥ १ ॥
मैं अजान कछु जानत नाहीं
गुन औगुण सब सम्भालियो ॥
राखो लाज सरन आपकी
रविसुत त्रास मिटाइयो ॥ हो ॥ २ ॥
मैं अजान भगत नहीं कीनी
तुम दयाल नित रहियो ॥
जगजीवन की है यह विनती
आप अमरसु कहियो ॥ हो ॥ ३ ॥
[१०४]

राग–बिलावल

म्हे तो जिन चाख्यां अमिय श्री अरिहंत ॥
भ्रमत फिरे मति जग में जिनवर
बिन परम संग लागयां ॥
म्हे ॥ १ ॥

जिन वृष तैं जो तप व्रत संजय
सोही निति-प्रति पालणा ॥
येही० ॥ २ ॥

जगजीवरण प्रभु के गुण गाकरि
मुक्ति वधू सुख जाचणा ॥
येही० ॥ ३ ॥

[१०६]

राग–मल्हार

भला तुम सु नैंना लगे ॥
भाग वडे मैंरे साइयां
तुम चरणन मैं पगे ॥ भला० ॥ १ ॥

तिहारो दरस जवलू नहि पायो,
दुष्ट करम मिलि ठगे ॥ भला० ॥ २ ॥

प्रभु मूरति समता रस भीनीं,
लखि लखि फिर उमगे ॥ भला० ॥ ३ ॥

जगजीवरण प्रभु ध्यान तिहारो,
दीजे सिव सुख मगे ॥ भला० ॥ ४ ॥

[१०७]

राग—सारग

बहोत काल बीत पाये हो मेरे प्रभुजी
तारण तरण जिहाज ॥
कोइ आनन्द भये इक दरसन
अर धर्म श्रवण सुख साजे ॥
बहोत० ॥ १ ॥

कोउ मारिग चले इक श्रावक
अर धरम महा मुनिराज ॥
बहोत ॥ २ ॥

जगजीवण मांगे यह भवसुख
अर परमत शिवके राज ॥
बहोत० ॥ ३ ॥

[१८]

जगतराम

(सवत् १६८०–१७४०)

जगतराम का दूसरा नाम जगराम भी था। पद्मनन्दि पचविंशति भाषा के कर्ता जगतराम भी सभवत ये जगतराम ही थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न नामों का उपयोग किया है। इनके पिता का नाम नदलाल एव पितामह का नाम माईदास था। ये सिंघल गोत्रीय अग्रवाल थे। पहिले ये पानीपत में रहते थे और बाद में आगरा आकर रहने लगे। आगरा उस समय प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र था तथा कुछ समय पूव ही वहां बनारसीदास जैसे उच्च कवि हो चुके थे।

जगतराम हिन्दी के अच्छे कवि थे। इनका साहित्यिक जीवन सम्वत् १७२० से १७४० तक रहा होगा। सम्वत् १७२२ में इन्होंने

पद्मनन्दि पंचविंशतिका भाषा की रचना आगरे में ही समाप्त की और इसके पश्चात् सम्यक्त्वकौमुदी कथा आत्मविलास आदि ग्रन्थों की रचना की। पदों के निर्माण की ओर इनकी रुचि कब से हुई इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन सम्भवतः ये अपने अन्तिम जीवन में भजनानन्दी हो गये थे इसलिए इन्होंने 'भजन सम नहीं काज दूजो' पद की रचना की थी। ये पद रचना एवं पद पाठ में इतने तल्लीन हो गये कि इन्हें भजन पाठ के अतिरिक्त अन्य कार्य फीके नजर आने लगे।

कवि के पद साधारण स्तर के हैं। ये अधिकांशतः स्तुति परक हैं एवं लौकिक हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी एवं ब्रज भाषा का प्रभाव है। अब तक इनके १२२ पद प्राप्त हो चुके हैं।

राग-सोरठ

रे जिय कौन सयानें कीना।
पुद्गल सौं रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड जु यिनारा,
काम भया अतिहीना ॥ रे जिय० ॥ १ ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक,
मूरति रहित अधीना ।
ये सपरस रस गंध वरन मय,
छिनक थूल छिन छीना ॥ रे जिय० ॥ २ ॥
स्वपर विवेक यिचार विना सठ,
धरि धरि जनम उगीना ॥
जगतराम प्रभु सुमरि सयानें,
और जु कछू कमीना ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥
[१०६]

राग-रामकली

जतन विन कारज विगरत भाई ॥
प्रभु सुमरन तें सब सुधरत है,
ता मैं क्यों अलसाई ॥ जतन० ॥ १ ॥
विषै लीनता दुख उपजावत,
लागत जहा ललचाई ॥

पद्मनन्दि पंचविंशति भाषा की रचना आगरे में ही समाप्त की और इसके पश्चात् सम्यक्त्वकौमुदी तथा आगमविलास आदि ग्रन्थों की रचना की। पदों के निर्माण की ओर इनकी रुचि कब से हुई इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन सम्भवतः वे अपने अन्तिम जीवन में मस्तानामस्ती हो गये थे इसलिए इन्होंने 'भजन सम नहीं काज दूजो' पद की रचना की थी। वे पद रचना एवं पद पाठ में इतने तल्लीन हो गये कि इन्हें भजन पाठ के अतिरिक्त अन्य कार्य फीके नजर आने लगे।

कवि के पद साधारणतः स्तर के हैं। वे अधिकांशतः स्तुति परक हैं एवं संबोधपरक हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी एवं ब्रज भाषा का प्रभाव है। अब तक इनके १४२ पद प्राप्त हो चुके हैं।

राग-सोरठ

रे जिय कौन सयाने कीना।
पुद्गल के रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड़ जु विचारा,
काम भया अतिहीना ॥ रे जिय० ॥ १ ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक,
मूरति रहित प्रवीना ।
ये सपरस रस गंध वरन मय,
छिनक थूल छिन छीना ॥ रे जिय० ॥ २ ॥
स्वपर विवेक विचार विना सठ,
धरि धरि जनम खीना ॥
जगतराम प्रभु सुमरि सयानें,
और जु कछू कमीना ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥

[१०६]

राग-रामकली

जतन बिन कारज विगरत भाई ॥
प्रभु सुमरन तें सब सुधरत है,
ता मैं क्यौं अलसाई ॥ जतन० ॥ १ ॥
विषै लीनता दुख उपजावत,
लागत जहां ललचाई ॥

चतुरन की व्योहार नव कहीं
समझ न परत ठगाई ॥ वचन ॥ २ ॥
सतगुरु शिक्षा अमृत पीवो
मन करन कठोर लगाई ॥
ज्यों अजरामर पद को पावो
जगतराम सुखदाई ॥ वचन ॥ ३ ॥
[११०]

राग–ललित

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै ॥
प्रथम ही पाप हिंसा जा मांही
दूजे झूठ अपावै ॥ कैसे ॥ १ ॥
तीजे चोर कुशावित जामैं
मैंक न रस उपजावै ॥
चौथे परनारी सौं परचै
सील भरत मद खावै ॥ कैसे ॥ २ ॥
पंचमा पाप पाचवां जामै
छिन छिन अधिक बढावै ॥
सब विधि अशुभ रूप जो चरित
करत ही चित अपसावै ॥ कैसे ॥ ३ ॥
अपार महा लेस अति नीको
खेलत हो हुलसावै ॥

जगतराम सोई खेलिये,
जो जिन धरम वढावै ॥ कैसें० ॥ ४ ॥
[१११]

राग-कन्नडो

गुरू जी म्हारो मनरो निपट अजान ॥
वार वार समभावत हो तुम,
तोऊ न धरत सरधान ॥ गुरू० ॥ १ ॥
विषै भोग अभिलाषा लागी,
सहत काम के वान ॥
अनरथ मूल क्रोध सो लिपटयो,
वहोरि धरै वहु मान ॥ गुरु० ॥ २ ॥
छल को लिये चहत कारज को,
लोभ पग्यो सव थान ॥
विनासीक सव ठाठ वन्या है,
ता पर करइ गुमान ॥ गुरु० ॥ ३ ॥
गुरु प्रसाद तै सुलट होयगी,
दयो उपदेस सुदान ॥
जगतराम चित को इत ल्यावो,
सुनि सिद्धान्त वखान ॥ गुरु० ॥ ४ ॥
[११२]

चतुरन को व्यौहार नय यहाँ,
समझ न परत ठगाई ॥ अवम० ॥ २ ॥
सतगुरु शिक्षा अमृत पीवो
अब करन कठोर बगाई ॥
ज्यौ अजरामर पद को पावो,
जगतराम सुखदाई ॥ अवन० ॥ ३ ॥
[११०]

राग–ललित

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै ॥
प्रथम ही पाप हिंसा का माँही
दूजे झूठ अपावे ॥ कैसे ॥ १ ॥
तीजे चोर कसाविन जामें
मैंक म रस उपजावे ॥
चौथीं परनारी सौं परचै
सीक परत मन लावे ॥ कैसे ॥ २ ॥
प्रसना पाप पांचवां जामें
छिन छिन अधिक बढावे ॥
सब विधि अशुभ रूप जो कारिज
करत ही चित पपलावे ॥ कैसे ॥ ३ ॥
बाहर मन देख अति नीके
देखत हो दुखसाने ॥

राग-ईमन

कहा करिये जी मन वस नाही ॥
खैंचि खैंचि तुम चरनन लाऊ,
छिन लागत छिन फिरि जाही ॥ कहा० ॥ १ ॥
नैंक असाता कर्म झकोरैं,
सिथिल होत अति मुरझाही ॥ कहा० ॥ २ ॥
साता उदय सनक जब पावत,
तब छुरपिव ह्वै निकसाहीं ॥ कहा० ॥ ३ ॥
जगतराम प्रभु सुनों वीनती,
सदा वसों मेरे उर माही ॥ कहा० ॥ ४ ॥

[११४]

राग-ईमन

औसर नीको वनि आयो रे ॥
नरभव उत्तम कुल सुभ संगति,
जैन धरम तैं पायो रे ॥ औसर० ॥ १ ॥
दीरघ आयु समझि हूँ पाई,
गुरु निज मन्त्र वतायो रे ॥
वानी सुनत सुनत सहजै ही,
पुन्य पदारथ भायो रे ॥ औसर० ॥ २ ॥

राग–बिलावल

जिनकी बानी भव मनमानी ॥

जाके सुनत मिटत सब दुविधा,
प्रगटत निज निधि ज्ञानी ॥ जिनकी० ॥ १ ॥

तीर्थंकरादि महापुरुषनि की
जामें कथा सुहानी ॥
प्रथम वेद यह भेद जास को,
सुनत होय भव हानी ॥ जिनकी० ॥ २ ॥

जिनकी लोक अलोक कथा–
जुत च्यारों गति सहमानी ॥
दुतिय वेद इह भेद सुनत होय
मूरख हू सरधानी ॥ जिनकी ॥ ३ ॥

मुनि श्रावक आचार बतावत
तृतीय वेद यह ठानी ॥
जीव अजीवादिक तत्वनि की
चतुरथ वेद कहानी ॥ जिनकी० ॥ ४ ॥

धन्य वंध करि राखी जिन तें
धन्य धन्य गुरु ज्ञानी ॥
जाके पढत सुनत कछु समझत
जगतराम से मानी ॥ जिनकी० ॥ ५ ॥

पुन्य उगोत होत जिय जाके,
सो आवत इह ठाम ॥
साधरमी जन सहज सुखकारी
रलि मिलि है जगराम ॥ अब० ॥ ४ ॥

[११६]

राग–ईमन

अहो, प्रभु हमरी विनती अब तौ अवधारोगे ॥
जामन मरन महा दुख मोकों सो तुम ही टारोगे ॥
अहो० ॥ १ ॥
हम टरत तुम हेरत नाही, यौं तो सुजस बिगारोगे ॥
हम है दीन, दीन बन्धु तुम यह हित कब पारोगे ॥
अहो० ॥ २ ॥
अधम उधारक बिरद तुम्हारो, करणी कहा विचारोगे ॥
चरन सरन की लाज यही है जगतराम निस्तारोगे ॥
अहो० ॥ ३ ॥

[११७]

राग–सिन्दूरिया

कैसा ध्यान धरा है, री जोगी ॥
नगन रूप दोऊ हाथ झुलाये,
नासा दृष्टि खरा है ॥
री जोगी० ॥ १ ॥

कमी नहीं कारज मिलिवे की
　　अब करि क्यों सुसतायो रे ॥
विषय कषाय त्यागि व्रत सेती
　　पूजा दान सुभायो रे ॥ औसर० ॥ ३ ॥
देव धरम गुरु हो सरधानी
　　स्वपर विवेक मिलायो रे ॥
जगतराम मति है गति माफिक,
　　परि सपरेरा बतायो रे ॥ औसर० ॥ ४ ॥

[१९५]

राग—रामकली

अब ही हम पायौ विसराम ॥
गुरु करिज को चितवन मूल
　　जब आये जिन धाम ॥ अब० ॥ १ ॥
दरसन करिकै नैननि सौं
　　मुख उचरे जिन नाम ॥
कर जुग जोरि अमल बानी थुति
　　मस्तग करत प्रनाम ॥ अब ॥ २ ॥
सन्मुख रहें रहत चरननि सुख
　　हरष सुमरि गुन ग्राम ॥
नरभव सफल भयो या विधि सौं
　　मन वांछित फल पाम ॥ अब ॥ ३ ॥

तव सुरगिरि पर देवोंने जाकी,
कलश हजार प्रक्षाल करी ॥
शची इन्द्र दोऊ नांचैं गावै,
उनको थो वहताल करी ॥ चिर० ॥ ३ ॥
जाकै वालपने की 'महिमा,
देखन ही इति हाल करी ॥
वय लघु लऊ सवनि के गुरु प्रभु,
जगतराम प्रतिपाल करी ॥ चिर० ॥ ४ ॥

[११६]

राग-सिन्दूरिया

ता जोगी चित लावो मोरे वाला ॥
सजम डोरी शील लगोटी घुलघुल, गाठ लगावे मोरे वाला ।
ग्यान गुदडिया गल विच डाले, आसन दृढ जमावे ॥ १ ॥
अलखनाथ का चेला होकर मोहका कान फडावे मोरेवाला ।
धर्म शुक्ल दोऊ मुद्राडाले, कहत पार नहीं पावे मोरे ॥ २ ॥
क्षमा की सौति गलै लगावै, करुणा नाद बजावे मोरेवाला ।
ज्ञान गुफा मे दीपक जोके चेतन अलख जगावे मोरेवाला ॥ ३ ॥
अष्टकर्म काठ की धूनी ध्यानकी अगनि जलावै मोरेवाला ।
उत्तम क्षमा जान भस्मीको, शुद्ध मन अ ग लगावे मोरेवाला ॥४॥
इस विधि जोगी बैठ सिंहासन, मुक्तिपुरी की धावे मोरेवाला ।
वीस आभूषणधार गुरु ऐसे फेरे न जगमे आवे मोरेवाला ॥ ५ ॥

क्षुधा तृषादि परीसह विग्रपी
आतम रंग पग्या है ॥
विषय कषाय त्यागि धरि धीरज
अमन संग अग्या है ॥
री जोगी० ॥ २ ॥

बाहिर तन मलीन सा दीसत
अन्तरंग उजला है ॥
जगतराम लखि ध्यान साधु को
नमो नमो कहता है ॥
री जोगी ॥ ३ ॥
[११८]

राग-बिलावल

चिरंजीवो यह बालक री,
जो सब्जन की आधार करी ॥ चिरं ॥
समवविजैनन्दन जग बंदन
श्रीहरिवंश उजास करी ॥ चिरं ॥ १ ॥
जाको गरभ समै सुर पूज्यी
तब तैं प्रजा समाज करी ॥
पन्द्रह मास रतन जे बरषे
प्रगटयो तिनकैं भाग करी॥ चिरं ॥ २ ॥

तव सुरगिरि पर देवोंने जाकी,
कलश हजार प्रछाल करी ॥
शची इन्द्र दोऊ नाचैं गावैं,
उनको थो वहताल करी ॥ चिर० ॥ ३ ॥
जाके वालपने की 'महिमा,
देखन ही इति हाल करी ॥
वय लघु लउ सवनि के गुरु प्रभु,
जगतराम प्रतिपाल करी ॥ चिर० ॥ ४ ॥

[११६]

राग-सिन्दूरिया

ता जोगी चित लावो मोरे वाला ॥
सजम डोरी शील लगोटी घुलघुल, गाठ लगावे मोरे वाला ।
ग्यान गुदडिया गल विच डाले, आसन दृढ जमावे ॥ १ ॥
अलखनाथ का चेला होकर मोहका कान फडावे मोरेवाला ।
धर्म शुक्ल दोऊ मुद्राडाले, कहत पार नहीं पावे मोरे ॥ २ ॥
क्षमा की सींगि गलैं लगावै, करुणा नाद वजावे मोरेवाला ।
ज्ञान गुफा मे दीपक जोके चेतन अलख जगावे मोरेवाला ॥ ३ ॥
अष्टकर्म काठ की धूनी ध्यानकी अगनि जलावै मोरेवाला ।
उत्तम क्षमा जान भस्मीको, शुद्ध मन अ ग लगावे मोरेवाला ॥४॥
इस विधि जोगी बैठ सिंहासन, मुक्तिपुरी की धावे मोरेवाला ।
वीम आभूषणधार गुरु ऐसे फेरे न जगमे आवे मोरेवाला ॥ ५ ॥

राग—दरबारी कान्हरो

तुम साहिब मैं चेरा मेरा प्रभुजी हो ॥
चूक चाकरी मो चेरा की साहिब जी तिन मेरा ॥१॥
टहल यथाविधि बन नहीं आवे करम रहे कर घेरा ।
मेरो अवगुण इतना ही लीजे निश दिन सुमरन तेरा ॥२॥
करो अनुग्रह अब मुझ ऊपर मेटो भव उरझेरा ।
'जगतराम' कर जोड़ वीनवे राखो चरनन नेरा ॥३॥
[१२१]

राग—जंगला

नहिं गोरो नहिं कारो चेतन अपनो रूप निहारो ॥
दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत सकल करमते न्यारो रे ॥१॥
जाके बिन पहिचान जगत में सह्यो महा दुख भारोरे ।
जाके लखे उदय हो तत्क्षण केवल ज्ञान उजारो रे ॥२॥
कर्मजनित पर्याय पायके कीनों तहां पसारो रे ।
आपापरको रूप न जान्यो तातैं भव उरझारो रे ॥३॥
अब निजमें निजकूं अवलोकूं जो हो भव सुरझारो रे ।
'जगतराम' सब विधि सुख सागर पद पाऊँ अविकारो रे ॥४॥
[१२२]

राग-मल्हार

प्रभु विन कौंन हमारो सहाई ॥
और सबै स्वारथ के साथी,
तुम परमारथ भाई ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
भूलि हमारी ही हमकौ इह
भई महा दुखदाई ॥
विषय कषाय सरप सग सेयो,
तुमरी सुधि विसराई ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
उन डसियो विष जोर भयो तव,
मोह लहरि चढि आई ॥
भक्ति जडी ताके हरिवे कौं,
गुरु गारुड वताई ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
यातै चरन सरन आये हैं,
मन परतीति उपाई ॥
अव जगराम सहाय किये ही,
साहिव सेवक ताई ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

[१२३]

राग-जौनपुरी

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अग अनेक यामें, एक ही सिरताज ।

करत आज दुरत पावक जुरत संत समाज ॥
भरत पुरब भरतार पार्ने मिलत मन सुख साज ॥१॥
भरत का यह दृश्य देखा क्यों सुधित को साज ।
धम ई धन को भगति सम भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा क्यों तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद याते होत अविचल राज ॥३॥

[१२४]

राग–रामकली

मेरी कौन गति होसी हो गुसांई ॥
पंच पाप मोसौं नहीं छूटे
विकथा चारयौं भाई ॥ मेरी ॥ १ ॥
तीन जोग मेरे वस नांही
रागद्वेष जोड़ भाई ॥
एक निरंजन रूप तिहारो
ताकी खबर न पाई ॥ मेरी ॥ २ ॥
एक बार कबहुं तिहुं सेती
मन परतीति न आई ॥
ताही तें भव दुख भुगते
बहु विधि आपद पाई ॥ मेरी० ॥ ३ ॥
मा सों पतित निकट अब टेरत
कहा अम्बर सी भाई ॥

पतित उधारक सकति जु अपनी,
राखी कत्र के ताई ॥ मेरी० ॥ ४ ॥
इह कलिकाल क्षेत्र व्यापक है,
हों हम जानत साई ॥
जगतराम प्रभु रीति विसारी,
तुम हूँ व्याप्यो काई ॥ मेरी० ॥ ५ ॥

[१२५]

राग–विलावल

सखी री विन देखे रह्यो न जाय ॥
ये री मोहि प्रभु को दरस कराय ॥
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति,
नैन रहे निरखन ललचाय ॥ सखी री० ॥ १ ॥
तन सुकमाल मार जिह मारयो,
तासौ मोह रह्यो थरराय ॥
जग प्रभु नेमि सग तप करनौ,
अब मोहि और न कछु सुहाय ॥ सखी री० ॥ २ ॥

[१२६]

राग–विलावल

समझि मन इह औसर फिरि नाही ॥
नर भव पाय कहा कहिये तोहि,
रमत विषै सुख माही ॥ समझि० ॥ १ ॥

जा तन सौं तप तपे सुगति है
दुरगति दूरि नसाही ॥
ताहू तू नित पोषत है रे
आप अकाज कराही ॥ समझि० ॥ २ ॥
धन की पाय परम अरिज
करि उद्यम लाही ॥
जोवन पाय सील मजिमाई
क्यौं अमरापुर जाही ॥ समझि० ॥ ३ ॥
तन धन जोवन पाय खाव इम
सुमरि देव जिन नाही ॥
क्यौं जगराम अचल पद पावो,
सतगुरु यौं समझाही ॥ समझि० ॥ ४ ॥
[१२७]

राग—रामकली

सुनि हो अरज तेरे पाय परौं ॥
तुमको दीन दयाल समझी मैं
तातैं अपनी दुख उचरौं ॥ सुनि ॥ १ ॥
अष्ट कर्म मोहि घेरि रहत है
हौं इनसौं कछु नाहि करौं ।
त्यौं त्यौं अति पीड़ै
कुमति सौं क्यौं क्यौ उबरौं ॥ सुनि ॥ २ ॥

चहुगति में मो सौं जो कीनी,
सुनि सुनि कहा लौं हृदै धरौं ॥
साथि रहैं अरु दगो देय जे,
तिन सगि कैसैं जनम भरौं ॥ सुनि० ॥ ३ ॥
सदीत रावरी सौं करुना निधि,
अब हो इनकों सिथिल करौं ॥
जगतराम प्रभु न्याय नवेरौं,
कृपा तिहारी मुकति वरौं ॥ सुनि० ॥ ४ ॥

[१२८]

द्यानतराय

(संवत् १७३३-१७८३)

कविवर द्यानतराय उन प्रसिद्ध कवियों में से हैं जिनके पद, भजन, पूजा पाठ एवं अन्य रचनायें जन साधारण में अत्यधिक प्रिय हैं तथा जो सैकड़ों हजारों स्त्री पुरुषों को कण्ठस्थ हैं। कवि आगरे के रहने वाले थे किन्तु बाद में देहली आकर रहने लगे थे। इनके बाबा का नाम वीरदास एवं पिता का नाम श्यामदास था। कवि का जन्म सम्वत् १७३३ में आगरे में हुआ था।

आगरा एवं देहली में जो विभिन्न आध्यात्मिक शैलियां थी उनसे कवि का घनिष्ट सम्बन्ध था। ये बनारसीदासजी के समान विशुद्ध आध्यात्मिक विद्वान् थे तथा इसी की चर्चा में अपने जीवन को लगा

रखा था। हिन्दी के ये बड़े भारी विद्वान थे तथा काव्य रचना की ओर इनकी विशेष रुचि थी। धर्मविलास में इनकी प्रायः सभी रचनाओं का संग्रह है। कवि ने इसे करीब १० वर्ष में पूर्ण किया था। इसमें इनके १ से अधिक पद विभिन्न पूजा पाठ एवं ४५ अन्य छोटी बड़ी रचनायें हैं। सभी रचनायें एक से एक सुन्दर एवं उत्तम भावों के साथ गुम्फित हैं।

इनके पद आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत हैं। कवि ने आत्म रूप को पहिचान लिया था इसीलिए उन्होंने अपने एक पद में 'अब हम आतम को पहचाना' लिखा है। आत्मा को पहचान कर उन्होंने 'अब हम अमर भये न मरेंगे' का सन्देश जगत को सुनाया। इनके स्तुति परक पद भी बहुत सुन्दर हैं। 'तुम प्रभु कहियत दीन दयाल आप न जाय मुकति में बैठे हम जु रुलत जग जाल' पद कवि के मानसिक भावों का पूर्णतः द्योतक है। कवि के प्रत्येक पद का भाव, शब्द चयन एवं वर्णन शैली अति सुन्दर है। इन पदों में मनुष्य मात्र को सुमार्ग पर चलाने के लिये कहा गया है।

राग–मल्हार

हम तो कबहूँ न निज घर आए ॥
पर घर फिरत बहुत दिन बीते
नाम अनेक धराये ॥ हम० ॥ १ ॥
पर पद निज पद मानि मगन ह्वै,
पर परिणति लपटाये ।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर,
आतम गुण नहिं गाये ॥ हम० ॥ २ ॥
नर पसु देवन को निज मान्यो,
परजै बुद्धि कहाये ।
अमल अखड अतुल अविनासी,
चेतन भाव न भाये ॥ हम० ॥ ३ ॥
हित अनहित कछु समझ्यो नाहीं,
मृग जल बुध ज्यों धाए ॥
द्यानत अब निज निज पर ह्वै,
सतगुरु बैन सुनाये ॥ हम० ॥ ४ ॥

[१२६]

राग–जंगला

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा ॥
रागादिक परिणाम त्याग कै, समता सौं लौ लगाऊँगा ॥
मैं निज० ॥ १ ॥

मन वच काय जोग थिर करके ज्ञान समाधि लगाऊ गा।
कब हौं क्षपक श्रेणि चढि ध्याऊं चारित मोह नशाऊ गा॥
मैं निज० ॥ २ ॥

चारों करम घातिया हन करि परमातम पद पाऊ गा॥
ज्ञान दरश सुख बल भण्डारा चार अघाति बहाऊ गा॥
मैं निज ॥ ३ ॥

परम निरंजन सिद्ध शुद्ध पद परमानन्द कहाऊ गा॥
'द्यानत' यह सम्पति जब पाऊं बहुरि न जग में आऊ गा॥
मैं निज ॥ ४ ॥

[१३०]

राग–सारग

हम लागे आतमराम सों॥
विनाशीक पुद्गल की छाया कौन रमैं धन–धाम सों॥
हम ॥ १ ॥

समता–सुख घट में परगास्यो कौन काज है काम सों।
दुविधाभाव जलांजलि दीनौं मेल भयो निज स्वाम सों॥
हम ॥ २ ॥

भेद ज्ञान करि निज–पर देख्यौ, कौन बिलोके चाम सों।
उरै–परै की बात न भावै लौ लागी गुणग्राम सों॥
हम ॥ ३ ॥

शब्द दशा आगृत दशा रे दोनों विकल्प रूप ।
निर विकल्प शुद्धातमा रे चिदानंद चिद्रूप ॥
आतम० ॥ २ ॥

तन वच सेती भिन्न कर रे, मनसों निज लवलाव ।
आप आप जब अनुभवे रे, तहां न मन वचकाव ॥
आतम० ॥ ३ ॥

छहों द्रव्य नव तत्त्वतें रे न्यारो आतम राम ।
द्यानत जे अनुभव करैं रे ते पावैं शिव धाम ॥
आतम० ॥ ४ ॥

[१३३]

राग-सारग

कर कर आतमहित रे प्रानी ॥
जिन परिणामनि बंध होत सो परनति तज दुखदानी ॥ १ ॥
कौन पुरुष तुम कहां रहत हो किहिकी संगति रति मानी ॥
जे परजाय प्रकट पुद्गलमय ते तैं क्यों अपनी जानी ॥
कर कर ॥ २ ॥

चेतनजोति झलक तुझ मांहीं अनुपम सो तैं बिसरानी ।
जाकी पटतर लगत आन नहिं दीप रतन शशि सूरानी ॥
कर कर ॥ ३ ॥

आपमें आप लखो अपनो पद 'द्यानत' करि तन मन बानी ।

परमेश्वर पद आप पाइये, यौं भाषैं केवल ज्ञानी ॥
कर कर० ॥ ४ ॥

[१३४]

राग-गौरी

देखौ भाई आतम राम विराजै ॥
छहौ दरब नव तत्त्व गेय है, आपसु ग्यायक छाजै ॥
देखौ भाई० ॥ १ ॥

अरिहत सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पाचौ पद जिह माहि ।
दरसन ग्यान चरन तप जिस मैं पटतर कोऊ नाहीं ॥
देखौ भाई० ॥ २ ॥

ग्यान चेतन कहिये जाकी, वाकी पुदगल केरी ।
केवल ग्यान विभूति जासकै, आतम विभ्रम चेरी ॥
देखौ भाई० ॥ ३ ॥

एकेंद्री पंचेन्द्री पुदगल, जीव अतिद्री ग्याता ।
द्यानत ताही सुद्ध दरव कौ, जान पनो सुख दाता ॥
देखौ भाई० ॥ ४ ॥

[१३५]

राग-मांढ

अब हम आतम को पहिचाना ॥
जैसा सिद्ध चेत्र में राजै, तैसा घट मे जाना ॥ १ ॥

देहादिक परद्रव्य न मेरे मेरा चेतन बाना ॥
'द्यानत' जो जाने सो सयाना नहिं जाने सो अयाना ॥ २ ॥
॥ अब हम० ॥

[१२६]

राग–मांढ

अब हम अमर भए न मरेंगे ॥
तन कारन मिथ्यात दियो तजि क्यों करि देह धरेंगे ॥
अब हम ॥ १ ॥
उपजै मरै काल तै प्रांनी तातैं काल हरेंगे ।
राग दोष जग बंध करत है, इनकौं नास करेंगे ॥
अब हम ॥ २ ॥
देह विनासी मैं अविनासी भेद ग्यान करेंगे ।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे हो निखरेंगे ॥
अब हम ॥ ३ ॥
मरे अनंतबार बिन समझे अब सब दुख बिसरेंगे ।
द्यानत निपट निकट दो अक्षर बिन सुमरे सुमरेंगे ॥
अब हम ॥ ४ ॥

[१२७]

राग–श्याम कल्याण

तुम प्रभु कहियत दीन दयाल ॥
आपन जाय मुकति मैं बैठे हम जु रुलत जग जाल ॥
तुम ॥ १ ॥

तुमरो नाम जपैं हम नीके, मन वच तीनों काल।
तुम तो हमको कछू देत नहिं, हमरो कौन हवाल॥
तुम० ॥ २ ॥

बुरे भले हम भगत तिहारे, जानत हो हम चाल।
और कछू नहिं यह चाहत है, राग-दोष को टाल॥
तुम० ॥ ३ ॥

हमसों चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपा विशाल।
द्यानत एक बार प्रभु जगतैं, हमको लेहु निकाल॥
तुम० ॥ ४ ॥

[१३८]

राग-विहागडी

जानत क्यों नहि रे, हे नर आतम ज्ञानी॥
राग दोष पुद्गल की संगति,
निहचै शुद्ध निशानी॥ जानत० ॥ १ ॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में,
ये परजाय विरानी॥
सिद्ध स्वरूप सदा अविनाशी,
जानत विरला प्रानी॥ जानत० ॥ २ ॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु शिख कौन कहानी॥
जनम मरन मल रहित अमल है,
कीच विना ज्यों पानी॥ जानत० ॥ ४ ॥

सार पदारथ है तिहुँ जग में
　　　　नहिं क्रोधी नहिं मानी ॥
द्यानत सो घट माहिं विराजै
　　　　लख हूजै शिवमानी ॥ द्यानत० ॥ ५ ॥

[१३६

राग–सोरठ

नहीं ऐसो जनम बारम्बार ॥
कठिन कठिन लह्यो मानुष-भव विषय तजि मतिहार ॥
॥ नहिं ॥ १ ॥

पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मंझार ।
अंध हाथ बटेर आई तजत ताहि गँवार ॥
॥ नहिं ॥ २ ॥

कबहुँ नरक तिरजंच कबहुँ कबहुँ सुरग विहार ।
जगत माहिं चिरकाल भमियो दुर्लभ नर अवतार ॥
॥ नहिं ॥ ३ ॥

पाय अमृत पांव धोवै कहत सुगुरु पुकार ।
तजो विषय कषाय द्यानत ज्यों लहो भवपार ॥
॥ नहिं ॥ ४ ॥

[१४०]

राग-सारंग

मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥
सकल विभाव अभाव होहिंगे,
विकलपता मिट जाय है ॥ मोहि० ॥ १ ॥
परमातम यह मम आतम,
भेद बुद्धि न रहाय है ॥
औरन की को बात चलावै,
भेद विज्ञान पलाय है ॥ मोहि० ॥ २ ॥
जानै आप आप में आपा,
सो व्यवहार बिलाय है ॥
नय परमाण निक्षेपनि माहीं,
एक न औसर पाय है ॥ मोहि० ॥ ३ ॥
दर्शन ज्ञान चरण को विकलप,
कहो कहा ठहराय है ॥
द्यानत चेतन चेतन ह्वै है,
पुद्गल पुद्गल थाय है ॥ मोहि० ॥ ४ ॥

[१४१]

राग-मांढ

अब हम आतम को पहिचान्यो ॥
जब ही सेती मोह सुभट बल,
छिनक एक मे भान्यो ॥ अब० ॥ १ ॥

राग विरोध विभाव भजे भ्रम
ममता भाव पलाण्यौ ॥
दरसन ज्ञान चरन में चेतन
भेद रहित परमात्मा ॥ अब ॥२॥
जिहि देखें हम और न देख्यो
देख्यो सो सरधान्यौ ॥
ताको कहो कहै कैसें करि,
जा जाने जिम जान्यो ॥ अब ॥३॥
पूरव भाव सुपनवत देखे
अपनो अनुभव तान्यो ॥
द्यानत ता अनुभव स्वादत ही
जनम सफल करि मान्यो ॥ अब ॥४॥
[१४२]

राग–सोरठ

अनहद सबद सदा सुन रे ॥
आप ही जानें और न जाने
कान बिना सुनिये धुन रे ॥ अनहद ॥१॥
भमर गुंज सम होत निरन्तर,
ता अंतर गति चितवन रे ॥
द्यानत तब लौं जीवन मुक्ता
लागत नाहि करम घुन रे ॥ अनहद ॥२॥
[१४३]

राग-भैंरु

ऐसो सुमरन करिये रे भाई।
पवन थमै मन कितहु न जाई ॥
परमेसुर सौं साचौं रहीजै।
लोक रजना भय तजि दीजै ॥ ऐसो० ॥ १ ॥
यम अरु नियम दोउ विधि धारौं।
आसन प्राणायाम सभारौं ॥
प्रत्याहार धारना कीजै।
ध्यान समाधि महारस पीजै ॥ ऐसो० ॥ २ ॥
सो तप तपौं बहुरि नहि तपना।
सो जप जपौ बहुरि नही जपना ॥
सो व्रत धरौ बहुरि नही धरना।
ऐसैं मरौं बहुरि नही मरना ॥ ऐसो० ॥ ३ ॥
पच परावर्तन लखि लीजै।
पाचौं इद्री कौं न पतीजै ॥
द्यानत पाचौ लखि लहीजै।
पंच परम गुरु सरन गहीजै ॥ ऐसो० ॥ ४ ॥

[१४४]

राग-मांढ

आयो सहज वसन्त खेलैं सब होरी होरा ॥
उत बुधि दया छिमा बहु ठाढी,
इत जिय रतन सजे गुन जोरा ॥ आयो० ॥ १ ॥

ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत हैं
अनहद शब्द होत घनघोरा ॥
धरम सुराग गुलाल उड़त है,
समता रंग दुहूँनें घोरा ॥ आयो ॥ २ ॥
परसन उत्तर भरि पिचकारी
छोरत दोनों करि करि जोरा ॥
इतर्तें कहै नारि तुम काकी
उततें कहै कौन को छोरा ॥ आयो ॥ ३ ॥
आठ काठ अनुभव पावक में
जल बुझ शांत भई सब ओरा ॥
द्यानत शिव आनन्द चन्द छवि
देखें सज्जन नैन चकोरा ॥ आयो ॥ ४ ॥

[१४४]

राग—कलडा

चलि देखें प्यारी नेम नवल व्रत धारी ॥
राग दोष बिन सोभित मूरति ।
मुकति नाथ अधिकारी ॥ चलि० ॥ १ ॥
क्रोध बिना किम करम बिनासे ।
इह अचिरज मन भारी ॥ चलि ॥ २ ॥
वचन अनक्षर सब जीव सुमझें ।
भाषा न्यारी न्यारी ॥ चलि ॥ ३ ॥

चतुरानन सब खलक विलोकै।
पूरब मुख प्रभुकारी ॥ चलि० ॥ ४ ॥

केवल ज्ञान आदि गुन प्रगटे।
नेकु न मान कीयारी ॥ चलि० ॥ ५ ॥

प्रभु की महिमा प्रभु न कहि सकै।
हम तुम कौन विचारी ॥ चलि० ॥ ६ ॥

द्यानत नेम नाथ विन आली।
कहि मोकों को प्यारी ॥ चलि० ॥ ७ ॥

[१४६]

राग—आसावरी

चेतन खेलै होरी ॥

सत्ता भूमि छिमा वसन्त में, समता प्रान प्रिया सग गोरी
चेतन० ॥१॥

मन को माट प्रेम को पानी, तामे करुना केसर घोरी,
ज्ञान ध्यान पिचकारी भरि भरि, आप मे छारै होरा होरी
चेतन० ॥२॥

गुरु के वचन मृदङ्ग बजत हैं, नय दोनों डफ ताल टकोरी,
सजम अतर विमल व्रत चोवा, भाव गुलाल भरैभर भोरी
चेतन० ॥३॥

धरम मिठाई तप बहुमेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी,

द्यानत सुमति कहै सखियन सौं चिरजीवो यह जुग
जुग जोरी ॥ चेतन ॥ ४ ॥

[१४७]

राग—सोरठ

ग्यान बिना सुख पाया रे, भाई ॥
भौ दस आठ उस्वास सास मैं
साधारन लपटाया रे ॥ भाई ॥ १ ॥
काल अनन्त यहाँ तोहि बीते
जब भई मंद कषाया रे ॥
तब तू निकसि निगोद सिंधु तैं
थावर होय न सारा रे ॥ भाई ॥ २ ॥
क्रम क्रम निकसि भयौ विकलत्रै
सो दुख जात न गाया रे ॥
भूख प्यास परवस सही पशुगति
वार अनेक बिकाया रे ॥ भाई ॥ ३ ॥
नरक माँहि छेदन भेदन बहु
पुतरी अगनि जलाया रे ॥
सीत तपत दुरगंध रोग दुख
जानै श्री जिनराया रे ॥ भाई ॥ ४ ॥
भ्रमत भ्रमत संसार महावन
कबहूँ देव कहाया रे ॥

लखि पर विभव, सह्यौ दुख भारी,

मरन समै बिललाया रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

पाप नरक पशु पुन्य सुरन बसि,

काल अनन्त गमाया रे ॥

पाप पुन्य जब भए बराबर,

तब कहुँ नर भौ जाया रे ॥ भाई० ॥ ६ ॥

नीच भयौ फिरि गरभ पड्यौ,

फिरि जनमत काल सताया रे ॥

तरुन पनौ तू धरम न चेतौ,

तन धन सुत लौ लाया रे ॥ भाई० ॥ ७ ॥

दरव लिंग धरि धरि मरि मरि तू,

फिरि फिर जग भज आया रे ॥

द्यानत सरधा जु गहि मुनिव्रत,

अमर होय तजि काया रे ॥ भाई० ॥ ८ ॥

[१४८]

राग—रामकली

जिय को लोभ महादुखदाई ॥

जाकी सोभा बरनी न जाई ॥

लोभ करै मूरख संसारी ।

छाँडै पंडित सिव अधिकारी ॥ जिय० ॥१॥

तजि घर वास फिरै बन माहीं ।

कनक कामिनी छाँडै नाहीं ॥

कोई रिभ्नरन कौं व्रत कीना ।
व्रत न होय ठगि ऐसा कीना० ॥जिय० ॥२॥
केई कसाय जीव हति डारें ।
झूठ बोलि चोरी चित धारें ॥
नारि गहैं परिग्रह बिसतारें ।
पांच पाप करि नरक सिधारें ॥ जिय ॥३॥
जोगी जती गृही बन वासी ।
बैरागी दरवेस सन्यासी ॥
अजस आनि जस की नाहीं रेखा ।
द्यानत जिनके लोभ विसेखा ॥ जिय ॥४॥

[१७६]

राग–सोरठ

प्रभु तेरी महिमा किहि मुख गावें ॥
गरभ छमास अगाऊ कनक नग
सुरपति नगर बनावें ॥ प्रभु ॥१॥
क्षीर उदधि जल मेरु सिंहासन
मल मल इन्द्र न्हुलावें ॥
दीक्षा समय पालकी बैठे
इन्द्र कहार कहावें ॥ प्रभु ॥२॥
समोसरन रिधि ग्यान महातम
किहि विधि सर्व बतावें ॥

आपन जात की बात कहा शिव,
बात सुनें भवि जावे ॥ प्रभु० ॥३॥
पचकल्याणक थानक स्वामी,
जो तुम मन वच ध्यावे ॥
द्यानत तिनकी कौन कथा है,
हम देखें सुख पावें ॥ प्रभु० ॥४॥
[१

राग—रामकली

रे मन भज भज दीन दयाल ॥
जाके नाम लेत इक खिन में,
कटै कोटि अघ जाल ॥ रे मन० ॥ १ ॥
पार ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखत होत निहाल ।
सुमरण करत परम सुख पावत,
सेवत भाजै काल ॥ रे मन० ॥ २ ॥
इन्द्र फणिंद्र चक्रधर गावैं,
जाको नाम रसाल ॥
जाके नाम ज्ञान प्रकासै,
नासै मि[illegible] ॥ रे मन० ॥ ३ ॥
जाके नाम सम[illegible]
उरध[illegible]

सोई नाम जपो निज पावन
छांडि विषै विषराज ॥ रे मन० ॥ ४ ॥

[१११]

राग–सोरठ

मानो छांडो विषै विकारी ।
जातैं होहि महादुख भारी ॥
जो जैन धरम कौं ध्यावै ।
सो आतमीक सुख पावै ॥ ॥ १ ॥
गज फरस विषै दुख पाया ।
रस मीन गंध अलि पाया ॥
लखि दीप सलभ हित कीना ।
मृग नाद सुनत जिय दीना ॥ २ ॥
ये एक एक दुखदाई ।
तू पंच रमत है भाई ॥
यह कौंन सीख बताई ।
तुम्हरे मन कैसैं आई ॥ ३ ॥
इन माँहि लोभ अधिकाई ।
यह लोभ कुगति को भाई ॥
सो कुगति माँहि दुख भारी ॥
तू त्यागि विषै मतिधारी ॥ ४ ॥

ए सेवत सुख से लागैं ।
फिर अन्त प्राण कौ त्यागैं ॥
तातैं ए विषफल कहिये ।
तिन कौं कैसें करि गहिये ॥ ५ ॥
तब लौ विषया रस भावै ।
जब लौं अनुभौ नहि आवै ॥
जिन अमृत पान नहि कीना ।
तिन और रस भवि चित दीना ॥ ६ ॥
अब चहुत कहा लौ कहिये ।
कारज कहि चुप ह्वै रहिये ॥
यह लाख बात की एकै ।
मति गहो विषै का टेकै ॥ ७ ॥
जो तजै विषै की आसा ।
द्यानत पावै सिववासा ॥
यह सतगुरु सीख बताई ।
काहू विरलै के जिय आई ॥ ८ ॥

[१५२]

राग–गौरी

हमारो कारज कैसे होय ॥
कारण पंच मुकति के तिन मैं के है दोय ॥
॥ हमारो॰ ॥ १ ॥

हीन संहनन लघु आऊखा अलप मनीषा जोइ।
कच्चे भाव न सधे साथी सब जग देख्यो होइ॥
॥ हमारो० ॥ २ ॥

इन्द्री पंचसु विषयनि दौरैं माने कह्या न कोइ।
साधारन चिरकाल वस्यो मैं, धरम बिना फिर सोइ॥
॥ हमारो० ॥ ३ ॥

चिंता धरी न कछु मन आवै अब सब चिंता खोई।
द्यानति एक शुद्ध निज पद लखि आप मैं आप समोई॥
॥ हमारो ॥ ४ ॥

[१११]

राग–गौरी

हमारो कारज ऐसे होइ।
आतम आतम पर पर जानै तीनों सबै खोइ॥
हमारो ॥ १ ॥

अंत समाधि मरन करि तन तजि होहि सक्र सुर लोइ।
विविध भोग उपभोग भोगवै धरम तना फल सोइ॥
हमारो० ॥ २ ॥

पूरी आऊ विदेह भूप ह्वै राज संपदा भोइ।
कारज पंच सहै गहै दुद्धर पंच महाव्रत जोइ॥
हमारो ॥ ३ ॥

तीन जोग थिर सहै परीसह, आठ करम मल घोइ।
द्यानत सुख अनन्त सिव विलसै, जनमै मरै न कोइ॥
हमारो० ॥ ४॥

[१५४]

राग-सोहनी

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जग का व्योहारा॥
तन सबधी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा॥ १॥
पुन्य उदय सुख का बढवारा, पाप उदय दुख होत अपारा।
पाप पुन्य दोऊ ससारा, मैं सब देखन जानन हारा॥ २॥
मैं तिहुँजग तिहुँकाल अकेला, पर सबध हुआ बहु मैला॥
थिति पूरी कर खिर खिर जाई, मेरे हरप शोक कछु नाहीं॥ ३॥
राग-भाव ते सज्जन मानै, द्वेप-भाव ते दुर्जन मानै।
राग दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतन पद माहीं॥ ४॥

[१५५]

राग-आसावरी

वे कोई निपट अनारी देख्या आतम राम॥
जिन सौं मिलना फेर बिछुरना तिनसौं कैसी यारी।
जिन कामौं मैं दुख पावै है तिनसौं प्रीत करारी॥
वे कोई० ॥ १॥

बाहिर चतुर मूढ़ता घर में लाज सबै परिहारी ।
ठग सौं नेह बैर साधुनिसौं ए बातैं विसतारी ॥
ये कोई ॥ २ ॥

सिंहासन भीतर सुभ मानै अपयश सबै विसारी ।
या तरु आग लगी चारो दिस बैठ रह्यो विहगारी ॥
ये कोई ॥ ३ ॥

हाड़ मांस लोहू की थैली तामें चेतन धारी ।
धानत तीन लोक को ठाकुर क्यों हो रहा भिखारी ॥
ये कोई ॥ ४ ॥

[१५६]

राग–आसावरी

मिथ्या यह संसार है रे झूठा यह संसार है रे ॥
जो देही षट रस सौं पोषे सो नहिं संग चले रे,
औरन कौं तोहि कौन भरोसो नाहक मोह करे रे ॥
मिथ्या ॥ १ ॥

सुख की बातैं बूझै नाहीं दुख कौं सुख लेखे रे ।
मूढ़ौ मांहीं माता डोलै साधौ पास डरे रे ॥
मिथ्या ॥ २ ॥

झूठ कमाता झूठी खाता, झूठी जाप जपे रे ।
सच्चा साईं सूझै नाहीं क्यों कर पार लगे रे ॥
मिथ्या ॥ ३ ॥

जम सौं डरता फूला फिरता, करता मैं मैं मेरे।
द्यानत स्याना सोइ जाना, जो जप ध्यान धरे रे॥

मिथ्या॥ ४॥

[१५७]

राग-आसावरी

भाई ज्ञानी सोई कहिये।
करम उदै सुख दुख भोगतै, राग विरोध न लहिये॥
भाई०॥ १॥

कोऊ ज्ञान क्रिया तै कोउ, सिव मारग बतलावै।
नय निहचै विवहार साधिकै, दोनु चित्त रिझावै॥
भाई०॥ २॥

कोऊ कहै जीव छिन भगुर, कोई नित्य बखानै।
परजय दरवित नय परमानै दोऊ समता आनै॥
भाई०॥ ३॥

कोई कहै उदै है सोई, कोई उद्यिम बोलै।
द्यानति स्याद्वाद सुतुला मै, दोनौं वस्तै तोलै॥
भाई०॥ ४॥

[१५८]

राग—आसावरी

भाई कौन धरम हम पालै॥
एक कहैं जिह कुल में आए, ठाकुर को कुल गालै॥
भाई० ॥१॥
शिवमत बौद्ध सुवद नैयायक मीमांसक अर जैना।
आप सराहैं आगम गाहैं काकी सरधा ऐना॥
भाई ॥२॥
परमेसर पै ह्वै आया हो ताकी बात सुनीजै॥
पूछें बहुत न बोलें कोई बड़ी फिकर क्या कीजै॥
भाई ॥३॥
जिन सब मत के न्याय सावधारि धरम एक बताया।
द्यानति सो गुरु पूरा पाया भाग हमारा आया॥
भाई ॥४॥
[१४६]

राग—उमराज जोगीरासा

दुनिया मतलब की गरजी अब मोहे जान पड़ी।
हरे वृक्ष पे पक्षी बैठा रटता नाम हरी।
मात भये पक्षी सब जावे जग की रीति खरी॥१॥
जब लग बैल बहे बनिया को तब लग चाह घनी।
थके बैल को कोई न पूछे फिरता गली गली॥२॥

स्त्री विषै विषै फल धार ।
मीठे लगैं अन्त खयकार ॥ झूठा ॥ ३ ॥
मेरी देह करम उनहार ।
सो तन भयौ छिनक में छार ॥ झूठा ॥ ४ ॥
जननी तात भ्रात सुत नारि ।
स्वारथ बिना करत हैं ख्वार ॥ झूठा ॥ ५ ॥
भाई सत्रु होंहि अनिवार ।
सत्रु भई भाई बहु प्यार ॥ झूठा ॥ ६ ॥
द्यानत सुमरन भजन अधार ।
आगि लगे कछु लेहु निकार ॥ झूठा ॥ ७ ॥

[१६२]

राग-माढ

जो तैं आतम हित नहीं कीना ॥
रामा रामा धन धन कारे नर भव फल नहीं लीना ॥
॥ जो० ॥ १ ॥
जप तप करि के लोक रिझाये प्रभुता के रस भीना ।
अन्तरगति परनमन (न) सोधे ज्यौं गरज सरीना ॥
॥ जो ॥ २ ॥
बैठि सभा में बहु उपदेशा आप भए परवीना ।
ममता डोरी तोरी नाहीं उत्तम तैं भए हीना ॥
॥ जो ॥ ३ ॥

अनमत नारी योग्त आपन
समरथ वरष मसाना रे ॥
सो सुख तू अपनो करि जानैं
अन्त अघावैं भरणा रे ॥ भाई ॥ ५ ॥
ऐसत पित्त गिलाय हरैं धन
मैथुन मास पकाना रे ॥
सो नारी तरी हूँ कैसैं
मूये प्रेत अघाना रे ॥ भाई ॥ ६ ॥
पांच चार तेरे अन्दर बैठैं
तैं चाना मिमाना रे ॥
साइ पीब धन ग्यान बटकैं,
घोप तेर सिर ठाना रे ॥ भाई ॥ ७ ॥
रेप धरम गुरु रतन अमोलक,
कर अन्तर सरधाना रे ॥
पोनत भव दान अनुभौ करि
जो चाहै कल्याना रे ॥ भाई ॥ ८ ॥

[१६८]

राग–आसावरी

कर कर सपत संगत रे भाइ ॥
पान परत नर नरपत कर सो ती पोनमि मीं कर अमनाई ॥
पन्नन पास नीच अन्नम है अत पाणो सोह तरजाइ ।

राग-रामकली

देख्या मैंने नेमि जी प्यारा ॥

मूरति ऊपर करौं निछावर तन धन जोवन जीवन सारा
॥ देख्या० ॥१॥

जाके नख की शोभा आगैं कोटि काम छवि डारौं वारा ।
कोटि संख्य रविचन्द्र छिपत हैं, वपु की द्युति है अपरम्पार
॥ देख्या ॥२॥

जिनके वचन सुने जिन भविजन तजि गृह मुनिवर को
व्रत धारा ।
जाको जस इन्द्रादिक गावैं पावैं सुख नासैं दुख भारा ॥
॥ देख्या ॥३॥

जाकैं केवल ज्ञान विराजत लोकालोक प्रकाशन हारा ।
चरण गहे की लाज निबाहो प्रभु जी द्यानत भगत तुम्हारा
॥ देख्या ॥४॥

[१६७]

राग-सोरठ

बिन नाम सुमरि मन बावरे क्या इत उत भटके ।
विषय प्रगट विष बेल है इनमें मत अटके ॥

राग-रामकली

देख्या मैंने नेमि जी प्यारा ॥
मूरति ऊपर करौं निछावर, तन धन जोबन जीवन सारा
॥ देख्या ॥१॥

जाके नख की शोभा आगैं कोटि काम छवि डारौं वारा ।
कोटि संख्य रविचन्द्र छिपत हैं, वपु की द्युति है अपरम्पार
॥ देख्या० ॥२॥

जिनके वचन सुने जिन भविजन तजि गृह मुनिवर को
व्रतधारा ।
जाको जस इन्द्रादिक गावैं पावैं सुख नासैं दुख भारा ॥
॥ देख्या० ॥३॥

जाकै केवल ज्ञान विराजत लोकालोक प्रकाशन हारा ।
चरन गहे की लाज निबाहो प्रभु जी द्यानत भगत तुम्हारा
॥ देख्या ॥४॥

[१६७]

राग-सोरठ

जिन नाम सुमरि मन बावरे कहा इत उत भटके ।
विषय प्रगट विष बेल है इनमें मत अटके ॥

राग-कान्हरौ

अब मोहे तार लेहु महावीर ॥
सिद्धारथ नंदन जगवन्दन, पाप निकन्दन धीर ॥ १ ॥

ज्ञानी ध्यानी दानी जानी, बानी गहन गम्भीर ।
मोक्ष के कारण दोष निवारण, रोष विदारण वीर ॥२॥

समता सूरत आनन्द पूरत, चूरत आपद पीर ।
बालयती दृढव्रती समकिती दुख दावानल नीर ॥३॥

गुण अनन्त भगवन्त अन्त नहीं, शशि कपूर हिम हीर ।
'द्यानत' एकहू गुण हम पावे, दूर करे भव भीर ॥४॥

[१७१]

राग-सारंग

मेरी बेर कहा ढील करीजे ।
सूली सो सिंहासन कीना, सेठ सुदर्शन विपत हरीजे ।
॥ मेरी बेर० ॥
सीता सती अगनि मे बैठी, पावक नीर करी सगरी जी ।
वारिषेण पै खडग चलायो, फूलमाल कीनी सुथरीजी ।
॥ मेरी बेर० ॥
धन्या वापी पस्यो निकालों, ता घर रिद्ध अनेक भरीजी ।
सिरीपाल सागर तैं तारयो राजभोग कै मुकती वरी जी ॥
॥ मेरी बेर० ॥

द्यानत बहुत कहा लौं कहिये
फेर न कछू उपाय रे ॥ अरहंत ॥ ४ ।

[१९६]

राग–विहागड़ी

अब हम नेमि जी की शरन ।
और ठौर न मन लगत है,
छांडि प्रभु के शरन ॥ अब० ॥ १ ॥
सकल भवि-अघ-दहन बारिद
विरद तारन तरन ॥
इन्द्र चन्द फनिन्द ध्यावैं
पाय सुख दुख हरन ॥ अब० ॥ २ ॥
भरम-तम-हर-तरनि दीपति
करम गन खय करन ॥
गनधरादि सुरादि जाके
गुन सकत नहिं बरन ॥ अब ॥ ३ ॥
जा समान त्रिलोक में हम
सुन्यौं और न करन ॥
दास द्यानत दयानिधि प्रभु
क्यों तजैंगे परन ॥ अब० ॥ ४ ॥

भूधरदास

(संवत् १७५०–१८०६)

आगरे को जिन जैन कवियों की जन्म भूमि होने का सौभाग्य मिला था उन कवियों में कविवर भूधरदास जी का उल्लेखनीय स्थान है। ये भी आगरे के ही रहने वाले थे। इनका जन्म खण्डेलवाल जैन जाति में हुआ था। ये हिंदी एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी तीन रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम जैन शतक, पार्श्वपुराण एवं पद संग्रह है। पार्श्वपुराण को हिन्दी के महाकाव्यों की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। पुराण सुन्दर काव्य है तथा प्रसाद गुण से युक्त है। कवि ने इसे सम्वत् १७८९ में आगरे में समाप्त किया था।

सांप किये फूलन की माला सोमा पर तुम दया धरीजी।
पामर मैं कछु सोचन नाहीं पर वैराग्य-दशा हमरी जी॥
॥ मेरी बेर ॥

[१७२]

राग–सोरठ

अंतर उज्जल करना रे भाई ॥
कपट कृपान तजे नहीं तब लौं,
करनी काज ना सरना रे ॥ अन्तर० ॥ १ ॥
जप तप तीरथ जाप ब्रतादिक,
आगम अर्थ उचरना रे ॥
विषै कषाय कीच नहीं धोयौ,
यौं ही पचि पचि मरना रे ॥ अन्तर० ॥ २ ॥
बाहरि भेष क्रिया सुचि उर सों,
कीये पार उतरना रे ॥
नाही है सब लोक रंजना,
ऐसे वेद उचरना रे ॥ अन्तर० ॥ ३ ॥
कामादिक मल सौं मन मैला,
भजन किये क्यों तिरना रे ॥
भूधर नील वस्त्र पर कैसे,
केसरि रंग उघरना रे ॥ अन्तर० ॥ ४ ॥

[१७३]

राग–ख्याल

गरब नहिं कीजे रे, ऐ नर निपट गंवार ॥
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे ॥
गरब० ॥ १ ॥

कवि के अब तक रचे ८८ पद प्राप्त हो चुके हैं। कवि ने अपने पदों में अध्यात्म की उठान भरी है। मनुष्य को अपने जीवन को व्यर्थ में ही नहीं गंवाने के लिए इन्होंने काफी समझाया है। कोई भी पाठक इनके पदों को पढ़कर पाप अन्याय एवं अधर्म की ओर जाने में थोड़ा अवश्य हिचकेगा। अच्छे कार्यों को करने के लिए वृद्धावस्था का कभी इन्तजार नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें तो सभी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं और वह स्वयं ही दूसरों के आश्रित हो जाता है। कवि की सभी रचनायें जैन समाज में अत्यधिक प्रिय रही हैं इस लिये आज भी इनकी हस्तलिखित प्रतियां प्राय सभी ग्रन्थ भण्डारों में मिलती हैं।

राग-सोरठ

अंतर उज्ज्वल करना रे भाई ॥
कपट कृपान तजै नहीं तब लौं,
करनी काज ना सरना रे ॥ अन्तर० ॥ १ ॥
जप तप तीरथ जाप व्रतादिक,
आगम अर्थ उचरना रे ॥
विषै कषाय कीच नही धोयो,
यौं ही पचि पचि मरना रे ॥ अन्तर० ॥ २ ॥
बाहरि भेष क्रिया सुचि उर सौं,
कीये पार उतरना रे ॥
नाही है सब लोक रंजना,
ऐसे वेद उचरना रे ॥ अन्तर० ॥ ३ ॥
कामादिक मल सौं मन मैला,
भजन किये क्यों तिरना रे ॥
भूधर नील वस्त्र पर कैसे,
केसरि रंग उघरना रै ॥ अन्तर० ॥ ४ ॥

[१७३]

राग-ख्याल

गरब नहि कीजे रे, ऐ नर निपट गंवार ॥
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे ॥
गरब० ॥ १ ॥

कै छिन सांझ सुहागरु जोबन
कै दिन जग में जीजे रे ॥ गरब० ॥ २ ॥

बेगा चेत विलम्ब तजो नर
बंध बढ़ै थिति कीजे रे ॥ गरब० ॥ ३ ॥

भूधर पल पल हो है भारी
ज्यों ज्यों कमरी भीजै रे ॥ गरब ॥ ४ ॥

[१७४]

राग—माढ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ।
फल चाखन की बार भरे दृग मर है मूरख रोय ॥१॥

किंचित विषयनिके सुख कारण दुर्लभ देह न खोय ।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा इस नींदड़ि न सोय ॥
॥ अज्ञानी ॥ २ ॥

इस विरियाँ मैं धरम कल्पतरु, सींचत स्याने लोय ।
तू विष बोवन लागत तो सम और अभागा कोय ॥
॥ अज्ञानी ॥ ३ ॥

जे जगमें दुख दायक बेरस इसही के फल सोय ।
यों मन 'भूधर' जानि कै भाई फिर क्यों भोंदू होय ॥
॥ अज्ञानी ॥ ४ ॥

[१७५]

राग–मल्हार

अब मेरे समकित सावन आयो ॥
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ॥
॥ अब० ॥ १ ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो ।
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिन भायो ॥
॥ अब० ॥ २ ॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो ।
साधक भाव अँकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥
॥ अब० ॥ ३ ॥

भूल धूल कहिं मूल न सूझत, समरस जल झर लायो ।
भूधर को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ॥
॥ अब० ॥ ४ ॥

[१७६]

राग–विहाग

जगत जन जूवा हारि चले ॥
काम कुटिल सग बाजी माडी,
उन करि कपट छले ॥ जगत० ॥ १ ॥
चार कषाय मयी जहँ चौपरि,
पासे जोग रले ।

सुत सरवस सब कामिनी कौड़ी,
यह विधि मरकट चाल ॥ जगत० ॥ २ ॥

कूर सियार विचार न कीन्हों
ह्वै है ख्वार मसल ।
बिना विवेक मनोरथ करके,
भूधर सफल फले ॥ जगत ॥ ३ ॥
[१७७]

राग-बिलावल

नैननि को बान परी दरसन की ॥

जिन मुखचन्द चकोर चित मुझ,
ऐसी प्रीति करी ॥ नैननि ॥ १ ॥

और अदेवन के चितवन को
अब चित चाह टरी ।
ज्यों सब धूलि दबै दिशि दिशि की
लागत मेघ झरी ॥ नैननि ॥ २ ॥

छबी समाय रही लोचन में
बिसरत नाहिं घरी ।
भूधर यह यह टेव रहो थिर,
जनम जनम हमरी ॥ नैननि ॥ ३ ॥
[१७८]

राग–सोरठ

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी ॥
अलख अमूरति की जोरी ॥ अहो० ॥ १ ॥

इतमें आतम राम रंगीले,
उतमें सुबुद्धि किसोरी ।
या के ज्ञान सखा सग सुन्दर,
वाके सग समता गोरी ॥ अहो० ॥ २ ॥

सुचि मन सलिल दया रस केसरि,
उदै कलस में घोरी ।
सुधी समझि सरल पिचकारी,
सखिय प्यारी भरि भरि छोरी ॥ अहो० ॥ ३ ॥

सत गुरु सीख तान धर पद की,
गावत होरा होरी ।
पूरब बंध अबीर उडावत,
दान गुलाल भर झोरी ॥ अहो० ॥ ४ ॥

भूधर आजि बडे भागिन,
सुमति सुहागिन मोरी ।
सो ही नारि सुलछिनी जगमें,
जासौं पतिनै रति जोरी ॥ अहो० ॥ ५ ॥

राग—ख्याल तमाशा

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय वृथा क्यों खोवत हो ॥

कठिन कठिन कर नर भव पाया तुम समझि आसान ।
धर्म बिसारि विषय में राचो मानी न गुरु की आन ॥
वृथा० ॥ १ ॥

चक्री एक मतगज पायो ता पर ईंधन ढोयो ।
बिना विवेक बिना मति ही को पाय सुधा पग धोयो ॥
वृथा० ॥ २ ॥

काहू सठ चिन्तामणि पायो मरम न जानो ताय ।
वायस देखि उदधि में फैंक्यो फिर पीछे पछताय ॥
वृथा० ॥ ३ ॥

सात विसन आठों मद त्यागो करुना चित्त विचारो ।
तीन रतन हिरदै में धारो आवागमन निवारो ॥
वृथा ॥ ४ ॥

भूधरदास कहत भवि जन सों चेतन अब तो सम्हारो ।
प्रभु को नाम तरन तारन जपि कर्म फन्द निरवारो ॥
वृथा० ॥ ५ ॥

राग-ख्याल

और सब थोथी बातें, भज ले श्री भगवान ॥
प्रभु बिन पालक कोई न तेरा,
स्वारथ मति जहान ॥ और० ॥ १ ॥
परवनिता जननी सम गिननी,
परधन जान पखान ।
इन अमलों परमेसुर राजी,
भाषै वेद पुरान ॥ और० ॥ २ ॥
जिस उर अन्तर बसत निरंतर,
नारी औगुन खान ।
तहा कहा साहिब का वासा,
दो खाडे इक म्यान ॥ और० ॥ ३ ॥
यह मत सतगुरु का उर धरना,
करना कहि न गुमान ।
भूधर भजन न पलक बिसरना,
मरना मित्र निदान ॥ और० ॥ ४ ॥

[१८१]

राग-भैरवी

गाफिल हुवा कहाँ तू डोले दिन जाते तेरे भरती मे ॥
चोकस करत रहत है नाहीं, ज्यो अ जुलि जल झरती में ।
तैसे तेरी आयु घटत है बचै न बिरिया मरती मे ॥१॥

कंठ दबै तब नाहिं बनैगो काज बनाले सरली में।
फिर पछताये कुछ नहिं होवे कूप खुदै नहीं जरती में ॥२॥
मानुष भव तेरा श्रावक कुल यह कठिन मिला इस धरती में।
'भूधर' भव दधि चढ़कर उतरो समकित नवका तरती में ॥३॥
[१८२]

राग–आसावरी

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (वे) ॥
पग खूंटे द्वय हालन लागे उर मदरा खखराना।
छीदी हुई पांखड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना ॥ १ ॥
रसना तकलीने बल खोया सो अब कैसे खूटे।
शबद सूत सूधा नहिं निकसे घड़ी घड़ी पल टूटे ॥ २ ॥
आयु मालका नहीं भरोसा अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहे, वैद बाढ़ई हारे ॥ ३ ॥
नया चरखला रंगा चंगा सबका चित्त चुरावे।
पलटा वरन गये गुन अगले अब देखें नहिं भावे ॥ ४ ॥
मौटा महीं कातकर भाई ! कर अपना सुरझेरा।
अंत आग में ईंधन होगा 'भूधर' समझ सबेरा ॥ ५ ॥
[१८३]

राग–पीलू

पानी में मीन पियासी, मोहे रह रह आवे हाँसी रे ॥
ज्ञान बिना भव वन में भटक्यो
कित जमुना कित काशी रे ॥ पानी ॥१॥

जैसे हिरण नाभि किस्तूरि,
बन बन फिरत उदासी रे ॥ पानी० ॥२॥
'भूधर' भरम जाल को त्यागो,
मिट जाय जम की फासी रे ॥ पानी० ॥३॥

[१८४]

राग—मल्हार

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपगारी ॥
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर,
संवर भूषणधारी ॥ वे मुनि० ॥ १ ॥
कंचन काच बराबर जिनकैं,
ज्यों रिपु त्यों हितकारी ॥
महल मसान मरन अरु जीवन,
सम गरिमा अरु गारी ॥ वे मुनि० ॥ २ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल,
तप पावक परजारी ॥
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे,
काय-कारिमा टारी ॥ वे मुनि० ॥ ३ ॥
जोरि जुगल कर भूधर विनवै,
तिन पद ढोक हमारी ॥
भाग उदय दरसन जब पाऊं,
ता दिन की बलिहारी ॥ वे मुनि० ॥ ४ ॥

[१८५]

राग–माढ

सुनि ठगनी माया तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा सो मूरख पछताया॥
सुनि० ॥१॥

आभा तनक दिखाय बिज्जु ज्यों मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनो अन्त नरक पहुँचाया॥
सुनि० ॥२॥

केते कंथ किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया।
किसहीसौं नहिं प्रीति निभाई वह तजि और लुभाया॥
सुनि ॥३॥

'भूधर' छलत फिरत यह सबकौं भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे मैं तिसको सिर नाया॥४॥
[१८६]

राग–ख्याल तमाशा

देख्या बीच जहान के सपने का अजब तमाशा वे॥
एकौंके घर मंगल गावैं पूगी मन की आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं भरि भरि नैन निरासा॥१॥
तेज तुरंगनिपै चढ़ि चलते पहरैं मलमल खासा।
रंक भये नागे अति डोलैं ना कोइ देय दिलासा॥२॥
तरकैं राज-तखतपर बैठा था खुशवक्त खुलासा।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई जंगल कीना वासा॥३॥

तन धन अथिर निहायत जगमें, पानी माहिं पतासा।
'भूधर' इनका गरव करैं जे फिट तिनका जनमासा ॥४॥

[१८७]

राग--ख्याल तमाशा

प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे ॥
मानुष भव जोग दुहेला, दुर्लभ सतसंगति मेला।
सब बात भली बन आई, अरहन्त भजौ रे भाई ॥१॥
पहलैं चित-चीर सभारो कामादिक मैल उतारो।
फिर प्रीति फिटकरी दीजे, तब सुमरन रंग रंगीजे ॥२॥
धन जोर भरा जो कूवा, परवार बढ़ैं क्या हूवा।
हाथी चढि क्या कर लीया प्रभु नाम बिना धिक जीया ॥३॥
यह शिक्षा है व्यवहारी निहचै की साधनहारी।
'भूधर' पैडी पग धरिये, तब चढ़नेको चित करिये ॥४॥

[१८८]

राग—काफी होरी

अहो वनवासी पीया तुम क्यों छारी अरज करै राजल नारी
॥ अरज० ॥
तुम तो परम दयाल सबन पे, सबहिन के हितकारी।
मो कठिन क्यों भये सजना, कहीये चूक हमारी ॥
॥ अरज० ॥ १ ॥

तुम बिन ऐक पलक पीवा मरे जाय पहर सम भारी।
क्यों करि निस दिन भर नेमजी तुम तो ममता डारी॥
॥ अरज० ॥ २ ॥

जैसे रैनि वियोगज चकई तो बिलपे निस सारी।
आसि बांधि अपनी जिय राखे प्रात मिलयाँ या प्यारा॥
मैं निरास निरधार निरमोही जिउ किम दुखयारी।
॥ अरज ॥ ३ ॥

अब ही भोग जोग हो बालम देखी चित्त विचारी।
आगैं रिषभ देव भी व्याही कच्छ सुकच्छ कुमारी॥
सोही पंथ गहो पीवा पाछै हो ज्यो संजम भारी॥
॥ अरज ॥ ४ ॥

जैसे विरहे नदी मैं व्याकुल उग्रसैन की बारी।
धनि धनि समद विजै के नंदन बुधजन पार उतारी॥
सो ही किरपा करी हम ऊपरि भूधर सरण विहारी॥
॥ अरज ॥ ५ ॥

[१८६]

राग—विहागरो

नेमि बिना न रहै मेरो जियरा॥
हेर री हेली तपत उर कैसो
लावत क्यों निज हाथ न नियरा॥
नेमि बिना ॥ १ ॥

करि करि दूर कपूर कमल दल,
लगत करूर कलाधर सियरा ॥
नेमि विना० ॥ २ ॥

भूधर के प्रभु नेमि पिया विन,
शीतल होय न राजुल हियरा ॥
नेमि विना० ॥ ३ ॥

[१६०]

राग—सोरठ

भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥
यह ससार रैन का सुपना, तन धन वारि-बबूला रे ॥
भगवन्त० ॥ १ ॥
इस जीवन का कौन भरोसा, पावक मे तृणपूला रे।
काल कुदार लिये सिर ठाडा, क्या समझै मन फूला रे ॥
भगवन्त० ॥ २ ॥
स्वारथ साधे पाच पाँव तू, परमारथ को लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहै प्राणी काम करै दुखमूला रे ॥
भगवन्त० ॥ ३ ॥
मोह पिशाच छल्यो मति मारै निजकर कंध वसूला रे।
भज श्रीराजमतीवर 'भूधर' दो दुरमति सिर धूला रे ॥
भगवन्त० ॥ ४ ॥

[१६१]

राग–मांद

आयारे बुढ़ापा मानी सुधि बुधि बिसरानी॥
श्रवण की शक्ति घटी चाल चले अटपटी।
देह लटी भूख घटी लोचन झरत पानी॥
आयारे०॥१॥

दाँतन की पंक्ति टूटी हाड़न की संधि छूटी।
काया की नगरि लूटी जात नहीं पहिचानी॥
आयारे ॥२॥

बालों ने बरण फेरा रोग ने शरीर घेरा।
पुत्रहू न आवै नेरा औरों की कहा कहानी॥
आयारे ॥३॥

'भूधर' समुझि अब स्वहित करोग कब।
यह गति ह्वै है जब तब पिछतैहैं प्रानी॥
आयारे ॥४॥

[१६२]

राग–सोरठ

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद॥
शिशर मिथ्यात गई अब
आई काल की लब्धि बसंत। होरी ॥१॥

पीय संग खेलनि यौं,

इन मद्ध्ये वरमी काल अनन्त ॥

भाग जग्यो अब फाग रचानी,

आयौ विरह को अन्त ॥ होरी० ॥२॥

सरधा गागरि मे रुचि रूपी,

केसर घोरि तुरन्त ॥

आनन्द नीर उमग पिचकारी,

छोड़ूगी नीकी भंत ॥ होरी० ॥३॥

आज वियोग कुमति सौतनिकौं,

मेरे हरख अनंत ॥

भूधर धनि एही दिन दुर्लभ,

सुमति सखी विहसंत ॥ होरी० ॥४॥

[१६३]

बख्तराम साह

(सवत् १७८०—१८४०)

साह बख्तराम मूलत चाटसू (राजस्थान) के निवासी थे लेकिन बाद में ये जयपुर आकर रहने लगे थे। जयपुर नगर का लश्कर का दि॰ जैन मन्दिर इनकी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र था। इनके पिता का नाम पेमराम था। इनकी जाति खण्डेलवाल एव गोत्र साह था। इनके समय में जयपुर धार्मिक सुधार आदोलनों का केन्द्र था और महापडित टोडरमल जी उसके नेता थे। बख्तराम प्राचीन परम्पराओं में सुधार के सम्भवत पक्षपाती नहीं थे और इसी उद्देश्य से इन्होंने पहिले 'मिथ्यात्व खण्डन' और बाद में 'बुद्धि विलास' की रचना की थी। मिथ्यात्व खण्डन में १४२३ दोहा चौपाई छन्द हैं तथा वह सम्वत १८२१ की

रचना है। इसी प्रकार बुद्धिविलास में १५११ दोहा चौपाई एवं १८२७ उसका रचना काल है। बुद्धिविलास के प्रारम्भ में आमेर एवं जयपुर राज्य का विस्तृत वर्णन मिलता है जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिये भी अच्छी रचना है।

बखतराम की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पद भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। जो भक्ति एवं आध्यात्मिक विषयों के अतिरिक्त नेमि-राजल के जीवन से सम्बन्धित हैं। पदों एवं रचनाओं की भाषा राजस्थानी है।

राग–पूरवी

तुम दरसन तैं देव सकल अघ मिटि हैं मेरे ॥
कृपा तिहारी तैं करुणा निधि,
उपज्यौ सुख अद्रव ॥ सकल० ॥ १ ॥
जब लौं निहारे चरन कमल की,
कीनी न कबहूँ सेव ॥
अबहूँ सरनै आयौ तब मैं,
छूटि गयौ अहमेव ॥ सकल० ॥ २ ॥
तुम से दाता और न जग मैं,
जाचक हौं गहि भेव ॥
चरनदास के हिये रहौ तुम,
भक्ति करन की टेव ॥ सकल० ॥ ३ ॥

[१६४]

राग–ललित

दीनानाथ दया मो पै कीजिये ।
मोसो अधम उधारि प्रभु जग माहिं यह जस लीजिये ।
दीनानाथ० ॥१॥
बिन जाने कीने अति पातिक मैं तिन उर दृष्टि न दीजिये ।
निज बिरद सम्हारि कृपाल अबै भव वारि तैं पार करीजिये ॥
दीनानाथ० ॥२॥

बिनती बरुआ की सुनो चित दै अब तो सिय पास लहीजिये ।
तब लौ तेरी भक्ति रहो उर मैं छोटि धाम की आस कहीजिये ॥
दीनानाथ० ॥३॥

[१६५]

राग–धनासिरी

तुम बिन नहिं तारै कोइ ।
ऐसे ही विरद जगत में तिन परि
कृपा तिहारी होइ ॥ तुम ॥ १ ॥
इन विषियन के रंग राचि कै,
विषबेली मैं आइ ॥ तुम ॥ २ ॥
आय परयो हूँ सरनि तिहारे
विकलपता सब जाइ ॥ तुम० ॥ ३ ॥
दीन जानि बाला बलवा कै,
करौ उचित है सोइ ॥ तुम ॥ ४ ॥

[१६६]

राग–नट

सुमरन प्रभुजी को करि रे प्रानी ॥
कौन भरोसे तू सोवै निसिदिन
अष्ट करम तेरे अरि रे ॥१॥

इनके मेरे रे गये हैं नरकिहि,
रावन आदि भये महिमानी।
गये अनेक जीव अनगिनती,
तिनकी अब कहा कहिये कहानी ॥२॥
इनके वसि नाना विधि नाच्यो,
तामे कहो कौन सिधि जानी ॥
लख चौरासी में फिर आयो,
अजहूँ समझि समझि अग्यानी ॥३॥
यह जानि भजि वीतराग को,
और कछु मन मे मति आनी।
बखतराम भवदधि तिर है,
मुक्ति वधू सुख पै है सग्यानी ॥४॥

[१६७]

राग—झंझोटी

इन करमों तें मेरा जीव डरदा हो ॥ इन० ॥
इनही के परसग तें साई,
भव भव मैं दुख भरदा हो ॥ इन० ॥१॥
निमप न सग तजत ये मेरा,
मैं वहुतेरा ही तडफदा हो ॥ इन० ॥२॥
ये मिलि बहोत दीन लखि मो कों,
आठों ही जाम रहै लरदा हो ॥ इन० ॥३॥

दुख और दरद की मैं सब ही कहदा
प्रभु तुम सौं नाही परदा हो ॥ इन० ॥४॥
बखतराम कहै अब तो इनकू
फेरि न कीजिये न्यारबूत हो ॥ इन ॥५॥
[१६८]

राग–गौडी

चेतन तैं सब सुधि बिसरानी भइया ॥
झूठो जग सांचो करि मान्यौ
सुनी नहीं सतगुरु की बानी भइया ॥ चे ॥१॥
भ्रमत फिरयो चहुँगति मैं अब ही
मूल क्रिया सही नींद मिसानी मन्या ॥ च ॥२॥
ये पुदगल जड जानि सदा ही
तेरी तौं निज रूप सग्यानी भइया ॥ चे ॥३॥
बखतराम सिव सुख तब पै है,
है है जब जिनमत सरधानी भइया ॥ च ॥४॥
[१६६]

राग–स्वभावचि

चेतन नरभव पाय के हो वाणि वृथा क्यौं खोवे है।
पुदगल के के रंग राचि के हो,
मोह मगन होय सोवै है० ॥ १ ॥

ये जड़ रूप अनादि को,
तोहि भव भय माझि विगोवै छै ॥
भूलि रह्यो भ्रम जाल मैं,
तु आयो आय लकोवै छै ॥ क्यों ॥२॥
विषयान्कि सुख त्यागि कैं,
तू ग्यान रतन कि न जोवै छै ॥
बखतराम जाकै उदै हो,
मुक्तिवधू सुख होवै छै ॥ क्यों० ॥३॥

[२००]

राग-कानरो नायकी

चेतन वरज्यो न मानै, उरझ्यों कुमति पर नारी सौं ॥
सुमति सी सुखिया सो नेह न जोरत,
रूसि रह्यो घर नारि सों ॥ चेतन० ॥१॥
रावन आदि भये वसि जाकै,
नहि डर्यो कुलगारि सों ।
नरक तने नाना दुख पायो,
नेह न तज्यो है गॅवारि सों ॥ चेतन० ॥२॥
कहिये कहा कुटलताइ जाकी,
जीते न कोउ अकारि सों ।
बखत वंड जिन सुमति सो नेह कीन्हों,
ते तिरे भव हूँ वारि सौं ॥ चेतन० ॥३॥

[२०१]

राग रामकली

अब तो ज्ञानी हैं शुभ ज्ञानी।
प्रभु नेम अब हो ग्यानी ॥
तजि गृहवास चढ़े गिरनेरी।
जुगति जोग की ठानी ॥
तीन लोक में महिमा प्रगटी।
है बैठे निरवानी ॥ अब तो ॥१॥

लोग दिखावन को तुम पशु मैं।
छांडि रजमती रानी ॥
साम तज्यो हम कैसे समझै।
मुक्ति वधू मनमानी ॥ अब तो० ॥२॥

कीरति करुणां सिंधु विहारी।
जग पै आय बखानी ॥
परसराम के प्रभु जादोपति।
भविजन को सुखदानी ॥ अब तो० ॥३॥

[२०२]

राग–आसावरी

म्हारा नेम प्रभु सीं कहि ज्यो जी ॥
टेर मी तप करिवा संग चाल्यं
प्रभु परीक्षा उमा राखियो जी ॥ म्हारा० ॥१॥

लार राज्रमा मे काढ आते प्रभु,
बुरी भी कहे तो सहि ल्यो जी ॥ म्हारा० ॥२॥
भव ससार उदधि मे वूडत,
हाथ हमारो गहिज्यो जी ॥ म्हारा ॥३॥
बखतराम के प्रभु जादोंपति,
लाज विरद की निवहिज्यो जी ॥ म्हारा० ॥४॥

[२०३]

राग–गौडी

जब प्रभु दूरि गये तब चेती ॥ जब० ॥
अब तौ फिरे नही कबहूँ,
कोऊ कहो किन केती ॥ जब० ॥ १ ॥
वे तो जाय चढे गिरनेरी,
छाडे सकल जनेती ।
होय दिगम्बर लौंच लई कर,
तू रहि गई पछेती ॥ जब० ॥ २ ॥
ध्यान धरयौ जिन चिदानन्द को,
सहे परीसह जेती ॥
कर्म काटि वे जाय मिलेगे,
मुक्ति कामिनी सेती ॥ जब० ॥ ३ ॥
चलिये वेग सरन प्रभु ही के,
और विचार न हेती ॥

यह बसत मन कृपा सिंधु कीं
स प्यारे पै पतिबेदी ॥ अब० ॥ ४ ॥

[२०४]

राग–भूपाली

सखी री म्हां तो चाकिरी।
भरी जहां प्रेम परत है प्यान ॥
उन बिन मोहि सुहात न पलहूँ,
तलफत है मेरे प्राण ॥ सखी री० ॥ १ ॥
कुंज धाम सब लागत फीके
नैक न भावत प्यान ॥
अब तो मन मेरो प्रभु ही पै
लग्यो है चरन कमलान ॥ सखी री० ॥ २ ॥
तारन तरन बिरद है जिनको
यह कीनी परमान ॥
भक्तराम हम कू है तारोगे
करुणा कर भगवान ॥ सखी री ॥ ३ ॥

[२०५]

राग–परज

देखो माई यादवपतिने क्या करी री ॥
पशुजन कौं मिस करि रथ फेरयो
गिरि परि दीक्षा धरी री ॥ देखो ॥ १ ॥

हे ह्यां काहे को प्रभु जोग कमायो,
त्रिसना तन की न करी री ॥
हेमसी तिय मन कु नही भाइ,
मुक्ति वधु को वरी री ॥ देखो० ॥ २ ॥
बखतराम प्रभु की गति हमको,
जानी क्यों हूँ न परी ॥
जब चरनारविंद हू निरखौं,
सो ही सफल घरी ॥ देखो० ॥ ३ ॥

[२०६]

राग भैरू

तू ही मेरा समरथ साई ॥
तो मो खावद पाय कृपानिधि,
कैसे और की सरन गहाई ॥ तू ही० ॥ १ ॥
जग तीनों सब तोकू जानत,
गुरु जन हूँ ग्र थनि मैं गाई ।
परभव में जो शिव सुख दे है,
या भव की तौं कौन चलाई ॥ तू ही० ॥ २ ॥
हुतो भरोसो मोकू तेरो,
दोढि हमारी करि है सहाई ।
जानि परी कलिकाल अमर यह,
तुमहूँ पे गयो व्यापी गुसाई ॥ तू ही० ॥ ३ ॥

भाग्य हमारे लिख्यौ सही हो है,
सो तुम ही काहे खपाई।
होनी होय सो होय पै तेरो
अधम उधारन विरद कहाई ॥ तू ही ॥ ४ ॥
तातै भवदुख मेटि करो सुख
तो तुम सांचौ विरद कहाई।
बखतराम के प्रभु आदोंपति
दीन दुखी लखि देहु निवासी ॥ तू ही ॥ ५ ॥
[२०७]
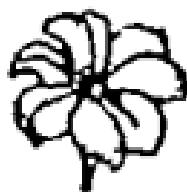
नवलराम

(संवत् १७९०–१८५५)

नवलराम १८ वीं शताब्दी के कवि थे। ये बसवा (राजस्थान) के रहने वाले थे। महापंडित दौलतराम जी कासलीवाल से इनका घनिष्ट सम्बन्ध था और इन्हीं की प्रेरणा से इनको साहित्य की ओर रुचि हुई थी। वर्द्धमान पुराण को उन्होंने सवत् १८२५ में समाप्त किया था। कवि के पद जैन समाज में अत्यधिक प्रिय है और उन्हें बडे चाव से धार्मिक उत्सवों एव आयोजनों में गाया जाता है। अब तक इनके २२२ पद प्राप्त हो चुके हैं। वर्द्धमान पुराण के अतिरिक्त इनकी रचनाओं में जय पच्चीसी, विनती, रेखता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नवलराम भक्ति शाखा के कवि थे। वीतराग प्रभु के दर्शन एव स्तवन में इन्हें बडा आनन्द आता था। इसीलिए इनके अधिकांश पद

भक्ति परक है। दर्शन करने से इनकी आंखें तृप्त हो जाती थी इसीलिए वे 'आवि लगत मई मेरी अखियां' का गीत गाने लगते थे। अपने सभी पदों में वे यही सिद्ध करते थे कि भगवान का दर्शन महान् पुण्य का स्रोत है और जिसने इसका मनन कर लिया उसने मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लिया और जिसने नहीं किया वह रीता ही रह गया। कवि के पदों की भाषा वैसे तो खड़ी हिन्दी है किन्तु उसमें राजस्थानी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

कवि के जीवन की विशेष घटनाओं की जानकारी अभी खोज का विषय है।

राग-विलावल

अब ही अति आनन्द भयो है मेरै ॥
परम सात मुद्रा लखि तेरी,
भाजि गये दुख दंद ॥ १ ॥
चरन सरनि आयो जब ही,
तोडे रे करम रिपु रिंद ।
और न चाहि रहो अब मेरे,
लहे सुखन के कद ॥ २ ॥
जैसे जनम दरिद्री पायो,
वाछित धन की वृद ।
फूलो अग अग नही मावत,
निज मन मानत हद ॥ ३ ॥
भव आताप निवारन कौ,
हो प्रगट जगत मैं चन्द ॥
नवल नम्यो मस्तग द्वै कर धरि,
तारक जानि जिनद ॥ ४ ॥

[२०८]

राग-सोरठ

आजि सुफल भई दो मेरी अखिया ॥
अद्भुत सुख उपज्यो उर अतर,
श्री जिन पद पकज लखिया ॥ आजि० ॥१॥

अति हरषात मगन भई चैसे
जो रंजत जल मैं मछिया ॥ आलि ॥२॥
और ठौर पल एक न राचे
जे सुन गुन अमृत चखियां ॥ आलि० ॥३॥
पंच सु पंच वसे मग लागी
असुम क्रिया सबही नसियां ॥ आलि० ॥४॥
नवल कहे ये ही मैं इच्छित
सब मन मैं प्रभु तेरी पखियां ॥ आलि० ॥५॥

[२०६]

राग-कान्हरो

चैसे खेल होरी को खेलि रे ॥
कुमति ठगोरी कौं अब तजि करि
तू साथ सुमति गोरी को ॥ खेलि ॥१॥
ग्यान चंदन तप सुभ अरगजो
जल विरक्तो संजम चोरी को ॥ ॥२॥
करुना तणा अबीर उड़ावो,
रंग करुना केसरि धारी को ॥ ३ ॥
ध्यान गुलाल विमल मन चोवो
फुनि करि त्याग सकल चोरी को ॥ ४ ॥
नवल इसी विधि खेलत है
ते पावत हैं मग शिव धारी को ॥ ५ ॥

[२१०]

राग-सोरठ में होली

इह विधि खेलिये होरी हो चतुर नर ॥
निज परनति संगि लेहु सुहागिन,
अरु फुनि सुमति किसोरी हो ॥ चतुर० ॥१॥
ग्यान मई जल सौं भरि भरि कै,
सबद पिचरिका छोरी ॥
क्रोध मान अबीर उड़ावो,
राग गुलाल की झोरी हो ॥ चतुर० ॥२॥
गहि संतोष यौ ही सुभ चंदन,
समता केसरि घोरी ॥
आतम की चरचा सोही चोवो,
चरचा होरा होरी हो ॥ चतुर० ॥३॥
त्याग करो तन तणी मगनता,
करुना पान गिलोरी ॥
करि उछाह रुचि सेती ल्यो,
जिन नाम अमल की गोरी ॥ चतुर० ॥४॥
सुचिमन रंग बनावो निरमल,
करम मैल यौ टोरी ॥
नवल इसी विधि, खेल खेलो,
ज्यो अब भाजे वर जोरी हो ॥ चातुर० ॥५॥

[२११]

राग-सोरठ

की परि इतनी मगरूरि करी ॥

जाति सकै तो येति आपरे,
मारग पूछत है सगरी ॥ की परि ॥ १ ॥

कित तैं आयो फिरि कित जै है
समझ देख नाही ठीक परी ।

ओस बूंद की ओपम तेरो
धूप लगे न रहत घरी ॥ की परि० ॥ २ ॥

मन परिग्रह इत्यादिक मेरो,
मानत है सो जानि परी ॥

निज देही लखि मगन होत तू
सो मल-मूतर पूरि भरी ॥ की परि ॥ ३ ॥

काम काज की चेत जात ये
सो सुनि अपने काम परी ।

जानि यही नेमी करि भाई
नवल कहत यह काज सरी ॥ कीपरि० ॥ ४ ॥

[२१२]

राग-सोरठ

जगत में धरम पदारथ सार ॥

धरम बिना प्रांनी पावत है दुख नाना परकार ॥
जगत में ॥ १ ॥

दिढ सरधा करिये जिनमत की पाहन की धार ।
जो करि सो विवेक लिया करि श्रुत मारग अनुसार ॥
जगत मैं० ॥ २ ॥

दान पुंनि जप तप संजम व्रत करि दिल अति सुकमार ।
सब जीवन की रच्या कीजे कीजे पर उपगार ॥
जगत मैं० ॥ ३ ॥

अंग अनेक धरम के तिनको कहित वढै विस्तार ।
नवल तत्व भाष्यो थोरे मैं करि लीज्यो निरधार ॥
जगत मैं० ॥४॥

[२१३]

राग–सोरठ

जिन राज भजा सोही जीता रे ॥
भजन कीया पावै सिव सपति, भजन विना रहे रीतारे ॥
॥ जिन० ॥१॥

धरम विना धन है चक्री सम, सो दुख भार सलीता रे ।
धरम माहि रत धन नहि तौ, पए वो जग माहि पुनीता रे ॥
॥ जिन० ॥२॥

या सरधा विन भ्रमत भ्रमत तोहि, काल अनन्त वितीतारे ।
वीतराग पद नरनि गही तिन, जनम सफल करि लीतारे ॥
॥ जिन० ॥३॥

मन वचतन दृढ़ प्रीति आनि कर जिन गुन गाथा गीता रे।
नाम महात्म्य श्रवनन सुनिके, नयन सुधारस पीवा रे॥
॥ जिन० ॥४॥

[२१४]

राग–सोरठ

या परि वारी हो जिन राय॥
देखत ही आनन्द बहु उपज्यो पातिग दूर विडारी हो॥
जिन राय ॥१॥

तीन छत्र सुन्दर सिर सोहैं रतन जटित सुखकारी हो।
पुनि सिंघासन अद्भुत राजै सब जनकूं हितकारी हो॥
जिन राय० ॥२॥

शोक हरन आसन ही छूटी सब परिजन मनि धारी हो।
सुनि मन पी छवि देखि रावरी अबहूँ नैन निहारी हो॥
जिन राय ॥३॥

दोष अठारा रहित विराजौ गुन छियालीस धारी हो।
नवल जोरि कर करत विनती राखो लाज हमारी हो॥
जिन राय ॥४॥

[२१५]

राग-देव गंधार

अव इन नैनन नेम लीयो ॥
दरस जिनेसुर ही को करणो,
ये निरधार कीयो ॥ अव इन० ॥१॥
चंद चकोर मेघ लखि चातक,
इक टक चित्त दीयो ॥
ऐसे ही इन जुगल द्रगयनि,
प्रभु में कीयो है हीयो ॥ अव इन० ॥२॥
अति अनुराग धारि हित सौं,
अर मानत सफल जीयो ॥
नवल कहे जिन पद पकज रस,
चाहत है वैही पीयो ॥ अव इन० ॥३॥

[२१६]

राग-सोरठ

प्रभु चूक तकसीर मेरी माफ करिये ॥
समझि विन पाप मिथ्यात बहु सेइयो,
ताहि लखि तनक हूँ चित न धरिये ॥१॥
तात अरु मात सुत भ्रात फुनि कामनी,
इन सग राचि निज गुनन विसरिये ॥
मान मायाचारी क्रोध नहि तजि सक्यो,
पीय समता रस न मोह हरिये ॥२॥

दान पूजादि विधिसौं नहिं बिन सकै,
सुथिर चित बिना तुम ध्यान धरिये ॥
लाभ लाग्यो पथ अपथ महिं ओइया
असठ वप बोलि हूं उदर भरिये ॥३॥
दोष अनक विधि लगत कौंसी कहूं
येक तुम नाम तैं सुक्ष विसुरिये ॥
नवल हूं बीनती करत जग नाथ पै
काटि जग फासि ज्यों भव तरिये ॥ प्रभु ॥४॥
[२१७]

राग—कनडी

म्हारो मन लागो जी जिन जी सौं ॥
अद्भुत रूप अनोपम मूरति
निरखि निरखि अनुरागो जी ॥ म्हारो ॥१॥
समता भाव भये हैं मेरे
आंन भाव सब त्यागो जी ॥ म्हारो ॥२॥
स्वपर विवेक भयो नहीं कबहूं
सो परगट होय जागो जी ॥ म्हारो ॥३॥
ग्यान प्रभाकर उदित भयो अब
मोह महातम भागो जी ॥ म्हारो ॥४॥
नवल भयल आनंद भये प्रभु
चरन कमल अनुरागो जी ॥ म्हारो ॥५॥
[२१८]

राग-सोरठ

सावरिया हो म्हानै दरस दिखावो ॥
सब मो मन की वाछा पूरो,
काई नेह की रीति जताओ ॥ म्हानै० ॥ १ ॥
ये अखिया प्यासी दरसन की,
सींचि सुधारस सरसावौ ।
नवल नेम प्रभु मो सुधि लीजे,
काई अब मति ढील लगावो ॥ म्हानै० ॥ २ ॥

[२१६]

राग–सोरठ

हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै ॥
जाके चितवन ही तै तेरे सकलप विकलप मिटै ॥
हो मन० ॥ १ ॥
कर अजुली के जल की नाई; छिन छिन आव जु घटै ।
याते विलम न करि भजि प्रभु ज्यों भरम कपाट जु फटै ॥
हो मन० ॥ २ ॥
जिन मारग लागे विन तेरी, भव सतति नाहि कटै ।
या सरधा निश्चै उर धरि ज्यों, नवल लहै सिव तटै ॥
हो मन० ॥ ३ ॥

[२२०]

राग–पूरवी

मन वीतराग पद वंद रे ॥
नैन निहारत ही हिरदा में
उपजत है आनन्द रे ॥ मन० ॥ १ ॥
प्रभु को छांडि लगत विषयन में
खारिज सब स्वंद रे ।
जो अविनाशी सुख चाहे तो
इनके सुमन स्यौं फंद रे ॥ मन० ॥ २ ॥
ये काम रुचि ते राखि इन में
त्यागि सकल सुख दुःख रे ।
नवल नवल पुन्य उपजत
पावै भव सब होय निकंद रे ॥ मन० ॥ ३ ॥
[२२१]

राग–मांढ

म्हारा तो नैना में रही छाय होजी हो जिनन्द थांकी मूरति
म्हारा तो नैनामें रही छाय ॥
जो सुख मो उर मांहि भयो है सो सुख कहियो न जाय
म्हारा ॥ १ ॥
उपमा रहित विराजत हो प्रभु मासौं वरणन न जाय ।
ऐसी सुन्दर छवि जाके ढिग कोटि विघन टल जाय ॥
म्हारा० ॥ २ ॥

तन मन धन निछरावल कर हूँ, भक्ति करू गुण गाय।
यह विनती सुन लेहु 'नवल' की, आवागमन मिटाय॥
म्हारा० ॥ ३ ॥

[२२२]

राग-कनडी

सत सगति जग में सुखदाई॥
देव रहित दूषण गुरु सांचो,
धर्म्म दया निश्चै चितलाई ॥ सत० ॥ १ ॥
सुक मैना सगति नर की करि,
अति परवीन वचनता पाई।
चद्र क्राति मनि प्रगट उपल सो,
जल ससि देखि झरत सरसाई ॥ सत० ॥ २ ॥
लट घट पलटि होत पट पट सी,
जिन् की साथ भ्रमर को थाई।
विकसत कमल निरखि दिनकर कौं,
लोह कनक होय पारस छाई ॥ सत० ॥ ३ ॥
बोझ तिरै संजोग नाव कै,
नाग दमनि लखि नाग न खाई।
पावक तेज प्रचड महाबल,
जल परता सीतल हो जाई ॥ सत० ॥ ४ ॥

अमृत भाषा हैं मुख मीठे
 कन्धी ते हा हे करमाई ।
मलियागर की बास परसि के,
 सब बन के तरु में सुगंधाई ॥ सत० ॥ ५ ॥
सुख मिलाप पाय फूलन को
 उत्तम नर गल बीचि रहाई ।
मग की लार खाख हू बपरी
 नरपति के सिर आय चढाई ॥ सत ॥ ६ ॥
संग प्रताप भुजंगम जे है,
 चंदन सीतल तरल पटाई ।
इत्यादिक ये बात घनेरी
 कोलौं ताहि कहौं जु बड़ाई ॥ सत० ॥ ७ ॥
महाधमी अरु महापापी व
 तिनको संगति लागत नाही ।
नयन कहै न अधि परनामी
 तिनकों ये उपदेस सुनाई ॥ सत ॥ ८ ॥
[२२१]

राग-सारग

अरी ये मों नींद न आवै ॥
नेमि पिया बिन चैन न परत
 मोहि असन न पान सुहावै ॥ अरी ॥ १ ॥

सब परिग्रण लोभी स्वारथ को,
अपनी अपनी गावे ॥ अरी० ॥ ८ ॥
नवल हितू जग में ये ही हैं,
प्रभु तें जाइ मिलावें ॥ अरी० ॥ ९ ॥
[२२४]

राग–सारंग

अरे मन सुमरि देव जिनराय ॥
जनम जनम संचित तें पातिक,
ततछिन जाय विलाय ॥ अरे० ॥ १ ॥
त्यागि विषय अरु लग शुभ कारज,
जिन वाणी मन लाय ।
॥ ससार खार सागर में,
और न कोइ सहाय ॥ अरे० ॥ २ ॥
प्रभु की सेव करत मुनि हूँ,
जन खग इन्द्र आदि हरषाय ।
वाहि तें तिर है भवदधि जल,
नावै नांव बनाय ॥ अरे० ॥ ३ ॥
इस मारिग लागे ते उतरे,
परनै कौन चढाय ।
नवल कहै वाछित फल चाहै,
सो चरना चितलाय ॥ अरे० ॥ ४ ॥
[२२५]

राग—ईमन

भजी मैं निसदिन ध्यावांगी।
जैसे तू लागी रहती मन मैं ॥ भजी० ॥
तुझ बिन प्रभु और न दिसता
चित रहता चरणन मैं ॥ भजी० ॥ १ ॥
तुम बिन मेरा नेक साईं
भ्रमत फिरयो भव बन मैं ॥ भजी० ॥ २ ॥
अबै भयो सुख जो भाग मेरे,
प्रभु दीठा नैनन मैं ॥ भजी ॥ ३ ॥

[२२६]
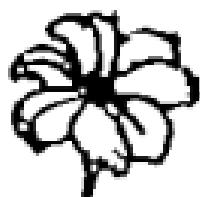
बुधजन

(संवत् १८३०–१८९५)

कविवर बुधजन का पूरा नाम विरधीचन्द था। ये जयपुर (राजस्थान) के रहने वाले थे। खण्डेलवाल जाति में इनका जन्म हुआ था तथा बज इनका गोत्र था। इनके समय में महापंडित टोडरमल की अपूर्व साहित्यिक सेवाओं के कारण जयपुर भारत का प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र बन चुका था इसलिए बुधजन भी स्वतः ही उधर मुड़ गये। इनका साहित्यिक जीवन संवत् १८५४ से आरम्भ होता है जब कि इन्होंने 'छहढाला' की रचना की थी। यह इनकी बहुत ही सुन्दर कृति है।

अब तक इनकी १७ रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। जिनका रचना-काल संवत् १८५४ से १८९५ तक रहा है। तत्वार्थबोध (संवत् १८७१)

बुधजनसतसई (संवत् १८८१) संबोध पंचासिका (संवत् १८९१) पंचा-स्तिकाय (संवत् १८९१) बुधजन विलास (संवत् १८९१) एवं योगसार भाषा (संवत् १८९५) आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं। बुधजन सतसई इनकी उपदेशात्मक रचना है जिसमें आध्यात्मिकता की लहर के साथ साथ अन्य विषयों पर भी अच्छी कविता मिलती है। बुधजन विलास में इनकी स्फुट रचनाओं एवं पदों का संग्रह मिलता है। विलास एक सुन्दर संग्रह है जिसे पढ़ कर प्रत्येक पाठक आत्मदर्शन करने का प्रयत्न करता है।

बुधजन के पदों का अत्यधिक प्रचार रहा है। अब तक इनके २४२ पद प्राप्त हो चुके हैं। पदों के अध्ययन से पता चलता है कि वे ऊंची श्रेणी के कवि थे। आत्मापरमात्मा एवं संसार चिन्तन पदों का करते रहे थे और उसी का वे परिशीलन किया करते थे। बुधजन ने द्यानतराय के समान ही आत्म-दर्शन किये थे।

कवि ने अपनी रचनायें सीधी सादी बोलचाल की भाषा में लिखा है। कहीं कहीं व्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। छोड़ यारें, मोड़ तोर्दि बाना के जैसे शब्द ग्राम्य हैं। वर्णन शैली सुन्दर है।

राग-कानडी

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ॥

उत्तम० ॥

कीट पशू का तन जब पाया, तब तू रह्या निकामा ।
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौं न भजै प्रभु नामा ॥

उत्तम० ॥१॥

सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊ नरजामा ।
ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत विन कामा ॥

उत्तम० ॥२॥

धन जोवन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखिभामा ।
काल अचानक झटक खायगा, परे रहैंगे ठामा ॥

उत्तम० ॥३॥

अपने स्वामी के पद पकज, करो हिये विसरामा ।
मेटि कपट भ्रम अपना बुधजन, ज्यौं पावौ शिव धामा ॥

उत्तम० ॥४॥

[२२७]

राग-मांढ

अब हम देखा आतम रामा ॥

रूप फरस रस गंध न जामे, ज्ञान दरश रस साना ।
नित्य निरजन, जाके नाहीं-क्रोध लोभ छल कामा ॥१॥

भूख प्यास सुख दुख नहिं जाके नाहीं बन पुर गामा।
नहिं बाहर नहिं ठाकुर भाई नहीं तात नहिं मामा।।२।।

भूल अनादि थकी बहु भटक्यो ले पुद्गल का जामा।
'बुधजन' सतगुरु की संगतिसे मैं पायो मुझ ठामा।।३।।

[१२८]

राग–आसावरी

नर–भव–पाय फेरि दुख भरना ऐसा काज न करना हो।
नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं करम जाल क्यों परना हो।
नर–भव पाय फेरि दुख भरना ऐसा काज न करना हो।।
नर–भव ।।१।।

यह तो जड़ तू ज्ञान अरूपी तिल–तुष ज्यौं गुरु बरना हो।
राग–दोष तजि भज समताकौं कर्म साथ के हरना हो।।
नर–भव ।।२।।

यो भव पाय विषय–सुख सेना गज चढ़ि ईंधन ढोना हो।।
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर-पद ज्यौं भव-सागर तरना हो।
नर–भव ।।३।।

[१२९]

राग–सारंग

धर्म बिन कोई नहीं अपना।
सुख सम्पत्ति-धन थिर नहिं जग में, जिसा रैन सपना ॥
धर्म बिन० ॥

आगे किया, सो पाया भाई, याही है निरना।
अब जो करैगा, सो पावेगा, तातैं धर्म करना ॥
धर्म बिन० ॥

ऐसें सब संसार कहत है, धर्म कियें तिरना।
पर-पीड़ा बिसनादिक सेवैं, नरक विषैं परना ॥
धर्म बिन० ॥

नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना।
अरु दारिद्री कैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ॥
धर्म बिन० ॥

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि बिपति भरना।
बन-गिरि-सरिता अगनि जुद्ध में, धर्म हि का सरना ॥
धर्म बिन० ॥

चित 'बुधजन' सन्तोष धारना, पर-चिन्ता हरना।
बिपति पड़े तो समता रखना, परमातम जपना ॥
धर्म बिन० ॥

[२३०]

नर विवेक उर धार परीक्षा, भेद-विज्ञान विचारना।
'बुधजन' तनतें ममत मेटना, चिदानन्द पद धारना ॥३॥

[२३२]

राग-ख्याल तमाशा

तैंने क्या किया नादान तैं तो अमृत तज विष पीया।
लख चौरासी योनि माहि तैं श्रावक कुल में आया।
अब तज तीन लोक के साहिब नव भद्र पूजन धाया ॥
तैंने० ॥१॥

वीतराग के दर्शन ही तें उदासीनता आवै।
तू तो जिनके सन्मुख ठाडो सुत को ख्याल खिलावै ॥
तैंने० ॥२॥

स्वर्ग सपदा सहज ही पावै निश्चै मुक्ति मिलावै।
ऐसे जिनवर पूजन सेती जगत कामना चाहै ॥
तैंने० ॥३॥

'बुधजन मिल के सलाह बतावै तू यावे खिन जावै।
यथायोग्य की अनथा माने जनम जनम दुख पावै ॥
तैंने० ॥४॥

[२३३]

राग-रामकली

श्री जिन पूजन कौं हम आये।
-- पूजत ही दुख द्वन्द मिटाये ॥

निरखत नयन मगन भयो धीरज
अद्भुत सुख समता घर आवे ॥
आधि व्याधि अब दीसत नाहीं
धर्म कल्पतरु आंगन आवे ॥ श्री ॥१॥
इन्द्र चन्द्र चक्रवर्ति जिनमें
इन में फणिंद्र खरे सिरनावे ॥
मुनिजन वृंद करे स्तुति हरषित
धनि हम हूं नमें पद सरसावे ॥ श्री० ॥२॥
परमोदारिक में परमातम
ज्ञान मई हमकों दरसावे ॥
जैसे ही हम में हम जानें
बुधजन गुन मुख जात न गावे ॥ श्री० ॥३॥

[२२४]

राग—जंगलो

या काया माया थिर न रहेगी
मूरख मान न कर रे । या ॥
काई श्रेष्ठ कथा परवाना
लोभ सुभट का भर रे ॥
छिन में सोचि सुधि है तन ही
एक फिरे घर घर रे ॥ या ॥१॥

तन सुन्दर रूपी जोबन जुत,
लाख सुभट का बल रे ॥
सीत-जुरी जब आन सतावै,
तब कांपै थर थर रे ॥ या० ॥ २ ॥

जैसा उदय तैसा फल पावै,
जाननहार तू नर रे ॥
मन मैं राग दोष मति धारे,
जनम मरन तैं डर रे ॥ या० ॥ ३ ॥

कही बात सरधा कर भाई।
अपने परतख लख रे ॥
शुद्ध स्वभाव आपना बुधजन,
मिथ्या भ्रम परिहर रे ॥ या० ॥ ४ ॥

[२३५]

राग-सोरठ

मेरे मन तिरपत क्यो नहिं होय, मेरे मन ॥
अनादि काल तैं विषयन राच्यो, अपना सरवस खोय ॥ १ ॥
नेक चाख के फिर न चाहुडे, अधिक लपटी होय।
झंपा पात लेत पतग जो, जल बल भस्मी होय ॥ २ ॥
ज्यों ज्यों भोग मिले त्यों तृष्णा अधिकी अधिकी होय।
जैसे घृत डारे तैं पावक, अधिक बलत है सोय ॥ ३ ॥

भरतन माही बहु सागर लौं, दुख भुगतगो सोय।
चाह भोग की त्यागो बुधजन' अविचल शिव सुख होय ॥८॥
[२३६]

राग–सारग

निजपुर में आज मची होरी ॥
उमगि चिदानंदजी इत आये इत आई सुमती गोरी ॥
निज ॥ १ ॥
लोकलाज कुलकाणि गमाई ज्ञान गुलाल भरी झोरी ॥
निज० ॥ २ ॥
समकित केसर रंग बनायो चारित की पिचकी छोरी ॥
निज ॥ ३ ॥
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसौं बरस्योरी ॥
निज ॥ ४ ॥
देखन आये बुधजन भीगे निरख्यौ ख्याल अनोखोरी ॥
निज ॥ ५ ॥
[२३७]

राग–आसावरी

चेतन खेलो सुमति संग होरी ॥ चेतन ॥
तोरि आन की प्रीति सयाने
भली बनी या ओरी ॥ चेतन ॥ १ ॥
डगर डगर डोलत है यौंही

आव आपनी पोरी ॥
निज रस फगुवा क्यों नहि बाटो,
नातरि ख्वारी तोरी ॥ चेतन० ॥ २ ॥
छार कषाय त्याग या गहि लै
समकित केसर घोरी ॥
मिथ्या पाथर डारि धारि लै,
निज गुलाल की झोरी ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
खोटे भेष धरैं डोलत है,
दुख पावै बुधि भोरी ॥
बुधजन अपना भेष सुधारो'
ज्यों विलसो शिव गोरी ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[२३८]

राग—भैरू

उठो रे सुज्ञानी जीव, जिन गुन गावो रे ॥
उठो० ॥
निसि तो नसाय गई, भानुको उद्योत भयो,
ध्यान को लगावो प्यारे, नींद को भगावो रे ॥
उठो० ॥ १ ॥
भव वन चौरासी बीच, भ्रमतो फिरत नीच,
मोह जाल फंद पर्यो, जन्म मृत्यु पावो रे ॥
उठो० ॥ २ ॥

आरज भूमी में आय, उत्तम जनम पाय
श्रावक कुल को लहाय मुक्ति क्यों न पावो रे ॥
छोडि० ॥ ३ ॥

विषयनि राचि राचि बहु विधि पाप सांचि
नरकनि जायके अनेक दुःख पावो रे ॥
छोडि० ॥ ४ ॥

पर की मिलाप त्यागि आतम के जाप लागि
सु बुधि बतावे गुरु ज्ञान क्यों न लावो रे ॥
छोडि० ॥ ५ ॥

[२१६]

राग-माढ

अष्ट करम म्हारो कांई करसीजी मैं म्हारे घर राखूं राम ॥
इन्द्री द्वारे चित दौरत है तिन वश ह्वै नहीं करस्यूं काम ॥
अष्ट ॥१॥

इन को जोर इतोही मुझपे दुःख दिखलावैं इन्द्री ग्राम ।
जाको जानूं मैं नहीं मानूं भेद विज्ञान करूं विश्राम ॥
अष्ट ॥२॥

कहूं राग कहुं दोष करत थो तब विधि आते मेरे धाम ।
सो विभाव नहीं धारूं कबहूं शुद्ध स्वभाव लहूं अभिराम ॥
अष्ट ॥३॥

जिनवर मुनि गुरु की बलि जाऊँ, जिन बतलाया मेरा ठाम ।
सुखी रहत हूँ दुख नहिं व्यापत, 'बुधजन' हरषत आठों जाम ॥

अपटल। ।४॥

[२४०]

राग—मांढ

कर्मन् की रेखा न्यारी रे विधिना टारी नाहिं टरै ।
रावण तीन खण्ड को राजा छिनमें नरक पड़े ।
छप्पन कोट परिवार कृष्णके बनमें जाय मरे ॥१॥
हनुमान की मात अञ्जना बन बन रुदन करै ।
भरत बाहुबलि दोऊ भाई कैसा युद्ध करै ॥२॥
राम अरु लक्ष्मण दोनों भाई सिय की संग वन में फिरे ।
सीता महा सती पतिव्रता जलती अगनि परे ॥३॥
पाण्डव महाबली से योद्धा तिनकी त्रिया को हरे ।
कृष्ण रुक्मणी के सुत प्रद्युम्न जनमत देव हरे ॥४॥
को लग कथनी कीजे इनकी, लिखता ग्रन्थ भरे ।
धर्म सहित ये करम कौनसा 'बुधजन' यों उचरे ॥५॥

[२४१]

राग—आसावरी

बाबा, मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥
सुर-नर नारक-तिर्यक गति में, मोकों करमन घेरा रे ॥

बाबा० ॥ १ ॥

माता-पिता-सुत तिय-कुल परिजन मोह-गहल उरझेरा रे।
तन-धन-वसन-भवन जड़ न्यारे हैं चिन्मूरति न्यारा रे॥
बाबा० ॥२॥

मुझ विभाव जड़ कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे।
विभाव-चाक तजि धारि सुभावा आनन्द-घन हेरा रे॥
बाबा० ॥३॥

परद खेद नहिं अनुभव करते निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप-तप व्रत श्रुत सार यही है बुधजन कर न अबेरा रे॥
बाबा० ॥४॥

[२४२]

राग—झंझोटी

कर ले हो जीव सुकृत का सौदा कर ले,
परमारथ कारज कर लै हो॥
उत्तम कुल को पायकैं, जिनमत रतन लहाय।
भोग भोगवें कारनैं क्यों शठ देत गमाय॥
सौदा करले ॥१॥

व्यापारी बन आइयो नर-भव-हाट-मँझार।
फलदायक-व्यापार कर नातर विपति तयार॥
सौदा करले ॥२॥

भव अनन्त धरतो फिरयो चौरासी वन माँहि।
अब नर देही पायकैं अघ खोवै क्यों नाहिं॥
सौदा करले ॥३॥

जिनगुनि आगम परखकैं, पूजौ करि सरधान।
कुगुरु कुदेव के मानर्यें, फिरया चतुर्गति थान ॥
सौदा करलै० ॥ ४ ॥

मोह-नींद सौं सोवता, डूबौ काल अटूट।
'बुधजन' क्यौं लागै नहीं, कर्म करत है लूट ॥
सौदा करलै० ॥ ५ ॥

[२४३]

राग-झंझोटी

मानुष भव अब पाया रे, कर कारज तेरा ॥
श्रावक के कुल आया रे, पाय देह भलेरा।
चलन सितावी होयगा रे दिन दोय बसेरा रे ॥
मानुष० ॥ १ ॥

मेरा मेरा मति कहै रे, यह कौन है तेरा।
कष्ट पड़ै जब देह पै, रे कोई आतन नेरा ॥
मानुष० ॥ २ ॥

इन्द्री सुख मति राच रे, मिथ्यात अँधेरा।
सात विसन दे त्याग रे, दुख नरक घनेरा ॥
मानुष० ॥ ३ ॥

उर मैं समता धार रे, नहिं साहब चेरा।
आपा आप विचार रे, मिटिज्या गति फेरा ॥
मानुष ॥ ४ ॥

ये सुख आतम मावें रे बुधजन तिम करा।
निस दिन पद बंदन करें रे, ये साहिब मेरा ॥

मानुर० ॥ ५ ॥

[२७४]

राग–विहाग

मनुआ बावरा हो गया ॥ मनुआ० ॥

परवस वस्तु जगत की सारी
निज करि चाहै लया ॥ मनुआ० ॥१॥

जीवन थीर मिल्या है नरभव
सो भोगत क्यों गया ॥ मनुआ० ॥२॥

जो कण बोया मधम भूमि में
सो कण जीरे गया ॥ मनुआ० ॥३॥

करत अभाग भान की मिल गिन
सुख पद त्याग दया ॥ मनुआ० ॥४॥

आप आप बोरथ विपरी है
बुधजन ढीठ भया ॥ मनुआ० ॥५॥

[२७५]

राग–सोरठ

अरे जिया तैं निज कारिज क्यों न कीयो ॥

या भव की सुरपति अति तरसै
सो तो सहज पाय लीयो ॥ अरे० ॥१॥

मिथ्या तदुर दर्व, गुन नांजयो,
नै स्वपनाग पीयो
क्या मान पूजन मजम मैं,
मगरे तिन ना दीयो ॥ अरे० ॥२॥
सुरजन औसर कठिन मिल्या है,
निरर्थ मारि दियो ॥
अब जिनमत सरणा दिन परो,
तब मेरो सफल जीयो ॥ अरे० ॥३॥

[२४६]

राग-बिलावल

गुरु दयाल तेरा दुःख लखि कै,
सुनि लै जो फरमावै है ॥
तो मैं तेरा जतन बतावै,
लोभ कछू नहिं चावै है ॥ गुरु० ॥१॥
पर सुभाव कू मोग्या चाहै,
अपना उमा बनावै है ॥
सो तो कबहूँ होया न होसी,
नाहक रोग लगावै है ॥ गुरु० ॥२॥
खोटी खरी करी कमाई,
तैसी तेरे आवै है ॥
चिन्ता आगि उठाय हिया में,

माइक ज्ञान जगावे है ॥ गुरु० ॥३॥
पर अपनावे सो दुख पावे
बुधजन ऐसे गावे है ॥
पर को त्याग आप थिर तिष्टै
सो अविचल सुख पावे है ॥ गुरु० ॥४॥
[२४७]

राग–आसावरी

प्रभु तेरी महिमा बरणी न जाई ॥
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत मैं कछु पार न पाई ॥१॥
षट द्रव्य में गुण व्यापत जेते एक समय में झलकाई।
ताकी कथनी विधि निषेधकर, द्वादस अंग सवाई ॥२॥
क्षायिक समकित तुम बिन पावत और ठौर नहीं पाई।
जिन पाई तिन मन थिर राखी ज्ञान की रीति बताई ॥३॥
मो से अल्प बुधि तुम ध्यावत श्रावक पदवी पाई।
तुमरी दें अभिराम कछु निज राग दोष बिसराई ॥४॥
[२४८]

दौलतराम

(संवत् १८५५-१९२३)

दौलतराम नाम के दो विद्वान् हो गये हैं इनमें प्रथम बसवा निवासी थे। ये महाराजा जयपुर की सेवा में उदयपुर रहते थे। वहीं रहते हुये इन्होंने कितने ही ग्रंथों की रचना की थी इनमें पद्मपुराण भाषा, आदिपुराण भाषा, पुण्याश्रवकथाकोश, अध्यात्मबारहखड़ी, जीवधार चरित भाषा आदि हिन्दी की अच्छी रचनायें मानी जाती हैं ये १८ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। दूसरे दौलतराम हाथरस निवासी थे। इनका जन्म संवत् १८५५ या १८५६ में हुआ था। इनके पिता का नाम टोडरमल एवं जाति पल्लीवाल थी। ये कपड़े के व्यापारी थे। प्रारम्भ से ही इनका ध्यान विद्याध्ययन की ओर था। इनकी स्मरण

शक्ति अद्भुत थी और वे प्रतिदिन १ तक श्लोक एवं गाथायें न
कर लिया करते थे। इनके दो पुत्र थे। कवि का स्वर्गवास संवत् १८१
में हुआ था।

दौलतराम का हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार था इन्होंने ग
से भी अधिक पद लिखे हैं जो सभी उच्चस्तर के हैं। आध्यात्मि
भावनाओं से ओत-प्रोत ये पद पाठकों का मन स्वतः ही अपनी ओ
आकृष्ट कर लेते हैं। पदों में इन्होंने अपनी मनोभावनाओं का अच्छी
तरह विकास किया है। 'सुनि ठगनी माया तैं सब जग ठग खाया'
पद उनकी आत्मा की आवाज है संसार को धोखे का घर समझ कर
वीतराग प्रभु की शरण गहे गये और तब उन्होंने "आज मैं पर
पदारथ पायो प्रभु चरनन चित लायो" पद की रचना की।

पदों की भाषा खड़ी हिन्दी है लेकिन उन पर यत्र तत्र ब्र
भाषा का प्रभाव है।

राग—बरवा

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजै, आसन थिर ठहराया है॥
देखो० ॥१॥

जगत विभूति भूति सम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा, आशावासा नासा दृष्टि सुहाया है॥
देखो० ॥२॥

कंचन बरन चलै मन रंच न, सुरगिर ज्यों थिर थाया है।
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जाति विरोध नसाया है।
देखो० ॥३॥

शुभ उपयोग हुताशन में जिन, वसु विधि समिध जलाया है।
श्यामलि अलिकावलि शिर सोहै, मानों धूआ उड़ाया है॥
देखो० ॥४॥

जीवन मरन अलाभ लाभ जिन, तृनमनि को सम भाया है।
सुर नर नाग नमहिं पद जाके, दौल तास जस गाया है॥
देखो० ॥५॥

[२४६]

राग—सारंग

हमारी वीर हरो भव पीर॥ हमारी०॥
मैं दुख तपित दयामृत सागर,
लखि आयो तुम तीर॥

तुम परमरा मोक्षमग दरशक,
मोह दवानल नीर ॥ हमारी ॥१॥
तुम बिन हेत जगत उपगारी
शुद्ध चिदानन्द धीर ॥
गनपति ज्ञान समुद्र न लंघे
तुम गुन सिंधु गहीर ॥ हमारी ॥२॥
याद नहीं मैं विपति सही जो
धर धर अमित शरीर ॥
तुम गुन चितत नशत तथा भय
ज्यों घन चलत समीर ॥ हमारी० ॥३॥
कोटि बार की अरज यही है,
मैं दुख सहूँ अधीर ॥
हरहु वेदना फन्द 'दौल' की
कतर कर्म जंजीर ॥ हमारी ॥४॥

[२१]

राग–गौरी

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजे ।
राग द्वेष दावानल तें बचि समता रस में भीजे ।
हे जिन ॥१॥
परको त्याग अपनपो निज में लाग न कबहूँ छीजे ।
हे जिन ॥२॥

कर्म कर्मफल माहिं न राचै, ज्ञान सुधारस पीजे।
हे जिन० ॥३॥

मुझ कारज के तुम कारन वर अरज दौल की लीजे।
हे जिन० ॥४॥

[२५१]

राग—मालकोष

जिया जग धोखे की टाटी ॥

झूंठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निश दिन घाटी ॥१॥

जान बूझ कर अंध बने हो, आंखिन बांधी पाटी ॥२॥

निकल जायेंगे प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी ॥३॥

'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥४॥

[२५२]

राग—भैरवी

जिया तोहे समझायो सौ सौ बार ॥

देख सुगुरु की परहित में रति हित उपदेश सुनायो ॥१॥

विषय भुजंग सेय सुख पायो पुनि तिनसु लिपटायो।
स्वपद बिसार रच्यो परपद में, मदरत ज्यों बोरायो ॥२॥

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम चाख समामृत, जो नित सन्त सुहायो ॥३॥

अबहू समझ कठिन यह नरभव जिनवृष बिना गमायो।
ते बिलखे मणि डार उदधि में 'दौलत' को पछतायो ॥४॥

[२१३]

राग-मांढ

हमतो कबहु न निजघर आये
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराये।
परपद निजपद मान मगन ह्वै पर परणति लिपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कंद मनोहर चेतन भाव न भाये ॥१॥

नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतम गुण नहिं गाये ॥२॥

यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहू विषयन को सतगुरु वचन सुनाये ॥३॥

[२१४]

राग-मांढ

आज मैं परम पदारथ पायौ,
प्रभु चरनन चित लायौ ॥ आज ॥
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं,
सहज कल्पतरु छायो ॥ आज ॥ १ ॥

ज्ञान शक्ति तप ऐसी जाकी,
चेतन पद दरसायो ॥ आज० ॥ २ ॥
अष्ट कर्म रिपु जोधा जीते,
शिव अंकूर जमायो ॥ आज० ॥ ३ ॥

[२५५]

राग—मांढ

निपट अयाना, तैं आपा नहिं जाना,
नाहक भरम भुलाना वे ॥ निपट० ॥
पीय अनादि मोहमद मोह्यो,
पर पद मे निज माना वे ॥ निपट० ॥१॥
चेतन चिन्ह भिन्न जड़ता सो,
ज्ञान दरश रस साना वे ॥
तनमे छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यों,
जल मे कजदल माना वे ॥ निपट० ॥२॥
सकल भाव निज निज परनति मय,
कोई न होय बिराना वे ॥
तू दुखिया पर कृत्य मानि ज्यौं,
नभ ताडन श्रम ठाना वे ॥ निपट० ॥३॥
अजगन में हरि भूल अपनपो,
भयो दीन हैराना वे ॥

अबहु समझ कठिन यह नरभव जिनवृष बिना गमायो।
ते बिलखे मनि डार उदधि में 'दौलत' को पछतायो ॥४॥

[२५३]

राग–मांढ

हमतो कबहु न निजघर आये
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराये।
परपद निजपद मान मगन ह्वै पर परणति लिपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये ॥१॥

नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतम गुण नहिं गाये ॥२॥

यह बहु भूल भई हमरी फिर कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहू विषयन को सतगुरु वचन सुनाये ॥३॥

[२५४]

राग–मांढ

आज मैं परम पदारथ पायौ
प्रभु चरनन चित लायौ ॥ आज० ॥

अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं,
सहज कल्पतरु छायो ॥ आज ॥ १ ॥

दास सुगुरु सुनि सुनि निज में निज
पाय लह्यो सुख थाना वे ॥ निपट० ॥३॥

[२१६]

राग—जंगलो

अपनी सुधि भूलि आप आप दुख उपायौ।
ज्यौं शुक नभ चाल विसरि नलिनी लटकायो ॥
अपनी ॥

चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरश बोधमय विशुद्ध ।
तजि जड़ रस फरस रूप पुद्गल अपनायौ ॥
अपनी० ॥१॥

इन्द्रिय सुख दुख में नित्त पाग राग रूख में चित्त ।
दायक भव विपति वृन्द बन्ध को बढ़ायो ॥
अपनी० ।२।

चाह दाह दाहै, त्यागो न ताह चाहै ।
समता सुधा न गाहै जिन निकट जो बतायौ ॥
अपनी० ॥३॥

मानुष भव सुकुल पाय जिनवर शासन लहाय ।
दौल निज स्वभाव भज अनादि जो न ध्यायो ॥
अपनी ।४।

[२१७]

राग—टोडी

ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावै ।
सो फेर न भव में आवै ॥ ऐसा० ॥

संशय विभ्रम मोह विवर्जित, स्वपर स्वरूप लखावै ।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्म कलंक मिटावै ॥
ऐसा० ॥ १ ॥

भव तन भोग विरक्त होय मन, नग्न सुभेष बनावै ।
मोह विकार निवार निजातम अनुभव में चित लावै ॥
ऐसा० ॥ २ ॥

त्रस थावर वध त्याग सदा परमाद दशा छिटकावै ।
रागादिक वश झूठ न भाखै, तृणहू न अदत गहावै ॥
ऐसा० ॥ ३ ॥

बाहिर नारि त्यागि, अन्तर चिद्‌ब्रह्म सुलीन रहावै ॥
परम अकिंचन धर्मसार सो, द्विविधि प्रसंग बहावै ।
ऐसा० ॥ ४ ॥

पंच समिति त्रयगुप्ति पाल व्यवहार चरन मग धावै ।
निश्चय सकल कषाय रहित ह्वै शुद्धातम थिर थावै ॥
ऐसा० ॥ ५ ॥

कुंकुम पंक दास रिपु तृणमणि व्याल माल समभावै ।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म शुक्ल को ध्यावै ॥
ऐसा० ॥ ६ ॥

जाके सुख समाज की महिमा कहत इन्द्र अकुलावै ॥
'दौलत' तास पद होय दास सो अविचल ऋद्धि लहावै ।
ऐसा० ॥ ७ ॥

[२५८]

राग–सारग

आज म्हां तव शरन तिहारे ॥
तुम अनादि हनी था हमारी
नाथ करौं करुणा गुन धारे ॥ आज० ॥ १ ॥
डूबत हौं भव सागर मैं अब
तुम बिन को मोहि पार निकारे ॥ आज ॥ २ ॥
तुम सम देव अवर नहिं कोई
तातैं हम यह हाथ पसारे ॥ आज ॥ ३ ॥
मोसम अधम अनेक उधारे
बरनत हैं गुरु शास्त्र अपारे ॥ आज ॥ ४ ॥
'दौलत' को भवपार करो अब
आयो है शरनागत थारे ॥ आज ॥ ५ ॥

[२५९]

राग–सारग

नाथ मोहि तारत क्यौं ना क्या तकसीर हमारी ॥
अञ्जन चोर महा अघ करता सप्त विसन का धारी ।
वो ही मर सुरलोक गये हैं बाकी कछु न विचारी ॥
नाथ० ॥ १ ॥

शूकर सिंह नकुल वानर से, कौन कौन व्रतधारी ।
तिनकी करनी कछु न विचारी, वे भी भये सुर भारी ॥
नाथ० ॥ २ ॥

अष्ट कर्म बैरी पूरब के इन मो करी खुवारी ।
दर्शन ज्ञान रतन हर लीने, दीने महादुख भारी ॥
नाथ० ॥ ३ ॥

अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुधि न बिसारी ।
दौलतदास खडा कर जोरे, तुम दाता मैं भिखारी ॥
नाथ० ॥ ४ ॥

[२६०]

राग-सारंग

नेमि प्रभू की श्याम बरन छवि, नैनन छाय रही ॥
मणिमय तीन पीठ पर अंबुज, तापर अधर ठही ॥
नेमि० ॥ १ ॥

मार मार तप धार जार विधि, केवल ऋद्धि लही ।
चारतीस अतिशय दुतिमडित नवदुग दोष नहीं ॥
नेमि० ॥ २ ॥

जाहि सुरासर नमत सतत, मस्तक तैं परस मही ।
सुरगुरु उर अम्बुज प्रफुलावन, अद्भुत भान सही ॥
नेमि० ॥ ३ ॥

धर अनुराग विलोकत जाको दुरित नसै सब ही।
'दौलत' महिमा अतुल जासकी का पै जाय कही॥
नेमि ॥ ४ ॥
[२६१]

राग—मांढ

हम तो कबहु न निज गुन भाये॥
तन निज मान जान तन दुख सुख में बिलखे हरखाये।
हम तो० ॥ १ ॥

तन को गलन मरन लखि तनको धरन मान हम जाये।
या भ्रम भौंर परे भव जल चिर चहुँ गति बिपति लहाये॥
हम तो० ॥ २ ॥

दरश बोधमय सुधा न चाख्यौ, विविध विषय विष खाये।
सुगुरु दयाल सीख दई पुनि पुनि सुनि सुनि उर नहिं लाये॥
हम तो ॥ ३ ॥

बहिरातमता तजी न अन्तर दृष्टि न ह्वै निज ध्याये।
धाम काम धनरामा की नित आश हुताश जलाये॥
हम तो० ॥ ४ ॥

अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी सब सुख मय मुनिगाये।
दौल चिदानन्द स्वगुन मगन जे ते जियसुखिया थाये॥
हम तो० ॥ ५ ॥
[२६२]

राग–मांढ

हे नर, भ्रमनींद क्यों न छाडत दुखदाई ॥
सेवत चिरकाल सोज, आपनी ठगाई ॥
हे नर० ॥

मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहिं मर्म लहा।
लागै दुख ज्वाल की न, देह कै तताई ॥
हे नर० ॥१॥

जम के रव बाजते, सुभैरव अति गाजते।
अनेक प्रान त्याग ते, सुनै कहा न भाई ॥
हे नर० ॥२॥

पर को अपनाय आप रूप को भुलाय (हाय)।
करन विषय दारु जार, चाह दौ बढाई ॥
हे नर० ॥३॥

अब सुन जिनवानि रागद्वेष को जघान।
मोक्ष रूप निज पिछान 'दौल' भज विरागताई ॥
हे नर० ॥४॥

[२६३]

राग–सारंग

चेतन यह बुधि कौन सयानी।
कही सुगुरु हित सीख न मानी ॥

कठिन काकताली ज्यौं पायौ।
नरभव सुकुल श्रवन जिनवानी॥
चेतन०॥१॥

भूमि न होत चांदनी की ज्यौं।
त्यौं नहिं धनी ज्ञेय को ज्ञानी॥
वस्तु रूप यौं तू यौं ही शठ।
हटकर पकरत सोंज विरानी॥
चेतन॥२॥

ज्ञानी होय अज्ञान राग रूप कर।
निज सहज स्वच्छता हानी॥
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन।
तहां अनिष्ट इष्टता ठानी॥
चेतन॥३॥

चाहै सुख दुख ही अवगाहै।
अब सुनि विधि जो है सुखदानी॥
देखि आप करि आप-आप मैं।
ध्याय ध्याय लय समरस सानी॥
चेतन॥४॥

[२६४]

राग—उम्माज जोगी रासा

मत कीज्यो जी यारी घिनगेह देह जड़ जान कै।

मात तात रज वीरजसों यह, उपजी मल फुलवारी।
अस्थिमाल पल नसा जालकी, लाल लाल जलक्यारी ॥१॥
करमकुरंग थली पुतली यह, मूत्रपुरीष भंडारी।
चर्ममंडी रिपुकर्म घड़ी धन, धर्म चुरावनहारी ॥२॥
जे जे पावन वस्तु जगत में, ते इन सर्व बिगारी।
स्वेद मेद कफ क्लेदमयी बहु, मदगदव्याल पिटारी ॥३॥
जा संयोग रोगभव तौलों, जा वियोग शिवकारी।
बुध तासों न ममत्व करैं यह, मूढमतिनको प्यारी ॥४॥
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी।
जिन तप ठान ध्यानकर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥५॥
सुरधनु शरदजलद जलबुदबुद, त्यों झट विनशनहारी।
यातैं भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी ॥६॥

[२६५]

राग-मांढ

जीव तू अनादि ही तैं भूल्यौ शिव गैलवा ॥ जीव० ॥
मोहमद वार पियौ, स्वपद विसार दियौ,
पर अपनाय लियौ, इन्द्रिय सुख में रचियौ,
भव तैं न भियौ न तजियो मन मैलवा ॥ जीव० ॥१॥
मिथ्या ज्ञान आचरन, धरिकर कुमरन,
तीन लोक की धरन, तामें कियो है फिरन,
पायो न शरन, न लहायौ सुख शैलवा ॥ जीव० ॥२॥
अब नर भव पायो, सुथल सुकुल आयौ

जिन स्वपरेरा मायी [illegible] [illegible] चिटकायी
पर-परनति दुखदायिनी चुरैलया ॥ जीव० ॥३॥

[२६६]

राग-माढ

कुमति कुनारि नहीं है भली रे,
सुमति नारि सुन्दर गुनवाली ॥
कुमति ॥

वासौं विरचि रचौ नित यासौं
जो पावो शिवधाम गली रे ॥
वह कुबजा दुखदा यह राधा
बाधा टारन करन रली रे ॥
कुमति० ॥१॥

वह कारी परसौं रति ठानत
मानत नाहिं न सीख भली रे ॥
यह गोरी चिद्गुण सहचारिन
रमत सदा स्वसमाधि थली रे ॥
कुमति ॥२॥

या संग कुथल कुयोनि बस्यो नित
तहाँ महादुख बेल फली रे ॥
या संग रसिक भविन की निज में

परनति दौल भई न चली रे ॥
कुमति० ॥३॥
[२६७]

राग–मांढ

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर थारो शुभ थान ।
लख चौरासी में वहु भटके, लह्यो न सुखरो लेश ॥१॥
मिथ्या रूप धरे वहुतेरे भटके वहुत विदेश ॥२॥
विषयादिक से वहु दुख पाये, भुगते वहुत कलेश ॥३॥
भयो तिर्यंच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेष ॥४॥
'दौलत राम' तोड जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश ॥५॥

[२६८]

राग–सारंग

चेतन तैं यों ही भ्रम ठान्यो,
ज्यों मृग मृग-तृष्णा जल जान्यो ॥
ज्यौं निशि तम मैं निरख जेवरी,
भुजग मान नर भय उर मान्यो ॥ चेतन० ॥१॥
ज्यों कुध्यान वश महिप मान निज,
फसि नर उरमाही अकुलान्यो ।
त्यौं चिर मोह अविद्या पेरयो,
तेरों तैं ही रूप भुलान्यो ॥ चेतन० ॥ २ ॥

तोष तजत ज्यों रुष म तन को
उपजत खपत में सुख दुख मान्यो।
पुनि परभावन को करता ह्वै
तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
नरभव सुथल सुकुल जिनवाणी
काल लब्धि बल जोग मिलान्यो।
'दौल' सहज भज उदासीनता
तोष-रोष दुखकोष जु मान्यो ॥ चेतन ॥ ४ ॥
[२६६]

राग-जोगी रासा

चिरदाय गुन सुनो सुनो प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव हो स्वकीय में थिरा ॥
निज भाव के लखाव बिन भवाब्धि में परा।
जामन मरन जरा त्रिदोष अग्नि में जरा ॥
चिर० ॥ १ ॥
फिर सादि और अनादि दो निगोद में परा।
जहँ अंक के असंख्य भाग ज्ञान ऊबरा ॥
चिर० ॥ २ ॥
तहाँ भव अन्तर मुहूर्त के कहे गनेसरा।
छ्यासठ सहस त्रिशत छत्तीस जन्म धर मरा ॥
चिर० ॥ ३ ॥

यौं वशि अनन्त काल फिर तहा तैं नीसरा ।
भूजल अनिल अनल प्रतेक तरु मे तन धरा ॥
चिद० ॥ ४ ॥

अनु घरीसु कुंथु कानमच्छ अवतरा ।
जल थल खचर कुनर नरक असुर उपजमरा ॥
चिद० ॥ ५ ॥

अवके सुथल सुकुल सुसंग वोध लहि खरा ।
दौलत त्रिरत्न साध लाध पद अनुत्तरा ॥
चिद० ॥ ६ ॥

[२७०]

राग-सारंग

आतम रूप अनुपम अद्भुत,
याहि लखैं भव सिंधु तरो ॥ आतम० ।
अल्प काल में भरत चक्रधर,
निज आतम को ध्याय खरो ।
केवलज्ञान पाय भवि वोधे,
तत छिन पायौ लोक सिरो ॥ आतम० ॥१॥
या विन समुझे द्रव्य लिंग मुनि,
उग्र तपन कर भार भरो ।
नव ग्रीवक पर्यन्त जाय चिर,
फेर भवार्णव माहि परो ॥ आतम० ॥ २ ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप
येहि जगत में सार नरो।
पूरव शिव को गये जाहि अब
फिर जै हैं यह नियत करो ॥ आतम० ।३।

कोटि ग्रन्थ को सार यही है
ये ही जिनवानी उचरो ।
'दौल' ध्याय अपने आतम को
मुक्ति-रमा तब वेग वरो ॥ आतम० ॥ ४ ॥

[२७१]

राग-सोरठ

आपा नहीं जाना तूने कैसा ज्ञाता धारी रे ॥
देहाश्रित कर क्रिया आपको मानत शिव-मगचारी रे ॥
आपा ॥ १ ॥
निजनिवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ॥
आपा० ॥ २ ॥
शिव चाहे तो द्विविध धर्म तैं कर निज परणति न्यारी रे ॥
आपा ॥ ३ ॥
'दौलत' जिन जिन भाव पिछान्यो तिन भव विपति विदारी रे ॥
आपा ॥ ४ ॥

[२७२]

राग—सारंग

निज हित कारज करना रे भाई,
निज हित कारज करना ॥
जनम मरन दुख पावत जातैं,
सो विधि बंध कतरना ॥ निज० ॥ १ ॥
ज्ञान दरस अरु राग फरस रस,
निज पर चिह्न समरना ।
सन्धि भेद बुधि-छैनी तैं कर,
निज गहि पर परिहरना ॥ निज० ॥ २ ॥
परिग्रही अपराधी शंकै,
त्यागी अभय विचरना ।
त्यौं परचाह बंध दुखदायक,
त्यागत सब सुख भरना ॥ निज० ॥ ३ ॥
जो भव भ्रमन न चाहे तो अब,
सुगुरु सीख उर धरना ।
दौलत स्वरस सुधारस चाख्यो,
ज्यों विनसै भवमरना ॥ निज० ॥ ४ ॥

[२७३]

राग—आसावरी

चेतन कौन अनीति गही रे,
न मानैं सुगुरु कही रे ॥ चेतन० ॥

जिन विषयन वश बहु दुख पायो
तिन सौं प्रीति ठही रे ॥ चेतन० ॥ १ ॥

चिन्मय है देहादि जड़नि सों
तो मति पाग रही रे।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज
तिनकों गहत नहीं रे ॥ चेतन० ॥ २ ॥

जिन वृष पाय विहाय राग रुष
निज हित हेत यही रे।
दौलत जिन यह सीख धरी उर
तिन शिव सहज लही रे ॥ चेतन ॥ ३ ॥

[२७४]

राग—जोगी रासा

छांडत क्यों नहिं रे हे नर! रीति अयानी।
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आना कानी ॥ छांडत० ॥

विषय न तजत न भजत बोध व्रत
दुख सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं घृत
हेत विलोवत पानी ॥ छांडत ॥ १ ॥

तन धन सदन स्वजन जन तुझसौं
ये परजाय विरानी।

उन परिनमन विनस उपजन सौं,
तैं दुख सुख कर मानी ॥ छांडत ॥ २ ॥
इस अज्ञान तैं चिर दुख पाये,
तिनकी अकथ कहानी ।
ताको तज दृग-ज्ञान चरन भज,
निज परणति शिवदानी ॥ छाडत० ॥ ३ ॥
यह दुर्लभ नरभव-सुसंग लहि,
तत्त्व लखावन वानी ।
दौल न कर अब परमें ममता,
धर समता सुखदानी ॥ छाडत० ॥ ४ ॥
[२७५]

राग—जोगी रासा

जानत क्यों नहि रे, हे नर आतम ज्ञानी ॥ जानत० ॥
राग-दोष पुद्गल की सपति,
निश्चै शुद्ध निशानी ॥ जानत० ॥ १ ॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में,
यह पर जाय थिरानी ।
सिद्ध सरुप सदा अविनाशी,
मानत विरले प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु-शिष कौन कहानी ।

जनम मरन मल रहित विमल है
कीच बिना जिम पानी ॥ आनत० ॥ ३ ॥

सार पदारथ है तिहुं जगमें
नहिं क्रोधी नहिं मानी ।
दौलत सो घट माँहि विराजै
लखि हूजै शिवथानी ॥ आनत ॥ ४ ॥

[२७६]

राग—जोगी रासा

मानत क्यों नहिं रे, हे नर सीख सयानी ॥
भयो अचेत मोह मद पीके अपनी सुध बिसरानी ॥
मानत० ॥ १ ॥

दुखी अनादि कुबोध अव्रत तैं फिर तिनसौं रति ठानी ।
ज्ञान सुधा निज भाव न चाख्यो पर परनति मति सानी ॥
मानत० ॥ २ ॥

भव असारता लखै न क्यों यह, नृप ह्वै कृमि विट थानी ।
सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु दुखिया हरि से प्रानी ॥
मानत ॥ ३ ॥

देह एह गदगेह नेह इस है, बहु विपति निशानी ।
जड़ मलीन छिन छीन करम कृत बन्धन शिव सुखहानी ॥
मानत ॥ ४ ॥

चाह ज्वलन ई धन विधि वनघन, आकुलता कुलखानी।
ज्ञान सुधा सर शोषन रवि ये; विषय अमित मृतु दानी॥
मानत० ॥ ५ ॥

यौं लखि भवतन भोग विरचि करि, निज हित सुन जिनवानी।
तज रुप-राग 'दौल' अब अवसर, यह जिन चन्द्र वखानी॥
मानत० ॥ ६ ॥

[२७७]

राग-दरबारी कान्हरा

घडी घड़ी पलपल छिनछिन निशदिन,
प्रभुजी का सुमिरन करले रे।
प्रभु सुमिरें तें पाप कटत हैं,
जन्म-मरण दुख हरले रे॥
मन वच काय लगाय चरण चित,
ज्ञान हिये विच धरले रे॥
'दौलतराम' धरम नौका चढ,
भव सागर से तिरले रे॥

[२७८]

राग-उभाज जोगी रासा

मत कीज्यौ जी यारी ये भोग भुजंग सम जान के॥
मत कीज्यौ जी० ॥

भुजंग डसत इकबार नसत है, ये अनन्त मृतुकारी।
तिसना-तृषा बढ़ै इन सेये, ज्यौं पीये जल खारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ १ ॥

रोग वियोग शोक वन को घन, समता-लता कुठारी।
केहरि करी-अरी न देत ज्यों, त्यौं ये दें दुख भारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ २ ॥

इनमें रचे देव तरु थाये, पाये श्वभ्र मुरारी।
जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी॥
मत कीज्यौ जी ॥ ३ ॥

पराधीन छिन मांहि छीन है, पाप बंध करतारी।
इन्हें गिनैं सुख आक मांहि तिन, आम्रतनी बुधिधारी॥
मत कीज्यौ जी ॥ ४ ॥

मीन मतंग पतंग भृंग मृग, इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यौं किंपाक ललित, परिपाक समय दुखकारी॥
मत कीज्यौ जी ॥ ५ ॥

सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, ज्यौं पावै शिव नारी॥
मत कीज्यौ जी० ॥ ६ ॥

राग-काफी होरी

छांडि दे या बुधि भोरी, वृथा तन से रति जोरी ॥
यह पर है न रहे थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी।
यासों ममता कर अनादितैं, बंधो करम की डोरी ।
सहै दुख जलधि हिलोरी, छांडि दे या बुधि भोरी ॥ १ ॥
यह जड है तू चेतन यों ही अपनावत बरजोरी ।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरण निधि ये है सपत तोरी।
सदा विलसी शिवगोरी, छांडि दे या बुधि भोरी ॥ २ ॥
सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी।
'दौल' सीख यह लीजे पीजे, ज्ञानपियूष कटोरी ॥
मिटै पर चाह कठोरी, छांडदे या बुधि भोरी ॥ ३ ॥

[२८०]

राग—जोगी रासा

चित चिन्त कैं चिदेश कब, अशेष पर वमूं ।
दुखदा अपार विधि दुचार की चमूं दमूं ॥
चित० ॥ ० ॥
तजि पुण्य पाप थाप आप, आप मे रमूं ।
कब राग-आग शर्मबाग, दागिनी शमूं ॥
चित० ॥ १ ॥
दृग ज्ञान भान तैं मिथ्या अज्ञान तम दमूं ।
कब सर्व जीव प्राणि भूत, सत्त्व सौं छमूं ॥
चित० ॥ २ ॥

अब मस्त शिव-कस सुख सुखस्स परिनमू ।
गुरु के त्रिरास्त मस्त का मटस्स पद पमू ॥
चित ॥ ३ ॥

कब ध्याय भव भमर को फिर न भव विपिन भमू ।
जिन पुर कील दौल को पद देव हीं नमू ॥
चित ॥ ४ ॥

[२८१]

राग–होरी

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ॥
मन मिरदंग साज करि त्यारी तन को तमूरा बनोरी ।
सुमति सुरंग सारंगी बजाई ताल दोउ कर जोरी ॥
राग पाँचों पद कोरी ॥ मेरो मन ॥ १ ॥
समकित रूप नीर भरि झारी करुना केशर घोरी ।
ज्ञानमई ले कर पिचकारी दोउ कर मांहि सम्हारी ॥
इन्द्री पाँचों सखि बोरी ॥ मेरो मन ॥ २ ॥
चतुरदान को है गुलाल सो भरि भरि मूठ चलोरी ।
तप मेवा की भरि निज झोरी यश को अबीर उड़ोरी ॥ ३ ॥
रंग जिन धाम मचोरी ॥ मेरो मन ॥ ३ ॥
दौलत बाल खेलें अस होरी, भव भव दुख टलोरी ।
शरना ले इक श्री जिन को री जग में लाज हो तोरी ॥
मिले फगुआ शिव होरी ॥ मेरो मन ॥ ४ ॥

[२८२]

छत्रपति

(संवत् १८७२-१६२५)

छत्रपति १६वीं शताब्दी के कवि थे। ये आवागढ के निवासी थे। इनकी मुख्य रचनाओं में 'कृपण जगावन चरित्र' पहिले ही प्रकाश में आ चुका है इसमें महाकवि तुलसीदास के समकालीन कवि ब्रह्म गुलाल के चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। अभी इनकी 'मनमोहन पचशती' नाम की एक कृति उपलब्ध हुई है। इसमें ५१२ पद्य हैं जिनमें सवैय्या, दोहा, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। रचना में कवि की स्फुट रचनाओं का संग्रह है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि के १६० से भी अधिक हिंदी पद उपलब्ध हो चुके हैं। सभी पद भाव भाषा एव शैली की दृष्टि

से उच्चस्तर के हैं। पदों की भाषा कहीं कहीं क्लिष्ट अवश्य हो गयी है लेकिन उससे पदों की मधुरता कम नहीं हो सकी है। कवि के पदों में आत्मा परमात्मा एवं संसार दशा का अच्छा वर्णन मिलता है। कवि गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करते थे। अपनी कमाई का अधिकांश भाग दान में दे देना तथा शेष समय में आत्म चिन्तन एवं मनन करते रहना ही इनके जीवन का कार्यक्रम था। सन्तोष एवं त्याग के भाव उनके पदों में स्पष्ट रूप में मिलते हैं। इन पदों के पढ़ने से आत्मानुभूति होने लगती है तथा पाठक का मन स्वत ही आध्यात्म की ओर मुड़ने लगता है।

राग–जिलौ

अरे बुढापे तो समान अरि,
कौन हमारे सरवसु हारी ॥
आवत बार हार सम कीने,
दसन तोडि द्रग तेज निवारी ॥ अरे० ॥ १ ॥
किये शिथिल जुग जानु चलत,
थर हरत श्रवन निज प्रकृति विसारी ।
सूखो रुधिर मास रस सारो,
भई विरूप काय भय भारी ॥ अरे० ॥ २ ॥
मद अगनि उर चाह अधिकता,
भखत असन नहि पचत लगारी ।
वालावाल न कान करें हसि,
करें स्वास कफ विथा करारी ॥ अरे० ॥ ३ ॥
पूरव सुगुरु कही परभव का,
वीज करौ यह हिये न धारी ।
अब क्या होय 'छत्त' पछितायै,
भयी काय जम मुख तरकारी ॥ अरे० ॥ ४ ॥

[२८३]

राग–जिलौ

अन्तर त्याग विना वाहिज का,
त्याग सुहित साधक नहि क्यो ही ।

बाहिज त्याग होत अन्तर में,
त्याग होय नहिं होय सु योंही ॥
जो विधि साम रचे बिन बाहिज
साधन करत कबहु न सीझे।
बाहिज करन तें करन की
उत्पति होय न होय कभी जी ॥ अन्त ॥ १ ॥
देखन आनन तें साधन बिन,
मुहित सबे नहिं केस सहीजे।
अथ गुन जो देखत आनत
गमन बिना नहिं पुरुष सहीजे ॥ अन्त ॥ २ ॥
यों साधन बिन साध्य भरम लखि
साधन किये मोति बिन कीजे ।
उदर भाये गास बनाये
पेट भरे नहिं रसना भीजे ॥ अन्त ॥ ३ ॥

[२८४]

राग-लावनी

अरे नर चिरता क्यों न गहे ॥
बिगरत काज पड़त सिर आपति
समरहिं क्यों न सहे ॥ अरे ॥ १ ॥
मोक्ष करत नहिं काम सयाने
तन मन ध्यान दहे ।

उपजत पाप हरत सुख विगरत,
परभव बुध न चहै ॥ अरे० ॥ २ ॥
जो जिन लिखी सुभासुभ जैसी,
तैसी होय रहै ।
तिल तुष मात्र न होय विपरजै,
जाति सुभाव वहै ॥ अरे० ॥ ३ ॥
छत्तर न्याय उपाय हिये दिढ,
भगवत भजन लहै ।
तौ कितेक दुख बहु सुख प्रापति,
यो जिन वाणि कहै ॥ अरे० ॥ ४ ॥
[२८५]

राग—जोगी रासा

आज नेम जिन वदन विलोकत,
विरह व्यथा सब दूर गई जी ॥
चदन चंद समीर नीर तैं,
अधिक शान्तिता हिये भई जी ॥ आज० ॥ १ ॥
भव तन भोग रोग सम जानें,
प्रभु सम हो न उमगमई जी ॥ आज० । २ ॥
'छत्त' सराहत भाग्य आपनो,
राजमति प्रति बोध भई जी ॥ आज० ॥ ३ ॥
[२८६]

बाहिज त्याग होय अन्तर में,
त्याग होय नहिं होय सु योंही ॥
ज्यों विधि काम करे बिन बाहिज
साधन करते काज न सीजे।
बाहिज कारन तें कारज की
उत्पति होय न होय कभी जे ॥ अन्त ॥ १ ॥
देखन जानन तें साधन बिन
सुहित सधे नहिं चैन लहीजे।
पथ सुन जो देखत जानत
गमन बिना नहिं सुथल लहीजे ॥ अन्त ॥ २ ॥
यों साधन बिन साध्य अलभ लखि
साधन किये प्रीति किन कीजे।
ऊपर ओढे गात बचावे
पेट भरे नहिं रसना भींजे ॥ अन्त० ॥ ३ ॥

[२८४]

राग—लावनी

अरे नर थिरता क्यों न गहे ॥
बिगरत काज पड़त सिर आपति
समता क्यों न गहे ॥ अरे ॥ १ ॥
सोच करत नहिं काम सयाने
तन मन ग्लान दहै ।

उपजत पाप हरत सुख बिगरत,
परमव बुध न गहै ॥ अरे० ॥ २ ॥
जो जिन लिखी सुभासुभ जैसी,
तैसी होय रहै ।
तिल तुष मात्र न होय विपरजै,
जाति सुभाव वहै ॥ अरे० ॥ ३ ॥
छत्तर न्याय उपाय हिये दिढ,
भगवत भजन लहै ।
तौ किनेक दुख बहु सुख प्रापति,
यो जिन वाणि कहै ॥ अरे० ॥ ४ ॥
[२८५]

राग—जोगी रासा

आज नेम जिन वदन विलोकत,
विरह व्यथा सब दूर गई जी ।
चंदन चद समीर नीर तैं,
अधिक शान्तिता हिये भई जी ॥ आज० ॥ १ ॥
भव तन भोग रोग सम जानें,
प्रभु सम हो न उमगमई जी ॥ आज० । २ ॥
'छत्त' सराहत भाग्य आपनो,
राजमति प्रति बोध भई जी ॥ आज० ॥ ३ ॥
[२८६]

राग-जिलौ

आतम ध्यान भास परकासत
पर उत्साह दशा बिसरती ।
सुगुन कंज मन मोद बधावति
परम मरालि सुधाझरि झरती ॥

मरम बोध विधि आगम कारन
मन वच काय क्रिया चुप करती ।
तन तें भिन्न अपनपो आनिति,
राग-द्वेष संतति अपहरती ॥ आतम० ॥ १ ॥

जो अभेद अविकल्प अनूपम
चिन्ताभावना सो नहिं टरती ।
वर्तमान निबंध पुराकृत
कर्म निर्जरा फल करि फरती ॥ आतम० ॥ २ ॥

जहाँ न चंद सूर सुख मन गति
सुथिर भई सरवांग उपरती ।
'चंद' भास भरि हिये वास करि
निज महिमा सुहाग सिर धरती ॥ आतम ॥ ३ ॥

मधुपाई ज्यों विसरि अपन पौ
है अचेत चिरसोया रे ॥ न सुखिय० ॥ १ ॥
राग विरोध मोह आपने
मानि पिये रस मोया ।
इष्ट समागम में सुखिया है
बिछुरत द्रग भर रोया रे ॥ न सुखिय ॥ २ ॥
पाट कीट ज्यों आप आप करि,
भयो सहज सब खोया ।
बहु संकल्प विकल्प जाल फँसि
ममता मेल न धोया रे ॥ न सुखिय ॥ ३ ॥
वीतराग विज्ञान भाव निज
सो न कबे ही टोया ।
बहु सुख साधन 'बुध' परमपद
समरस बीज न बोया रे ॥ न सुखिय ॥ ४ ॥
[२८६]

राग-जिलो

इक तें एक अनेक भेद बहु,
रूप गुमन करि अधिक विराजे ।
कौन कौन की चाह करे तू,
कौन कौन तुम संग समाजे ॥
सब निज निज परमाम रूप

परनमत अन्यथा भाव न साजे ।
पुन्य पाप अनुसार सबनिका,
होत समागम सुख दुख पाजे ॥ इक० ॥ १ ॥
जग जन तन सपरस अवलोकन,
करि करि सुख मानें डरि भाजे ।
यह अग्यान प्रभाव प्रगट गुरु,
करत निवेदन जन हित काजे ॥ इक० ॥ २ ॥
पर रस मिलै कदापि न अपमें,
जो जल जलज दलनि थितिकाजे ।
'छत्त' आप केवल-ग्यायक ही,
है वरतैं विधि वध निवाजै ॥ इक० ॥ ३ ॥

[२६०]

राग-सोरठ

उन मारग लागौ रे जियारा,
कौन भांति सुख होय ॥
विपयासक्त लालची गुरु का,
वहकाया भयौ तोय ।
हिंसा धरम विषै रुचि मानी,
दया न जानै कोइ ॥ उन० ॥ १ ॥
इस भव साधन माहि फंसौ नित,
आगम चिन्ता खोय ।

मधुरा बाचे सबै नहिं निजहित
जो मधुपाई खोवे ॥ चन० ॥ २ ॥
जो इस समै 'बुध' नाहिं सुमरे
धर्म न धारै कोई ।
मधुमाखी ज्यों मुग करि मीडे
पाछे पछताना होय ॥ चन० ॥ ३ ॥

[२६१]

राग-जिलो

करि करि ज्ञान ध्यान नरे नर,
निज आतम अनुभव रस धारा ।
धारि अनर्थ माहिं क्यों खोवत
आयु दिवस हितकारा ॥
तन में बसत मिलत नहीं तन सों
जो सब गुन लेत दिस न्यारा ।
चेतन आनत आप आपके
गुण परजाय अथाह अपारा ॥ करि० ॥ १ ॥
निरखें निरविकार निराभास
आनन्द रूप अनूप अपारा ।
अपनी भूल भली पर बस है
भलो समझकर समझ अपारा ॥ करि० ॥ २ ॥
सुख के धान होय सुख भाई

अ व न लागत कठ मझारा ।
तजि विकलप करि थिर चित इतमें,
'छत्त' होय सहजै निसतारा ॥ करि० ॥
[२६२]

राग-झंझौटी

क्या सूझी रे जिय थाने ।
जो आपा आप न जाने ॥
येक छेम अवगाह संजोगे,
तन ही को निज माने ॥ क्या० ॥ १ ॥
तू न फरस रस सुरभ वरन,
जड तन इन मई न आने ।
उपजत नसत गलत पूरित निस,
सुध्रुव सदा सयाने ॥ क्या० ॥ २ ॥
जो कोई जन खाई धतूरा,
तिन कल धौत बखानै ।
चिर अग्यान थकी भ्रम भूला,
विषयनि में चित साने ॥ क्या० ॥ ३ ॥
चाह दाह दाझ्यो न सिराये,
पिये न बोध सुधाने ।
'छत्तर' कौन भाति सुख होवै,
बडा अदेशा म्हाने ॥ क्या० ॥ ४ ॥
[२६३]

राग–जगलो

म्हारा वर जिन बाई बाग में रमत,
दृढ़ मिल्यो चिद्रूप पुद्गल पसारी।
सुगुन पुष्पधारि सुख सुरभ बिसमें भरी
खोलि हिये नैन के निहारी ॥

भेद विज्ञान सुम सुंदर निज साम ले
जानि शुभ जाति फल कमन सारी।
ठीकड़ी सहित दिढ धारि परतीति सब
मन में सब सिधि रीझ धारी ॥ म्हा० ॥ १ ॥

सील सतगुण बेला चमेली भली
त्याग तप के जरी केवड़ा प्यारी।
ध्यान वैराग मचकुन्द चंपा जिसा
सेवती क्षमा निज पर सम्हारी ॥ म्हा ॥ २ ॥

धैर्य साहस गुलाब जुही मोगरा
साम्य गुण मोतिया सुरम धारी।
'ज्ञात' भव वार हर परम विश्राम धर
रहो अनवरत सद्गुरु उचारी ॥ म्हा० ॥ ३ ॥

राग-जिलौ

कहू कहा जिनमत परमत में ।
अन्तर रहस भेद यहभारी ॥
अनेकान्त एकातवाद रस ।
पीवत छकत न वुध अविचारी ॥
करता काल सुभाव देव इम ।
निज निज पछि तने अधिकारी ॥
अनित्य नित्य विधि वरने ।
इटतें लोपत परविधि सारी ॥ कहू० ॥१॥
द्रगन अ ध जन जो गज तन गहि ।
निज निज वातैं करें करारी ।
मिटत विरोध नही आपस का ।
क्यों करि सुखि होय ससारी ॥२॥
स्यादवाद विद्या प्रमाण नय ।
सत्य सरूप प्रकाशन हारी ॥
गुरु मुख उदै भइ जाके घट ।
छत्त यही पण्डित सुखधारी ॥३॥
[२९५]

राग-विलावल

जगत गुरु तुम जयवत प्रवरतौ ।
तुम या जग में असम पदारथ, ॥
सारत स्वारथ सरतौ ॥

स्वपर प्रकाशक जिन श्रुत दीपक।
पाइ अध अधिकाई ॥
औरनि को हित पथ दरसावत।
आप परे अध खाई ॥ जग० ॥ २ ॥
जिन आयस सरधान सर्वथा।
क्रिया शक्ति समगाई ॥
सो न ऊच पद धारि नीचकृति।
करत न मूढ लजाई ॥ जग० ॥ ३ ॥
जिनकी द्रिष्टि सुहित साधनपै।
तें सदवृत्य धराई ॥
धरम आसरे 'छत्त' जीवका।
कोंन गुरु फरमाई ॥ जग० ॥ ४ ॥

[२६७]

राग–सोरठ

जाको जपि जपि सब दुख दूरि होत वीरा।
उस प्रभु को नित ध्याऊ रे ॥
दोष आवरन गत, दायक शिव पथ।
तारन तरन स्वभाऊ रे ॥
जाको० ॥ १ ॥
ज्ञान द्रग धारी सुबल सुख भारी।
अतिशय संहित लखाउ रे ॥
जाको० ॥ २ ॥

मोह मद भोग्य भूरि दिन खोया।
अब सदा भव दाव रे ॥
बाम्हे० ॥४॥
[२६८]

राग—झंझोटी

जिनवर तुम भव पार लगाइयो ॥
विधि वस भयो फंसी भवकानन ।
तुम मग भूलिन गहियो ॥ जिन० ॥ १ ॥
शिशुपन इष्ट प्यार शिशुगन मैं-
खेलत त्रिपथि न चाहियो ॥
जोबन काम धाम विषयन वस।
नेमत पेख सिवाहियो ॥ २ ॥
वृद्ध भये इन्द्रिय निज करन-
करन समरथ न रहियो ॥
और अनेक भाँति रोगन की।
वेदन सब दुख सहियो ॥ जिन० ॥ ३ ॥
तुम प्रभु सीख सुनो बहुदिन सो।
सो सब गोचर भइयो ॥
अब भावना करो समर्पित।
निज सेवक सरनहियो ॥ जिन ॥ ४ ॥
[२६९]

राग-जिलौ

जे सठ निज पद जोग्य किया तजि ।
अन्य विशेष क्रिया मनमानें ॥
ते सममूल छेद लघु दीरघ ।
माल रच्या मन की विधि ठानें ॥

जो सम भग मन्यत भेषज कों ।
पथि व्याधि यह ज्ञान न आनें ॥
त्यों जिन आगम बाहिज साधन ।
तीव्र कषाय कबहु नहि जानें ॥ जे० ॥१॥

जिन आयस सरधान एक ही ।
त्यों सुदृढ दायक सुरथानें ॥
तौ पर किया साथ साधन को ।
क्यों न लहैं जिन सम प्रभुतानें ॥ जे० २॥॥

जातें श्रुत सरधान सदा करौ ।
क्रिया रूप थल पहिचानें ॥
'छत्र' जीवका लोक बडाई-
माहि, कहा हित लखौ सयाने ॥ जे० ॥३॥

[३००]

राग–जिलो

जो कृषि साधन करत बीज बिन
बोये धान्य काम नहिं होई ।
त्यों पद योग्य क्रिया बिन पुस्तक,
जैन मत मुनि शिव काम न होई ॥

केवल भेष अनेक प्रभुता वश
धरम हास्य हस्थानक सोई ॥
मृत विचार उपवास आदि तप,
उदर भरन साधन अवलोई ॥
जो ॥१॥

जिन आगम अनुकूल गुण भी
निरपेक्ष शुभ साधन जोई ॥
बहु गुण पिंड साम्य–रस–पूरन,
साधे सुहित अहित सब खोई ॥
जो ॥२॥

प्रभुता सुजस मान पोषन के,
हेतु आचरै परम होई ।
भव दुख नासक शिव सुख साधन
'आप' आचरौ सम सब जोई ॥
जो० ॥३॥

[३०१]

राग-जिलौ

जो भवतव्य लखी भगवत,
सु होय वही न अन्यथा होही ॥
यह सति वज्र-रेख ज्यों अविचल,
यादि विकल्प करै जन यों ही ॥
जे पूरव कृत कर्म शुभाशुभ,
तास उदै फल सुख दुख होई ॥
सो अनिवार निवारन समरथ,
हूओ, न है, न होइगो कोई ॥ जो० ॥१॥
मत्र जत्र मनि भेषजादि बहु,
है उपाय त्रिभुवन में जोई ॥
सो सब साध्य काज को साधन,
असाध्य साधे नहि सोई ॥ जो० ॥२॥
जातें सुख दुखरु जू होत नहि,
हरप विषाद करो भवि लोई ॥
वरतमान भावी सुख साधन,
'छत्त' धरम सेवौ द्रिढ होई ॥ जो० ॥३॥

[३०२]

राग-जिलौ

दरस ज्ञान चारित तप कारन,
कारज इक वैराग्यपना है ॥

कारन काज अन्यथा मानत
तिनका मन मिथ्यात सना है ॥
तरु तैं बीज बीज तैं तरुवर
जो नहिं कारन काज मना है ॥
आप धवत वैराग बधावत
हरत सकल दुख दोष घना है ॥ दरस ॥
जहाँ ज्ञान वैराग्य अवस्थित
तहाँ सहज आनन्द घना है ॥
विषै कषाय उपाधिक भावन-
की संतति नहिं उदित जमा है ॥ दरस ॥
नाम न ठाम न विधि आगम की
पुनि अपरिमित बंध हना है ॥
कहत सदा अपरंत भवरवी
कारन काज गुरु अपना है ॥ दरस ॥
[३ ४]

राग—चौतालो

ऐसी कलिकाल स्याम नैननि निहारि आज
कहि जात साह चोर पावत इनाम है ॥
आगनि की मोती भो मरकतु की कोंर—कन
रासन की झूठी धूम बसे हेम धाम है ॥
झूठी सुमिर वारीनि हू सराहते लोग बहु,

गाडर पूत मगारि खिलावै ॥
बासक अरु रमा नहिं सोवै
बाँझी की अकँ मगरें धावै ॥ ऐसो ॥१॥

विष आचमन करत तन पोषत
अमृत पोषत प्रान गमावै ॥
चंदन लेप अग्नि तन दाहे,
कुम्भुक सेवत रमति सुहावै ॥ ऐसो० ॥२॥

पाप उपावत जगत सराहत
धरम करत अपवाद कहावै ॥
'दृष' कछु महि जात बखानी
मौन गहे ही समता आवै ॥ ऐसो० ॥३॥

[२ ६]

राग—कनडी तथा सोरठ

निपुनता कहाँ गमाई राज ॥
मूढ़ भये परगुन रस राचे
खोयो सहज समाज ॥ निपुनता ॥१॥

पुद्गल जीव मिल तन भये
निज मानत धरि अहंकार ।
जो जन भिन्न मनत चेतन
महि आनन्द मिलत अपार ॥ निपुनता ॥२॥

आनन्द मूल अनाकुलताई,
दुख विभाव वस चाह।
दुहका भेद विज्ञान भये विन,
मिलत न शिवपुर राह ॥ निपुनता० ॥ ३ ॥
अव गुरु वचन सुधा पी चेतन,
सरधौ सुहित विधान।
मिथ्या विपय कपाय 'छत्त' तज,
करि चिन्मूरति ध्यान ॥ निपुनता० ॥ ४ ॥

[३०७]

राग-जिलौ

प्रभु के गुन क्यों नहि गावै रे नीकै,
छै आज घडी सुग्यानीडा ॥
तन अरोग जीवन विधि आछी,
वुध सग मति उजरी ॥ सुग्यानी० ॥ १ ॥
वे जग नायक हैं सव लायक,
घायक विघन अरी।
जीव अनन्त नाम सुमिरन करि,
अविचल रिधि धरि ॥ सुग्यानी० ॥ २ ॥
जो तू ज्ञानीडा विपयन सेवे,
यह नही वात खरी।
इन वस ह्वै भव भव चहुगति मे,
को नहि विपति भरी ॥ सुग्यानी० ॥ ३ ॥

फिरि यह विधि कह मिली दुहेली
जो रज पदमि परी ।
मब तन पाई तो अब हित करि
चढि जिन भक्ति तरी ॥ सुग्यानी ॥४॥
[३०८]

राग-सारग

भजि जिनवर चरन सरोज मित
मति बिसरै रे भाई ॥
चिर भव भ्रमत भागि जोगा यह,
अब उत्तम विधि पाई ॥ मति ॥१॥

जिन प्रवास कीश को सुवसता
कोनौं कमी पपाई ।
नरभव वर कुल बुधि शुभ संगति
देह अरोग बढाई ॥ मति० ॥२॥

जिन सेवत है दुखी होवगो,
भव भव दुख बनाई ।
तिन ही सौं परचै निश बासर
कौन समझ कर सांई ॥ मति० ॥३॥

सुरमत तिरे अधम नर पशु बहु,
अब भी विरत सुमाई ।

'छत्र' वर्तमान आगामी,
मन इच्छित फल पाई ॥ भवि० ॥ ५ ॥

[३०९]

राग–जिलौ

या धन को उत्पात घने लखि,
क्यों नहि ज्ञान विवेक मति धारे ।
तस्कर ठग बटमार दुष्ट अरि,
भूप हरे पावक पर जारे ॥
बपु विरोध दुर्मति तें छय,
भूमि धरी सुर अन्तर पारे ।
भोग सजोग सुजन पोषन से,
लगो गयो नहि स्वारथ सारे ॥ या० ॥ १ ॥
जो सुपात्र अरु दुखित भुखित को,
दियो अलप हू बहु दुख टारे ।
भोग भूमि सुर शिव तरुवर को,
बीज होय सबको जस सारे ॥ या० ॥ २ ॥
जो है उर विवेक सुख इच्छा,
तो तजि लोभ चतुर परकारे ।
'छत्र' शक्ति अनुसार दान को,
करन भलो इम सुगुरु उचारे ॥ या० ॥ ३ ॥

[३१०]

घन-मारग जलधर निज धारहि,
सींचत सुद्ध करियां ॥
कहौं कहा कछु कहत न आवै
तुमि सब सब टरियां ॥२॥
विपति उधारन विरद विहारी
सुनि धनि मन धरिया ॥
'वंत' विप्र भाव होत सहाई
कहौं पगौं पड़िया ॥ राग० ॥३॥
[३१२]

राग–जिलौ

रे जिव तेरी कौन भूल था,
जो गुरु सीख न मानै है रे ॥
जो अबोध अखाधी पियूष सम
भेषज हिये न आनै है रे ॥
जा करी दुखी भया है होगा
तिस ही में चित सानै है रे ॥
विषमान माथी सुख करन
ताहि न दुक्ख समझानै है रे ॥
रे ॥१॥
परमातनि सौं भिन्न स्याम
आनन्द सुभाव न ठानै है रे ॥

अपर गेह सम्बन्ध थकी,
सुख दुख उतपति बखानै है रे ॥
रे० ॥ २ ॥

दुर्लभ अवसर मिला, जात यह,
सो कहा न तू जानै है रे ॥
'छत्त' ठठेरा का नभचर जो,
निडर भया थिति थानै है रे ॥
रे० ॥ ३ ॥

[३१४]

राग—कालंगडो

रे भाई आतम अनुभव कीजै ॥
या सम सुहित न साधक दूजौ,
ज्ञान द्रगन लखि लीजै ॥ रे० ॥१॥
पुदगल जीव अनादि सजोगी,
जो तिल तेल पतीजै ॥
होत जुदौ तौ मिलौ कहां है,
खलि सब प्रति दिठि दीजै ॥ रे० ॥२॥
जीव चेतनामय अविनाशी,
पुदगल जड मिलि छीजै ॥
रागादिक पर-नमन भूलि निज गये,
साम्य रंग भीजै ॥ रे० ॥३॥
निरउपाधि सरवारथ पूरन,
आनन्द उदधि सुनीजै ॥

'अमर' दास गुन रस स्वाद तें
अनुभव सुखरस पीवै ॥ दे० ॥४॥
[३१५]

राग-झंझोटी

भले हम तुम साँचे सुखदाय ॥
वीतराग सर्वज्ञ महोदय
त्रिभुवन मान्य अपाय ॥ भले० ॥१॥
तरन अतिशय अनुपम वर
परमौदारिक काय ॥
गुण अनंत बुध कौन कहि सकै
थकित होय सुरराय ॥ भले० ॥२॥
सुखमय मूरति सुखमय सूरति
सुखमय वचन सुभाय ॥
सुखमय शिक्षा सुखमय दिक्षा
सुखमय क्रिया उपाय ॥ भले ॥३॥
'अमर' सुमन अभिपदसरोज पर,
सुख भयो अधिकाय ॥
पूरब पुण्य मिलि करे बिना को
हरो शांति रस प्याय ॥ भले ॥४॥
[३१६]

राग—जोगी रासा

चोवत बीज फलत अतर सों,
धरम करत फल लागत है॥
जों घन घोर बीजली चमकनि,
लोय प्रकाश साथ जागत है॥

तीव्र कषाय रूप अवकारज,
त्याग सुभाश्रव को आश्रत है॥
वीतराग विज्ञान दशा मय,
छिप्र विधि रिन जावत है॥ बोवत• ॥१॥

दोऊ धरें निराकुलतापन,
सोई सुख जिन श्रुत आहत है॥
धरम जहां सुख यह कहना सत्ति,
आन गहे सठ जन चाहत है॥ बोवत० ॥२॥

इम लखि ढील कहा साधन में,
औसर गये न कर आवत है॥
'छत्त' न्याय यह चलै लहै यत्न,
किये विना कहि को पावत है॥ बोवत• ॥३॥

[२१७]

राग-होरी

सुनि सुजन सयाने तो सम कौन अमीर रे।
निज गुन विभव विसरि करि भोंदू।
गेलत भयो फकीर रे॥ सुनि० ॥१॥

गुरु उपदेश समाधि सोधि हिय ।
नैन निरखि धरि धीर रे ॥
निपट नजीक सुसाध्य ध्यान द्रुम ।
धीरज सुख द्रुम छीर रे ॥ मुनि० ।२॥
समरस असन अचाह छोप धूप ।
बसमाभरन सरीर रे ॥
द्वन्द्व निरत की परजै पलटनि ।
निरत विलोकि अमीर रे ॥ मुनि ॥३॥
मुनि त्रिभुवनपति राम सचीपति ।
सेवग मुनिगन धीर रे ॥
'मस्त' चरित विराग भाव गहि ।
साधम आदि अखीर रे ॥ मुनि ॥४॥

[११८]

राग-जिलौ

हम सम कौन अयान अभागो
जो नृप काम समय सोवत है ॥
जा दुख कटुक फलनि करि फलता
पाप मनोरुह मन बोवत है ॥
इस बिरिया में के सुविवेकी
पूरब कृत विधि मल धोवत है ॥ हम० ॥
हम भ्रम भूमि मूढ़ है आइ निरा
निपट अचेत नींद सोवत है ॥ हम ॥

परम प्रशांति स्वानुभव गोचर,
निज गुन-मनि-माल न पोवत है ॥ इम० ॥
इन्द्रिय द्वार विषै रस वस ह्वै,
आपनपो भव जल डोवत है ॥ इम० ॥
पर निज मानि मिलत विछुरत मे,
सुख दुख मानि हसति रोवत है ॥
'छत्र' स्वतन्त्र परम सुख मूरति,
वर वैराग्य न द्रग जोवत है ॥ इम० ॥

[३१६]

राग–दीपकचंदी

समझ विन कौन सुजन सुख पावै,
निज द्रिढ विधि बध बढावै ॥
पाटकीट जों उगलि तारकों,
आपन यौ उलझावै ॥ समझ० ॥१॥
भाटा लेय धुने सिर अपनो,
दोष तास सिर आवै ॥
मलिन वसन चिकटास सलिलसौं,
धोवत मन न लगावै ॥ समझ० ॥२॥
चिर मिथ्यात कनिक रस भोया,
तिन कलधौत बतावै ॥

त्यागौ मन वच तन कृत कारित,
अनुमत जुत संतोष धरा है ॥
'छत्तर' विद्यमान समशांतर,
सुखी होय करि वृत सुचिरा है ॥ घन० ॥३॥

[३२१]

राग–जिलौ

काहूँ के धन बुद्धि भुजाबल,
होत स्वपर हित साधन हारा ॥
काहू के निज अहित दुखित कर,
काहू के निज पर दुखकारा ॥

जे जिन श्रुत–रसज्ञ जन ते तौ,
स्वपर सुहित साधत अनिवारा ॥
स्वपद मग भय धन संचय रुचि,
तें निज अहित फंसे निरधारा ॥
काहू० ॥ १ ॥

जे निरिच्छ परम वैरागी,
साधत सुहित न अन्य विचारा ॥
मिथ्या विषय कषाय लुब्ध जन,
करत आप पर अहित विथारा ॥
॥ काहू० ॥ २ ॥

तातैं यह सिद्धांत सिद्ध करि
सिद्धि करी वैराग्य उदारा ॥

'बुध' बिना वैराग्य क्रिया इम
जिम बिन अंक शून्य परिवारा ॥
॥ आतू० ॥ ३ ॥

[१२२]

राग—जिलो

ऐसो रचो उपाय सार बुध
जा करि अज होय अविकारा ॥

सुजस बधे सुख बधे बधे बुध
जो सब भव दुख मेटन हारा ॥

जा करि धरम होय जस प्रगटै
बधै मर्यादर कौं कुलभारा ॥

सो उपाय पकरी सयाने
करि बिन आलस रहसि विचारा ॥
ऐसो ॥ १ ॥

सुतिय अकारज त्याग मान्य है,
धारू अक्षरा न होत लगारा ॥

तजि प्रयास सब आस वृथा करि,
कारन काज विचार सुठारा ॥
॥ ऐसो• ॥ २ ॥

यह ससार दशा छिनभगुर,
प्रभुता विघटत लगत न वारा ॥
क्यों टुक जीवन पै गरवाना,
'छत्त' करौ किनि सुहित सभारा ॥
॥ ऐसो० ॥ ३ ॥

[३२३]

राग–सोरठ

आयु सब यो ही बीती जाय ॥
बरस अयन रितु मास महूरत,
पल छिन समय सुभाय ॥ आयु० ॥ १ ॥

बन न सकत जप तप ब्रत सजम,
पूजन भजन उपाय ॥
मिथ्या विपय कपाय काज मे,
फसौ न निकसौ जाय ॥ आयु• ॥ २ ॥

लाभ समै इह जात अकारथ,
सत प्रति कहू सुनाय ॥

होति निरंतर विधि व्यवहारी
इस पर भव दुस्तराय ॥ साधु० ॥ ३ ॥

धनि व साधु लगे परमारथ
साधन में अमगाय ॥
'दक्ष' सफल जीवन तिनही का,
इस सम शिथिल न पाय ॥ साधु० ॥ ४ ॥
[३२४]

पं० महाचन्द

प० महाचन्द जी सीकर के रहने वाले थे। ये भट्टारक भानुकीर्ति की परम्परा में पाण्डे थे तथा इनका मुख्य कार्य गृहस्थों से धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कराना था। सरल परणामी एव उदार प्रकृति के होने के कारण ये लोकप्रिय भी काफी थे।

इन्होंने त्रिलोकसार पूजा को जो इनकी सबसे बड़ी रचना है सम्वत् १६१५ में समाप्त किया था। यह इनकी अच्छी कृति है तथा लोकप्रिय भी है। इन्होंने तत्वार्थ सूत्र की हिंदी टीका भी लिखी थी तथा कितने ही हिंदी पदों की रचना की थी। इनके अधिकाश पद भक्ति स्तुति एव उपदेशात्मक हैं। सभी पद सीधी सादी भाषा में लिखे गये हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है।

राग—जोगी रासा

मेरी ओर निहारो मोरे दीन दयाला ॥ मेरी० ॥

हम कर्मन तें भव भय दुखिया,
तुम जग के प्रतिपाला ॥
मेरी० ॥ १ ॥

कर्मन तुल्य नहीं दुख दाता,
तुम मम नहिं रखवाला ॥
तुम तो दीन अनेक उबारे,
कौन कहूं तैं मारा ॥
मेरी० ॥ २ ॥

कर्म अरी कों वेगि हटाऊ,
ऐसी कर प्रभु म्हारा ॥
बुध महाचन्द्र चरण युग चर्चे,
जाचत है शिवमाला ॥
मेरी० ॥ ३ ॥

[३२५]

राग-जोगी रासा

मेरी ओर निहारो जी श्री जिनवर स्वामी अन्तरयामी जी ॥
मेरी ओर निहारो० ॥

दुष्ट कर्म मोय भव भव मांही
देव रहैं दुखभारी जी ॥
जरा मरण संभव आदि बहु
पार न पावो जी ॥ मेरी ओर० ॥ १ ॥
मैं तो एक अनाथ व गण मिलकर,
मोय मोय दुख सारे जी ॥
देत हैं बरज्यो नाही मानैं
दुष्ट हमारे जी ॥ मेरी ओर० ॥ २ ॥
और कोई मोय दीसत नाही
सरणागत प्रवपालो जी ॥
बुध महाचन्द्र चरण ढिग ठाडो
शरण थांको जी ॥ मेरी ओर० ॥३॥
[३२६]

राग–सारग

कुमति को छाडो हो भाई ॥
कुमति रची इक चारुदत्त ने वेश्या संग रमाई ॥
सब धन खोय होय अति फीके गुम मह भटकाई ॥
कुमति ॥ १ ॥
कुमति रची इक रावण नृप ने सीता को हर ल्याई ॥
तीन खंड को राज खोय के दुरगति वास कराई ॥
कुमति० ॥ २ ॥

कुमति रची कीचक ने ऐसी द्रोपदि रूप लिभाई ॥
भीम हस्त सैं जम गले नहि कुगत्य भई अधिकाई ॥
कुमति० ॥ ३ ॥

कुमति रची इक धवल सेठ ने मदनमजूसा ताई ॥
श्रीपाल की महिमा देखिकर छाती फाटि मर जाई ॥
कुमति० ॥ ४ ॥

कुमति रची इक भानकुंट ने पगने रतन ठगाई ॥
सुन्दर सुन्दर भोजन तजि के गोबर भक्ष कराई ॥
कुमति० ॥ ५ ॥

राव अनेक लुटे इस मारग परतख फौज चलाई ॥
बुध महाचन्द्र जानिये दुख को कुमती को छिटकाइ ॥
कुमति० ॥ ६ ॥

[३२७]

राग-सारंग

कैसे कटै दिन रैन, दरस बिन ॥ कैसे० ॥

जो पल घटिका तुम बिन बीतत,
मोही लगै दुख देन ॥ दरस० ॥ १ ॥

दरशन कारण सुरपति रचिये,
सहस नयन की लैन ॥ दरस० ॥ २ ॥

ज्यों रवि दर्शन चकवाक युग,
चाहत नित प्रति सैन ॥ दरस० ॥ ३ ॥

तुम दरशन तैं भव भव सुखिया
होत सदा भविजैन । दरस० ॥ ४ ॥
तुमरो सेवक लखिहैं जिन बुध
महाचंद्र को चैन ॥ दरस० ॥ ५ ॥
[३२८]

राग–विलावल

जिया तूने लाख तरह समझायो
खोमीठा माही मानै रे ॥
जिन करमन संग बहु दुख भोगे
तिनही से रुचि ठानै
निज स्वरूप न जानै रे ॥ जिया ॥ १ ॥
विषय भोग विष सहित अन्नसम
बहु दुख कारण जानै
जन्म जन्मान्तरानै रे ॥ जिया ॥ २ ॥
शिव पथ छांडि नर्क पथ लाग्यो
मिथ्यामत मुखानै ।
मोह की पैछ मानै रे ॥ जिया० ॥ ३ ॥
ऐसी दुर्गति बहुत दिन बीते
अब तो समझ सयान
कहै बुधमहाचन्द्र ठानै रे ॥ जिया० ॥ ४ ॥
[३२६]

राग–सोरठ

जीव निज रस राचन खोयो,
यो तो दोष नही करमन को ॥ जीव० ॥

पुद्गल भिन्न स्वरुप आपणू,
सिद्ध समान न जोयो ॥ जीव० ॥१॥

विपयन के सग रत्त होय के,
कुमती सेजा सोयो ॥
मात तात नारी सुत कारण,
घर घर डोलत रोयो ॥ जीव० ॥२॥

रूप रग नवजोवन परकी,
नारी देखर मोयो ॥
पर की निन्दा आप वडाई,
करता जन्म विगोयो ॥ जीव० ॥३॥

धर्म कल्पतरु शिवफल दायक,
ताको जर तैं न टोयो ॥
तिस की ठोड महाफल चाखन,
पाप वबूल ज्यों वोयो ॥ जीव० ॥४॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म सेय के,
पाप भार वहु ढोयो ॥
बुध महाचन्द्र कहे सुन प्रानी,
अ तर मन नही धोयो ॥ जीव० ॥५॥

[३३०]

राग-सोरठ

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो
जब चेत भयो तब रोयो ॥ जीव० ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप
यह धन धूरि विगोयो ॥
विषय भोग गत रस को रसियो
छिन छिन में अतिसोयो ॥ जीव० ॥ १ ॥
क्रोध मान छल लोभ भयो
तब इन ही में उरझोयो ॥
मोहराय के किंकर यह सब
इनके वसि ह्वै लुटोयो ॥ जीव० ॥ २ ॥
मोह निवार संवार सु आपो
आतम हित स्वर जोयो ॥
बुध महाचन्द्र चन्द्र सम होकर
उज्ज्वल चित रखोयो ॥ जीव ॥ ३ ॥
[३३१]

राग-सोरठ

धन्य घड़ी याही धन्य घड़ी री
धन्य दिवस याही धन्य घड़ी री ॥
पुत्र सुलक्षण महासेन घर
आये चन्द्रप्रभ चन्द्रपुरी री ॥ धन्य० ॥१॥

गज के वदन शत वदन रदन वसु,
रदन पै सरवर एक करी री ॥
सरवर सत पणवीस कमलिनी,
कमलिनी कमल पचीस खरी री ॥ धन्य ॥२॥

कमल पत्र शत-आठ पत्र प्रति,
नाचत अपसरा रंग भरी री ॥
कोडि सताइस गज सजि ऐसो,
आवत सुरपति प्रीति धरी री ॥ धन्य० ॥३॥

ऐसो जन्म महोत्सव देखत,
दूरि होत सब पाप टरी री ॥
बुध महाचन्द्र जिके भव माहो,
देखे उत्सव सफल परी री ॥ धन्य० ॥४॥

[३३२]

राग—जोगी रासा

निज घर नाहिं पिछान्या रे, मोह उदय होने तैं मिथ्या
भर्म भुलाना रे ।
तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।
पुद्गल जडमें राचि भयो तू मूर्ख प्रधाना रे ॥ १ ॥
तन धन जोबन पुत्र वधू आदिक निज माना रे ।
यह सब जाय रहन के नाही समझ सयाना रे ॥ २ ॥

बालपने बड़कन संग खोवत त्रिया भवाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म सुहाना रे ॥ ३ ॥

गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
बुध महाचन्द्र विचारिके निज पद निज रमाना रे ॥ ४ ॥

[३३१]

राग—जोगी रासा

माई चेतन चेत सके तो चेत अब
नावर होगी खुवारी रे ॥ माई ॥

लख चौरासी में भ्रमता भ्रमता
दुरलभ नरभव भारी रे ।
आयु कई यहां तुच्छ ताप तैं
पंचम काल मझारी रे ॥ माई० ॥ १ ॥

अधिक कई तब सौ बरषन की
आयु कई अधिकारी रे ।
आधी तो सोने में सोई
तेरा धर्म ख्याल बिसारी रे ॥ मा० ॥२॥

बाकी रही पचास वर्ष में
तीन दशा दुखकारी रे ।
बाल अज्ञान अवान त्रिया रस
वृद्धपने बल हारी रे ॥ माई० ॥३॥

रोग अरु सोक सयोग दु ख वसि,
बीतत है दिनसारी रे ।
बाकी रही तेरी आयु किती अब,
सो तैं नाहि विचारी रे ॥ भाई० ॥४॥
इतने ही में किया जो चाहै,
सो तू कर सुखकारी रे ।
नहीं फसेगा फद विच पडित,
महाचन्द्र यह धारी रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

[३३४]

राग—सोरठ

भूल्यो रे जीव तू पद तेरो ॥ भूल्यो० ॥
पुद्गल जड में राचिराचि कर,
कीनों भववन फेरो ।
जामण मरण जरा दौं दाभ्यो,
भस्म भयो फल नरभव केरो ॥ भूल्यो० ॥ १ ॥
पुत्र ,नारि बान्धव धन कारण,
पाप कियो अधिकेरो ।
तेरो मेरो यू करि मान्यु इन में,
नहीं कोई तेरो न मेरो ॥ भूल्यो० ॥ २ ॥
तीन खड को नाथ कहावत
मन्दोदरी भरतेरो ।

भ्रम भ्रमा की फौज फिरी तब
राज खोय किनो नर्क बसेरो ॥ मूरख्यो ॥ ३ ॥

मूखि मूखि कर समझ जीव तू
अबहूँ औसर हेरो ।

बुध महाचन्द्र आखि हित अपरा,
पीवो जिनवानी रस केरो ॥ मूरख्यो ॥ ४ ॥
[२१५]

राग–जोगी रासा

मिटत नाही मेटे सैं या तो होनहार सोइ होय ॥
मायनन्द मुनिराज वे भी गये पारधी हेत ।
ब्याह रच्यो कुम्हार-घी सू बालक घडि घडि देत ॥
मिटत० ॥ १ ॥

सीता सती बड़ी सतवंती जानत है सब कोय ।
जो जयागत दर्द नाही ताकी कर्म लिखा सोही होय ॥
मिटत ॥ २ ॥

रामचन्द्र से भर्ता जाके मंत्री बड़े विशिष्ठ ।
सीता दुख भुगतन नाही पायो भाषनि बड़ी वशिष्ट ॥
मिटत ॥ ३ ॥

जहाँ कृष्ण जहाँ जरत कुंवर जी जहाँ होता की तीर ।
मृग के धोके वन मैं मारयो बलभद्र भरण गये नीर ॥
मिटत० ॥ ४ ॥

महाचन्द्र तें नरभव पायो तू नर बडो अज्ञान।
ले सुख शुनते चायें मानों भजलो श्री भगवान॥
मिटत० ॥ ५ ॥

[२३६]

राग-जोगी रासा

राग द्वेष जाके नहिं मन में हम ऐसे के चाकर हैं॥
जो इन ऐसे के चाकर तो कर्म रिपू हम कहा करि हैं।
राग० ॥ १ ॥

नहिं अष्टादशा दोष जिनू मे छियालीस गुण आकर है।
सप्त तत्व उपदेशक जग में सोही हमारे ठाकुर है॥
राग० ॥ २ ॥

चाकरि मे कछु फल नहिं दीमत तो नर जग में थाकि रहे।
हमरे चाकरि में है यह फल होय जगत के ठाकुर है॥
राग० ॥ ३ ॥

जाकी चाकरि बिन नहिं कछु सुख तातैं हम सेवा करि है।
जाकैं करणैं तैं हमरे नहिं खोटे कर्म विपाक रहैं॥
राग० ॥ ४ ॥

नरकादिक गति नाशि मुक्तिपद लहे जु ताहि कृपा धर है।
चद्र समान जगत में पडित महाचंद्र जिन स्तुति करि है॥
राग० ॥ ५ ॥

[२३७]

राग-ईमन

महिमा है अगम जिनागम की ॥
जाहि सुनत जड भिन्न पिछानी,
हम चिन्मूरति आतम की ॥ महिमा० ॥ १ ॥
रागादिक दुखकारन जानें,
त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी ॥
ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर,
रुचि वाढी पुनि शम दम की ॥ महिमा० ॥ २ ॥
कर्म बन्ध की भई निरजरा,
कारण परम्परा क्रम की ॥
भागचन्द शिव लालच लागो,
पहुँच नहीं है जहां जम की ॥ महिमा० ॥ ३ ॥

[३३६]

राग-विलावल

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखे, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम ॥
सुमर० ॥ १ ॥
जिमि मरीचिका में मृग भटके, परत सो जब ग्रीषम धाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटके धरत न इक छिनहू विसराम ॥
सुमर० ॥ २ ॥

राग–सोरठ

देखो पुद्गल का परिवारा
जामें चेतन है इक न्यारा ॥ देखो० ॥

स्परशन रसना घ्राण नेत्र पुनि
श्रवण पंच यह सारा ॥
स्पर्श रस पुनि गंध वर्ण
स्वर यह इनका विषयारा ॥ देखो० ॥ १ ॥

क्षुधा तृषा अरु रागद्वेष रुज
सप्त धातु दुख कारा ॥
बादर सूक्ष्म स्कंध अणु आदिक
मूर्ति मई निरधारा ॥ देखो ॥ २ ॥

काय वचन मन स्वासोच्छ्वास जु,
थावर त्रस करि डारा ॥
बुध महाचन्द्र चेतकरि निशदिन
तजि पुद्गल पतियारा ॥ देखो ॥ ३ ॥
[३३८]

भागचन्द

कविवर भागचन्द १६ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनका संस्कृत एवं हिन्दी दोनों पर एकसा अधिकार था। ये ईसागढ (ग्वालियर) के रहने वाले थे। इनकी अब तक ६ रचनायें प्राप्त हो चुकी है जिसमें उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला भाषा, प्रमाणपरीक्षा भाषा, नेमिनाथपुराण भाषा, अमितिगतिश्रावकाचार भाषा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कृतिया संवत् १६०७ से १६१३ तक लिखी गई है जिससे ज्ञात होता है उनके यह साहित्यिक जीवन का स्वर्ण युग था।

भागचन्द जी उच्चविचारक एवं आत्म चिन्तन करने वाले विद्वान् थे। पदों से आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध में उनके सुलझे

राग–ईमन

महिमा है अगम जिनागम की ॥
जाहिं सुनत जड भिन्न पिछानी,
हम चिन्मूरति आतम की ॥ महिमा० ॥ १ ॥
रागादिक दुखकारन जानें,
त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी ॥
ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर,
रुचि वाढी पुनि शम दम की ॥ महिमा० ॥ २ ॥
कर्म बन्ध की भई निरजरा,
कारण परम्परा क्रम की ॥
भागचन्द शिव लालच लागो,
पहुँच नहीं है जहा जम की ॥ महिमा० ॥ ३ ॥

[३३६]

राग–विलावल

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखे, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अन्तकाल नहि आवत काम ॥
सुमर० ॥ १ ॥
जिमि मरीचिका में मृग भटके, परत सो जब ग्रीपम धाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटके धरत न इक छिनहू विसराम ॥
सुमर० ॥ २ ॥

करत न ग्लानी अब भागन में धरत न वीतराग परिनाम।
फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी जहां सुख लेश न आठौं जाम।
सुमर० ॥ ३ ॥

तातैं आकुलता अब तजिकैं थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
भागचन्द्र बसि ज्ञान नगर में तजि रागादिक ठग सब ग्राम॥
सुमर० ॥ ४ ॥
[३४०]

राग-सर्चरी

सांची तो गंगा यह वीतराग वानी।
अविच्छिन्न धारा निज धर्म की कहानी॥
सांची ॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी।
जहां नहीं संशयादि पंक की निशानी॥
सांची० ॥ १ ॥

सप्त भंग जहं तरंग उछलत सुखदानी।
संत चित्त मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी॥
सांची० ॥ २ ॥

जाके अवगाहन तैं शुद्ध होय प्रानी।
भागचन्द्र निहचै घटमांहि या प्रमानी॥
सांची ॥ ३ ॥
[३४१]

राग--मांढ

जब आतम अनुभव आवै, तब और कछु ना सुहावै।

रस नीरस हो जात ततक्षिण, अक्ष विषय नहीं भावै ॥१॥

गोष्ठी कथा कुतूहल विघटे, पुद्गल प्रीति नशावै ॥२॥

राग दोष जुग चपल पक्षयुत, मनपक्षी मर जावै ॥३॥

ज्ञानानन्द सुधारस उमगे, घट अन्तर न समावै ॥४॥

'भागचन्द' ऐसे अनुभव को हाथ जोरि शिर नावै ॥५॥

[३४२]

राग--सारंग

जीव! तू भ्रमत सदीव अकेला, संग साथी कोई नहीं तेरा।

अपना सुख दुख आप हि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।

स्वार्थ भयें सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला ॥१॥

रक्षक कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्त की वेला।

फूटत पारि बधत नहीं जैसे, दुद्धर जल को ठेला ॥२॥

तन धन जीवन विनशि जात ज्यों, इन्द्र जाल का खेला।

'भागचन्द' इमि लख करि भाई, हो सतगुरु का चेला ॥३॥

[३४३]

राग–बसन्त

संत निरंतर चिंतत ऐसैं
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥

रागादिक तो देहाश्रित हैं
इनतैं होत न मेरी हानी ।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत
गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ १ ॥

वरणादिक विकार पुद्गल के
इनमें नहिं चैतन्य निशानी ।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही
तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ २ ॥

मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस
लवण खिल्लवत लीला ठानी ।
मिलो निराकुल स्वाद न यावत
तावत परपरनति हित मानी ॥ ३ ॥

'भागचन्द्र' निरद्वन्द निरामय
मूरति निश्चय सिद्धसमानी ।
नित अकलंक अवंक शंक बिन
निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥ ४ ॥

राग–सोरठ

जे दिन तुम विवेक विन खोये ॥

मोह वारुणी पी अनादि तैं,
पर पद मे चिर सोये ।
सुख करण्ड चित्त पिंड आप पद,
गुन अनत नहि जोये ॥ जे दिन० ॥ १ ॥

होय वहिमुख ठानी राग रुख,
कर्म वीज बहु वोये ।
तसु फल सुख दुख सामग्री लखि,
चित में हरपे रोये ॥ जे दिन० ॥ २ ॥

धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं,
आस्रव मल नहि धोये ।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी,
विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥ ३ ॥

अब निज में निज नियत तहा,
निज परिनाम समोये ।
यह शिव मारग समरस सागर,
भागचन्द हित तोये ॥ जे दिन० ॥ ४ ॥

[३४५]

राग–मल्हार

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।
लोचन रहित मनुष के कर में
क्यों बटेर खग आयो ॥ अरे हो ॥ १ ॥
सो तू खोवत विषयन मांही
भरम नहीं चित लायो ॥ अरे हो० ॥ २ ॥
भागचन्द उपदेश मान अब
जो श्रीगुरु फरमायो ॥ अरे हो० ॥ ३ ॥
[२४६]

विविध कवियों के पद

इस अध्याय के अन्तर्गत टोडर, शुभचन्द्र, मनराम विद्यासागर, साहिबराय, भ० सुरेन्द्र कीर्ति, देवाब्रह्म, बिहारी- दास, रेखराज, हीराचन्द्र, उदयराम, माणकचन्द, धर्मपाल, देवीदास, जिनहर्ष, सहजराम आदि कवियों के ५५ पद दिये गये हैं। अधिकाश जैन कवियों ने अच्छी सख्या में पद लिखे है। एक तो उन सबको एक ही पुस्तक में देना सम्भव नहीं था इसके अतिरिक्त इनमें से अधिकाश कवियों का कोई विशेष परिचय भी उपलब्ध नहीं होता इसलिए इस अध्याय के अन्तर्गत इन कवियों के पद थोड़े थोडे उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। उनसे पाठकों एव विद्वानों को जैन कवियों की विद्वत्ता एव हिन्दी प्रेम का पता चल सकता है। इनमें भी कुछ पद

बहुत ही उत्कृष्ट के हैं। मनराम का 'चेतन इह घर नाहीं तेरो बहुत सुन्दर पद है। देवाब्रह्म ने अपने पदों में राजस्थानी भाषा का प्रयोग किया है। 'रत चौदा कांसा तथा भरता में दुख पाई' इसका एक उदाहरण है।

राग–कल्याण

तू जीय आनि के जतन अटक्यौ,
तेरे तौ कछुव नहीं खटक्यौ ॥
तू सुजानु जडस्यौ कहि रचि रह्यौ,
चेततु क्यौ न अजान मूढमति घट २ ह्यौं भटक्यौ ॥१॥

रचि तन तात मात वनिता सग,
निमिप न कहू मटक्यौ ।
मार्जारी मीच ग्रस तन सभारी,
कीरसु धरि पटक्यौ ॥२॥

ए तेरे कवन कहा तूं इनकौ,
निसि दिनु रह्यौ लपट्यौ ।
टोडर जन जीवन तुछ जग मैं,
सोचि सम्हारि विचारि ठट्ट विघट्यौ ॥३॥

[३४७]

राग–भैंरू

उठि तेरो मुख देखूं नाभि जू के नदा ।
तासे मेरे कटैं ये करम के फदा ॥
रजनी तिमर गयो किरन उद्योत भयो ।
दीजे मोकू दरस तुरत जरे फदा ॥ उठि० ॥१॥

जागिवे राज कुमार सुर नर ठाडे दुवार।
तेरो मुख जोवत चकोर जैसे चंदा ॥ उठि ॥२॥

भवन सुनत मुख तन की नासत दुख।
दूरि कीजे नाथजी अनादि के फंदा ॥ उठि ॥३॥

कीजे प्रभु उपगार मनकी मिटै विकार।
कमलपत्र की दिस होत जैसे मन्दा ॥ उठि ॥४॥

टोडर अनक नेम तुम ही सू लाग्यो प्रेम।
तुम्हारो ही ध्यान धरत निति बंदा ॥ उठि० ॥४॥

[३४८]

राग-नट

पेखो सखी चंद्रप्रभ मुख-चंद्र।
सहस किरण सम तन की आभा देखत परमानंद ॥
॥ पेखो० ॥१॥

समवसरण शुभ भूति विभूति सेव करत सब इंद्र।
महासेन-कुल-कंज दिवाकर जग गुरु जगदानंद ॥
॥ पेखो ॥२॥

समसोहम मूरति प्रभु तेरी, मैं पायो परम मुनिंद।
श्री शुभचंद्र कहे जिनजी मोकु राखो चरन अरविंद ॥
॥ पेखो ॥३॥

[३४६]

राग- सारंग

कोन सखी सुध लावे, श्याम की ॥
कोन सखी सुध लावे ॥

मधुरी ध्वनि मुख-चंद्र विराजित ।
राजमति गुण गावे ॥ श्याम० ॥१॥

अंग विभूषण मनिमय मेरे ।
मनोहर माननी पावे ॥

करो कछू तत मत मेरी सजनी ।
मोहि प्राननाथ मिलावे ॥ श्याम० ॥२॥

गज-गमनी गुण-मन्दिर श्यामा ।
मनमथ मान सतावे ॥

कहा अवगुन अब दीनदयाला ।
छोरि मुगति मन भावे ॥ श्याम० ॥३॥

सब सखी मिल मन मोहन के ढिंग ।
जाय कथा जु सुनावे ॥

सुनो प्रभु श्री शुभचंद्र के साहिब ।
कामिनी कुल क्यो लजावे । श्याम० ॥४॥

[२५०]

राग—गुज्जरी

जपो जिन पार्श्वनाथ भव तार ॥
अश्वसेन वामा कुल मंडन वाम मम अवतार ॥
जपो ॥ १ ॥

नीलमणि सम सुन्दर सोभे बोध सुकेवलधार ।
नव कर उन्नत अंग अतिदीपे आवागमन निवार ॥
जपो ॥ २ ॥

अजरामरतु कुल मिथ्यात्व तारण भवोदधिपार ।
विबुध वृंद सेवे शिरनामी पाद पंचाचार ॥
जपो० ॥ ३ ॥

कलियुग महिमा मोटी दीसे जिनवर जगदाधार ।
मानव मनवांछित फल पामे सेवक जन प्रतिपाल ॥
जपो० ॥ ४ ॥

सिद्ध स्वरूपी शिवपुर नायक नाम निरंजन सार ।
रामचंद्र कहे करुणा कर स्वामी आपो संसार पार ॥
जपो ॥ ५ ॥
[३५१]

राग—जोगी रासा

चेतम इह घर नाही तेरो ।
घट पदादि सैनम गोचर जो नाटक पुद्गल केरो ॥ चे ॥

तात मात कामनि सुत बन्धु करम बध को घेरो।
करि है गौन आनगति को जब, को नहि आवत नेरो ॥ चे० ॥
भ्रमत भ्रमत ससार गहनबन, कीयो आनि बसेरो ॥ चे० ॥
मिथ्या मोह उदै तै समझो, इह सदन है मेरो ॥ चे० ॥
सद्गुरु वचन जोइ घर दीपक, मिटै अनादि अंधेरो ॥ चे० ॥
असख्यात परदेस ग्यान मय, ज्यो जानहु निज मेरो ॥ चे० ॥
नाना विकलप त्यागि आपको आप आप महि हेरो ॥
ज्यो 'मनराम' अचेतन परसों सहजै होइ निवेरो ॥

[३५२]

राग—मल्हार

रे जिय जनम लाहो लेह ॥
चरण ते जिन भवन पहुचै ।
दान दे कर जेह ॥ रे जिय० ॥१॥
उर सोई जामें दया है ।
अरु रूधिर को गेह ॥
जीभ सो जिन नाम गावै ।
सास सौं करें नेह ॥ रे जिय० ॥२॥
आख ते जिनराज देखैं ।
और आखै खेह ॥
श्रवन तें जिन वचन सुनि सुभ ।
तप तपै सो देह ॥ रे जिय० ॥३॥

सफल तन इह भांति है है।
और भांति न केह ॥
है सुखी मनराम ध्यावी।
कहै सदगुरु पाइ ॥ रे जिय० ॥७॥
[४५३]

राग–विलावल

अखीयां आजि पवित्र भई मेरी ॥ अखीयां ॥
निरखत बदन तिहारो जिनवर प्रमानंद विचित्र भई ॥
मेरी अखीयां० ॥१॥
आयो सु तुम दुवार आजि ही सफल भये मेरे पांय।
आजि ही सीस सफल भयौ मेरो भयो आजि सु तुमकों जाय ॥
मेरी अखीयां ॥२॥
सुनि बानी भवि जीव हितकरनी सफल भये सुन कान।
आजि ही सफल भयो मुख मेरो सुमरत तव भगवान ॥
मेरी अखीयां ॥३॥
आजि ही हिरदे सफल भयो मेरो ध्यान करत गुनजाय।
पूजित चरन तुम्हारो जिनवर सफल भये मोहि हाथ ॥
मेरी अखीयां ॥४॥
अबलग तुम मैं भेद न पायो दुख देखे विहुँ काल।
सेवग प्रभु मनराम उधारो तुम प्रभु दीन दयाल ॥
॥ मेरी अखीयां ॥५॥
[४५४]

राग—केदार

मैं तो या भव योंहि गमायो ॥
अहनिशि कनक कामिनी कारण ।
सबहिसु वैर बढायो ॥ मैं० ॥१॥
विरवहि के फन्दुवाय के राच्यो ।
मोहनी में उरझायो ॥
यौवन मद थे कवाय जु वाढे ।
परत्रिया में चित लायो ॥ मैं० ॥२॥
विस सेवत दया रस छारयो ।
लोभहि में लपटायो ॥
धक परी मोहि विद्यासागर ।
कहै जिनगुण नहीं गायो ॥ मैं० ॥३॥
[३५५]

राग—मांढ

तुम साहिब मैं चेरा, मेरे प्रभु जी हो ॥
बूडत हूँ संसार कूप मैं ।
काढो मोहि सवेरा ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
माया मिथ्या लोभ सोच पर ।
तीनूं मिलि मुझि घेरा ॥
मोह फासिका बंध डारिकै ।
दीया बहुत भटभेडा ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

गोती मांती जग के साथी ।
साहब है सुख केरा ॥
जम की तपति पड़े जब तन पर।
कोई न आवै नेरा ॥ प्रभु ॥ ३ ॥
मैं सेया बहु देव जगत के।
फल कछुया नहिं मेरा ॥
पर उपगारी सब जीवन को ।
नाम सुन्या मैं तेरा ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥
कैस्य सुभरा सुरथा मैं तब ही ।
तुमं चरणनि कू हेरा ॥
साहिब' ऐसी कृपा कीजे ।
फर न स्वो भव फेरा ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥
[३३६]

राग-होरी

समझि औसर पायो रे जिया ॥
तैं परकू करि मान्यौ पो तैं ।
आपा कू बिसरायो रे ॥ जिया० ॥१॥
एस बिधि पड़ि मोह की लारी।
इन्द्रिय सुख लपटायी रे ॥ जिया ॥ २ ॥
भ्रमत अनादि गयो चौरासी ।
अजहूँ थोर (छोर) न आया रे ॥ जिया ॥३॥

करत फिरत परकी चिंता तू ।
नाहक जन्म गमायौ रे ॥ जिया० ॥४॥

जिन साहिब की वाणी उरधरि ।
शुद्ध मारग दरसायो रे ॥ जिया० ॥५॥

[३५७]

राग—सोरठ

जग में कोई नही मित्तां तेरा ॥
तू समझि सोचकर देख सयाने ।
तू तो फिरत अकेला ॥ जग में० ॥१॥

सुपनेदा ससार वण्या है ।
हटवाडेदा मेला ॥
विनसि जाय अंजुली का जल ज्यूं ।
तू तो गर्व गहेला ॥ जग में० ॥२॥

रम दा माता कुमति कुमाता ।
मोह लोभ करि फैला ॥
ये तेरे सवही दुखदायी ।
भूलि गया निज गैला ॥ जग में० ॥३॥

अव तू चेत सभालि ज्ञान करि ।
फिरि नै मिलै यह वेला ॥

जिनवांणी साहिब उर धरि धरि।
पावो मुक्ति महेसा ॥ जग मैं ॥४॥

[१४८]

राग—जोगी रासा

जनमैं नाभि कुमार ।
बधाई जग मैं बाजही है ॥
मरुदेवी के आंगन माहीं ।
गावत मंगलाचार ॥ बधाई० ॥१॥

इन्द्राणी मिलि चौक पुरावत ।
भर भर मोतियन थाल ॥
तांडव नृत्य हरी जहां कीनौं ।
आनंद उमंग अपार ॥ बधाई ॥२॥

नरनारी पुरके आंगन माहीं ।
नांचत बांरबार ॥
नीर सु अगर अरगैजा बहु विधि ।
छिड़कत घर घर द्वार । बधाई ॥३।

भरत गज रतन बटत पाटंबर ।
जाचक जन कू सार ॥
इहि विधि हर्ष भयो त्रिभुवन मैं ।
कहत न आवत पार ॥ बधाई ॥४॥

कारण स्वर्ग मुक्ति को है यह।
सब जीवन हितकार ॥
'साहिब' चरण लागि नित सेवों।
ज्यों उतरो भवपार ॥ अधा६० ॥७॥

[३५६]

राग-सोरठ

भोर भयो, उठ जागो, मनुवा, साहब नाम सभारो ॥
सूता सूता रैन विहानी, अब तुम नींद निवारो।
मंगलकारी अमृतवेला, थिर चित काज सुधारो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥
खिन भर जो तू याद करेगो, सुख निपजेगो सारो।
वेला बीत्या है पछतावै, क्यूं कर काज सुधारो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥
घर व्यापारे दिवस वितायो, राते नींद गमायो।
इन वेला निधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमायो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥

[३६०]

राग-जोगी रासा

अवधू, सूता क्या इस मठ में।
इस मठ का है कवन भरोसा पड़ जावे चटपट में।
अवधू, सूता० ॥

छिनमें ताता छिनमें शीतल, राग शोक बहु घट में।

अवधू सूतां ॥

पानी किनारे मठ का वासा कवण विश्वास ये तट में।

अवधू सूतां० ॥

सूता सूता काल गमायो अब हूँ न जाग्यो तू घट में।

अवधू सूतां ॥

घरटी फेरी आटो खायो, खरची न बाँधी वट में।

अवधू सूतां ॥

इतनी सुनि निधि चारित मिलकर ज्ञानानन्द आये घटमें।

अवधू सूतां० ॥

[२६१]

राग–जोगी रासा

क्योंकर महल बनावे पियारे।

पांच भूमि का महल बनाया चित्रित रंग रंगाये पियारे।

क्योंकर० ॥

गोखे बैठे नाटक निरखे, तरुणी-रस ललचावे।

एक दिन जंगल होगा डेरा, नहिं तुम संग कछु आवे पियारे।

क्योंकर० ॥

तीर्थंकर गणधर बल चक्री जंगलवास रहावे।

तेहना पण मन्दिर नहि दीसे थारी कवन चलावे॥

क्योंकर ॥

हरि हर नारद परमुख चल गये, तू क्यों काल वितावै ।
तिनते नव निधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमावै पियारे ॥
क्योंकर० ॥

[३६२]

राग जोगी रासा

प्यारे, काहे कूँ ललचाय ।
या दुनियाँ का देख तमासा, देखत ही सकुचाय ।
प्यारे० ॥

मेरी मेरी करत बाउरे, फिरे जीउ अकुलाय ।
पलक एक में बहुरि न देखे, जल बुद की न्याय ॥
प्यारे० ॥

कोटि विकल्प व्याधि की वेदन लही शुद्ध लपटाय ।
ज्ञान-कुसुम की सेज न पाई, रहे अघाय अघाय ॥
प्यारे० ॥

किया दौर चहूँ ओर ओर से, मृग तृष्णा चित लाय ।
प्यास बुझावन बूद न पाई, यौं ही जनम गमाय ॥
प्यारे० ॥

सुधा-सरोवर है या घट मे, जिसते सब दुख जाय ।
'विनय' कहे गुरुदेव दिखावे, जो लाऊँ दिलठाय ॥
प्यारे० ॥

[३६३]

राग जिलो

चेतन ! अब मोहि दरसन दीजे ।
तुम दरसन शिव-सुख पामीजे तुम दरसन भव छीजे ॥
चेतन ॥

तुम कारन संजम तप, किरिया कहो कहां लौं कीजे ।
तुम दरसन बिनु सब या झूठी अन्तरचित्त न भीजे ॥
चेतन ॥

क्रिया मूढमति कहे जन कोई ज्ञान और को प्यारो ।
मिलत भावरस दोउ न चाखें तू दोनों तें न्यारो ॥
चेतन० ॥

सब में है और सब में नाही पूरन रूप अकेलो ।
आप स्वभावे वे किम रमतो, तूं गुरु अरु तूं चेलो ॥
चेतन० ॥

अकल अलख तू प्रभु सब रूपी तू अपनी गति जान ।
अगमरूप आगम अनुसारें सेवक सुजस बखाने ॥
चेतन० ॥

[१६४]

रागजिलो

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री ।
पारसनाथ कहो कोई ब्रह्मा सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पनारोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
राम कहो० ॥

निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रहिमान री।
कर्षे करम कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री॥
राम कहो० ॥

परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप 'आनन्दघन,' चेतनमय निष्कर्म री॥
राम कहो० ॥

[३६५]

राग-केदारो

विरथा जनम गमायो, मूरख।
रचक सुखरस वश होय चेतन, अपना मूल नसायो।
पाच मिथ्यात धार तू अजहूँ, साँच भेद नहिं पायो॥
विरथा० ॥

कनक-कामिनी आस एहथी, नेह निरन्तर लायो।
ताहू थी तूँ फिरत सुरानो, कनक बीज मनु खायो॥
विरथा० ॥

जनम जरा मरणादिक दुख मे, काल अनन्त गमायो।
अरहट घटिका जिम, कहो याको, अन्त अजहुँ नविआयो॥
विरथा० ॥

भम चौरासी पहरया चोलना भव भव रूप बनायो ।
बिन समकित सुधारस चाख्या गिणती कोइ न गिणायो ॥
बिरथा ॥

एते पर नवि मानत मूरख ए अचरिज चित आयो ।
चिदानन्द ते धन्य जगत में जिण प्रभु सूँ मन लायो ॥
बिरथा० ॥

[२६६]

राग–कनडी

अटके नयनां तिण चरणां हां हां हां मेरी बिलछपरी ॥

परि बहु राग तिण तनु निरख्यो ।
इक चित करत चढ़ भ्रम भटके ॥

भग भग सकल अंगमां रे पोख्यो ।
अधर अमृत रस गटके ॥ अटके ॥१॥

तृप्ति न होत रूप रस पीवत ।
लालच लगे कुच तटके ॥

नवल छबीसी मृग दृग निरखत ।
स्वजन नहीं चाहों अलीक मटके ॥ अटके० ॥२॥

अैसे करत करत नहिं छूटत ।
सेह सेह करि अनन्त भव भटके ॥

हरामुख सरिसे इम संगि दुखपायो ।
तामें संख्या नांहि इम भटके ॥ अटके ॥३॥

जिनगुरु आगम सीख अब उर धरि करि।
कीर्त्ति सुरेंद्र त्यजि शिवतिय सुख सटके॥
जिनवर चरन निरखि इन नयनन सू।
छाडत नाही जिम नव तिय घूघटके॥ अटके० ॥४॥

[३६७]

राग–मालकोश

इस भव का ना विसवासा, अणी वे॥
विजरी ज्यु तन छिण में नासै धन ज्यु जलहु पतासा।
अणी वे इस० ॥१॥
मात पिता सुत वधु सखीजन मित्र हितू गृहवासा।
पूरव पुन्य करि सब मिलिया सांझ अरुण सम भासा॥
अणी वे इस० ॥२॥
यौवन पाय तू मद छकि है सो मेघ घटा ज्यु छिन नासा।
नारी रमिवो सब जग चाहै ज्यु गज करन चलासा॥
अणी वे इस० ॥३॥
स्वारथ के सब गरजी जिनकी तू नित्य करत दिलासा।
आतम हित कू अब मन ल्यावो मेटि सबै मन सासा॥
अणी वे इस० ॥४॥
मरन जरा तुझि जोलग नाहीं सन्मुख है दुखरासा।
कीर्त्ति सुरेन्द्र करि निज हितकारिज जिनवर ध्यान हुलासा॥
अणी वे इस ॥५॥

[३६८]

राग-ख्याल तमाशा

रस मोह छोडा पणा नरक में दुख पाइ चंचल जीवडा रे।
विषै ये थारे दुखदाइ ॥

वनखंडी वन में गज भयो रे हथिनि मद रह्यो रे लुभाय।
आगर कुंजरी काटचे रे पडीयो खाडा रे मांहि ॥
चंचल० ॥१॥

मीन समद में तू भयो रे करतो केलि अपार।
रसना इन्द्री परवस रे मुउ पडा परि आइ ॥
चंचल ॥२॥

कमल माहि भंवरो मुवो रे घ्राण इन्द्री के सुभाय।
सूरज अस्त समै मुंदि गयो रे लोभी तम्या रे प्राण ॥
चंचल० ॥३॥

पतंग दीप में दुख भयो रे चक्षु इन्द्री के सुभाय।
लोभी चखि भसमो हुई रे अधिको लोभ सुभाव ॥
चंचल ॥४॥

वन मै मृग सरूप तू भयो रे, कानों सुनवो रे नादि।
मारय वधिक बाण सुणीया र बरहर कांप रे आइ ॥
चंचल ॥५॥

ज्यो इक इक इन्द्री सुख्याई रे सो भो मरमै अधिकार।
ज्यो पंचु इन्द्री सुख्याई रे सो ता नरक मैं जाइ ॥
चंचल ॥६॥

सो इरु इक इद्री वसि करी रै, सोही सुरगा मै जाइ।
ज्यो पाचु इन्द्री वसि करी रै, सो तो मुकत्या मै जाइ॥
चचल० ॥७॥

इन्द्री के जीत्या विना रै, सुख नही उपज हो रच।
देवाब्रह्म अैसै भनै हो, मन वच जानु हो सच॥
चचल० ॥८॥

[३६६]

राग–ढाल होली में

चेतन सुमति सखी मिल।
दोनों खेलो प्रीतम होरी जी॥
समकित व्रत की चौक वणावो।
समता नीर भरावो जी॥
क्रोध मान की करो पोटली।
तो मिथ्या दोष भगावो जी॥ चेतन० ॥१॥
ग्यान ध्यान की ल्यौ पिचकारी।
तो खोटा भाव छुडावो जी॥
आठ करम को चूरण करि कै।
तो कुमति गुलाल उड़ावो जी॥ चेतन० ॥२॥
जीव दया का गीत राग सुणि।
सजम भाव वधावो जी॥
वाजा सत्य वचन ये वोलो।
तो केवल वाणी गावो जी॥ चेतन० ॥३॥

दास सीख तो सेवा कीज्यो ।
तपस्या करो मिठाई की ॥

देवाशंड या रवि पाई है ।
तौ मनै बच भ्रमा खोई जी ॥ देखन ॥४॥

[२७]

राग–मारु

करौं आरती आतम देवा ।
गुण परजाय अनन्त अभेवा ॥ करू ॥ १ ॥

जामैं सब जग वह जग मांही ।
वसत जगत मैं जग सम नाहीं ॥ करू० ॥ २ ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावै ।
साधु सकल जिह के गुण गावै ॥ करू० ॥ ३ ॥

जिन जानै जिय थिर भव डोलै ।
जिहि जानै छिन शिव-पट खोलै ॥ करू ॥ ४ ॥

व्रती अव्रती विध व्यौहारा ।
सो तिहुं काल करम सौ न्यारा ॥ करू ॥ ५ ॥

गुरु शिष्य उभै वचन करि कहिये ।
वचनातीत दसा तिस लहिये ॥ करू ॥ ६ ॥

सुपर भेद कौ खेद न जेता ।
आप आप मैं आप निवेरा ॥ करू ॥ ७ ॥

सो परमातम पद सुखदाता ।
हौह बिहारीदास विख्याता ॥ करु० ॥ ८ ॥

[३७१]

राग–परज

सखी म्हाने दीज्यों नेमि वताय ॥
उभी राजुल अरज करै छै ।
नेमि जी कू सेऊ निहार ॥
सखी० ॥१॥
सावली सूरति मोहनी मूरति ।
गलि मोतियन कौं हार ॥
सखी० ॥२॥
समुद्रविजै सिवादेवी कौं नंदन ।
जादु – कुल – सिरदार ॥
सखी० ॥३॥
या विनती सुणि रेखा की ।
आवगमन निवार ॥
सखी० ॥४॥

[३७२]

राग–सारंग

हे काहूँ की मैं वरजी ना रहूँ ।
सग जाऊंगी नेमि कुंवार के ॥
सब उपाय करता राखण कौं ।
मो मन और विचार ॥

हूं रंग राची नमि पिया के।
    झूठि संसार असार ॥ हूं कबहूं ॥ १ ॥

सुनियो री म्हारी सखी हे सहली।
    मात पिता परिवार ॥ हे कबहूं ॥ २ ॥

कहा न पइत घडी पल छिन माहूं।
    सबसे बहुत पुकार ॥
रखा तू ही हितू हमारो।
    पहुचावो गिरनार ॥ हे कबहूं ॥ ३ ॥

[३७२]

राग–सारग

हेरी मोहि तजि क्यों गये नमि प्यारे ॥

कैसी चूक परी कहा हम सू
    प्रीति छांडि मम प्यारे ॥ हेरी मोहि ॥ १ ॥

कैस करि धीर धरु अब सजनी
    मरि नहि नैन निहारे।
आज्ञा यो हम जाव प्रभु पै
    पायन परैं हों विहारैं ॥ हेरी मोहि ॥ २ ॥

झूठो दोष दियो पशुवन सिर
    मन वैराग्य विचारैं ।

करम गति सूक्ष्म गति रेखा,
क्यों हो टरत न टारै ॥ हेरी मोहि० ॥ ३ ॥

[३७४]

राग-काफी होरी

जाऊंगी गढ गिरनारि सखीरी,
अपने पिया से खेलूंगी होरी ॥

समकित केसर अवीर अरगजा,
ज्ञान गुलाल उदार ॥
सप्त तत्व की भरि पिचकारी,
शील सलिल जल धार ॥ सखी० ॥ १ ॥
दश विधि धर्म को मादल गुंजत,
गुण गण ताल अपार ॥
अशुभ कर्म की होरी वनाई,
ध्यान दियो अंगार ॥ सखी० ॥ २ ॥
इन विधि होरी खेलत राजुल,
पायौ स्वर्ग द्वार ॥
कहत हीराचन्द होली खेलो,
महिमा अगम अपार ॥ सखी० ॥ ३ ॥

[३७५]

राग–केदारो

वसि कर इन्द्रिय भोग-भुजंग
इन्द्रिय भोग-भुजंग ॥

सागर दमनी करि स्पर्शन तें
बंधी पड़त मतंग ॥

रसना के रस मछली गले का
खींचत मरण उमंग ॥ वसि० ॥ १ ॥

कमल परिमल नासा रत है
प्राण गमावत भृंग ॥

नयन रूप मोहे मतवाले
दीपक दाझ पतंग ॥ वसि ॥ २ ॥

कर्णेन्द्रिय वश घंटा रव तें
पारधि हनत कुरंग ॥

इक इक विषय करि देखा तो
क्या कहुं पंच का संग ॥ वसि ॥ ३ ॥

मात्र सुआवत हंसे फिर रोवे
त्यों इनका परसंग ॥

कहत हीराचन्द इन जीते सो
पावे सौख्य अभंग ॥ वसि ॥ ४ ॥

राग-होरी

द्रग ज्ञान खोल देख जग मे कोई न सगा ।
एक धर्म बिना सब असार इम में बगा ॥

सुत मात तात भाई बधु घर तिया जगा ।
ससार जलधि में सदा ए करत है दगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ १ ॥

धन धान दास दासी नाग चपल तुरंगा ।
इन्द्रजाल के समान सकल राज नृप खगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ २ ॥

तन रूप आयु जोबन बल भोग संपदा ।
जैसे डाभ-अणी-बिंदु और नयन ज्यों ठगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ३ ॥

अमुलिक सुत हीरालाल दिल लगा ।
जिनराज जिनागम सुगुरू चरण में पगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ४ ॥

[३७७]

राग—सोरठ

तुम बिन इह कृपा को करे ॥
जा प्रसाद अनादि सन्चित करम-गन थरहरे ।
॥ तुम० ॥ १ ॥

मिटी कुधि मिथ्यात सब विधि ग्यान सुधि विस्तरै ।
भरत निज आनन्द पूरण रस स्वभाविक भरै ॥
॥ तुम० ॥ २ ॥

प्रगट भयो परकास चेतन व्यक्त क्यों हो न दुरै ।
वास परणति शुद्ध चेतन लखै विरला धरै ॥
॥ तुम ॥ ३ ॥

[३७८]

राग-देशी चाल

(जोगीया मेरे द्वारे अब कैसी धूनी लाई ।)

गई कुमती मेरे पीउ को कैसी सीख दई ॥
स्वपर जानि पर ही संग राचत ।
नाचत ज्यों चकई ॥ गई ॥ १ ॥

रत्नत्रय निज निधि बिगार कैं ।
खोवत जन्म कई ॥
रंक भये घर घर डोलत ।
अब कैसी निरमई ॥ गई ॥ २ ॥

यह कुमति म्हारी जनम की बैरिनि ।
पीव कीनी आपुमई ॥
पराधीन दुख भोगत भींदू ।
निज सुख विसरि गई ॥ गई ॥ ३ ॥

'मानिक' अरु सुमति अरज सुनि।
सतगुरु तो कृपा भई॥
बिछुरे कत मिलावहु स्वामी।
चरण कमल बलि गई॥ दई०॥ ४॥

[३७६]

राग—झंझोटी

आकुलता दुखदाई, तजो भवि॥
अनरथ मूल पाप की जननी।
मोहराय की जाई हो। आकुलता० ॥१॥
आकुलता करि रावण प्रतिहरि।
पायो नर्क अघाई हो॥
श्रेणिक भूप धारि आकुलता।
दुर्गति गमन कराई हो॥ आकुलता० ।२॥
आकुलता करि पाडव नरपति।
देश देश भटकाई हो॥
चक्री भरत धारि आकुलता।
मान भग दुख पाई हो॥ आकुलता० ॥३॥
आकुलता करि कोटीध्वज हूँ।
दुखी होइ बिललाई हो॥
आकुल बिना पुरुष निर्धन हूँ।
सुखिया प्रगट लखाई हो॥ आकुलता ॥४॥

मिटी कुधि मिथ्यात सम विधि ग्यान सुधि विरतरै ।
भरत निज आनन्द पूरण रस स्वभाविक भरै ॥
॥ तुम० ॥ २ ॥

प्रगट भयो परकास चेतन अखत क्यों हो न दुरै ।
जास परणति सुद्ध चतन करै विरला भरै ॥
॥ तुम ॥ ३ ॥

[३७८

राग-देशी चाल

(जोगीया मेरे द्वारे अब कैसी भूली दई ।)

दई कुमती भरे पीऊ की कैसी सीख दई ॥
स्वपर छांडि पर ही संग राचत ।
नाचत क्यों चकई ॥ दई ॥ १ ॥

रतनत्रय निज निधि बिगाय कैं ।
बोवत धर्म बई ॥
रंक भये घर घर डोलत ।
अब कैसी सिरमई ॥ दई ॥ २ ॥

यह कुमति मदारी अगम की बेरिनि ।
पीय कीनी आपुमई ॥
पराधीन दुख भोगत सौंचू ।
निज सुध बिसरि गई ॥ दई ॥ ३ ॥

'मानिक' अरु सुमति अरज सुनि ।
सतगुरु तो कृपा भई ॥
बिछुरे कत मिलावहु स्वामी ।
चरण कमल बलि गई ॥ दई० ॥ ४ ॥

[३७६]

राग—झंझोटी

आकुलता दुखदाई, तजो भवि ॥
अनरथ मूल पाप की जननी ।
मोहराय की जाई हो । आकुलता० ॥१॥
आकुलता करि रावण प्रतिहरि ।
पायो नर्क अधाई हो ॥
श्रेणिक भूप धारि आकुलता ।
दुर्गति गमन कराई हो ॥ आकुलता० । २॥
आकुलता करि पाण्डव नरपति ।
देश देश भटकाई हो ॥
चक्री भरत धारि आकुलता ।
मान भंग दुख पाई हो ॥ आकुलता० ॥३॥
आकुलता करि कोटीध्वज हूँ ।
दुखी होइ बिललाई हो ॥
आकुल बिना पुरुष निर्धन हूँ ।
सुखिया प्रगट लखाई हो ॥ आकुलता ॥४॥

पूजा आदि सब आरम्भ मैं।
विघन करण बुधिगाद हो॥
मानिक आकुलता बिन मुनिवर।
थिर आकुल बुधि पाई हो॥ आकुलता०॥४॥

[३८०]

राग-बसन्त

जन औद या विधि मन की लगावै।
तब परमातम पद पावै॥
प्रथम सप्त तत्वनि की सरधा।
परत न संशय आवै॥
सम्यक् ज्ञान प्रमान पवन वश।
भ्रम पातक विघटावै॥ जब ॥१॥
वर चरित्र निज मैं निज थिर करि।
विषय भोग बिरचावै॥
एकदेश वा सकलदेश धरि।
शिवपुर पथिक कहावै॥ जब ॥२॥
द्रव्यकर्म नोकर्म भिन्नकरि।
रागादिक बिनसावै॥
इष्ट अनिष्ट बुधि तजि पर मैं।
शुद्धातम को ध्यावै॥ जब ॥३॥

नय प्रमाण निक्षेप करण के।
सब विकल्प छुटकावै ॥
दर्शन ज्ञान चरण मय चेतन ।
भेद रहित ठहरावै ॥ जय० ॥४॥
शुक्ल ध्यान धरि घाति घात करि ।
केवल ज्योति जगावै ॥
तीन काल के सकल ज्ञेय जुति ।
गुण पर्यय झलकावै ॥ जय० ॥५॥
या क्रम सौ वड भाग्य भव्य ।
शिव गये जाहि पुनि जावै ॥
जयवतो जिन वृष जग मानिक।
सुर नर मुनि जश गावै ॥ जय० ॥६॥

[३८१]

राग-सोरठ

आकुल रहित होय निश दिन,
कीजे तत्य विचारा हो ॥
को ? मैं, कहा ? रूप है मेरा।
पर है कौन प्रकारा हो ॥ आकुल० ॥ १ ॥
को ? भव कारण वंध कहा ।
को ? आश्रव रोकन हारा हो ॥

सिपत कम-बंधन काहे सौं।
स्थानक कौन हमारा हो ॥ आकुल ॥ २ ॥
इम अभ्यास किये पावत है।
परमानंद अपारा हो ॥
मानिकचंद यह सार जानिके।
कीज्यौं बारंबारा हो ॥ आकुल ॥ ३ ॥
[३८२]

राग-सोरठ

आतम रूप निहारा।
शुद्ध नय आतम रूप निहारा हो ॥
जाकी बिन पहिचानि।
जगत में पाया दुःख अपारा हो ॥ आतम० ॥ १ ॥
बंध पस बिन एक सिवत।
है निर्विरोध निरधारा हो ॥
पर तें भिन्न अभिन्न अनोपम।
ज्ञायक चित हमारा हो ॥ आतम ॥ २ ॥
भेद ज्ञान-रवि घट परकासत।
मिथ्या तिमिर निवारा हो ॥
मानिक बलिहारी जिनकी जिन।
निज पद मांहि मम्हारा हो ॥ आतम ॥ ३ ॥
[३८३]

राग–सोरठ

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि ॥
धर्म थान जहँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार ॥१॥

ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, वानी वरषा धार ।
झेलत प्रेम प्रीति सों जेते, धोवत करम विकार ॥२॥

तत्वन की चरचा शुभ चोवो, चरचौ वारवार ।
राग गुलाल अबीर त्याग भरि रंग रंगो सुविचार ॥३॥

अनहद नाद अलापो जामैं, सोहे सुर झंकार ।
रीझ मगनता दान त्याग पर 'धर्मपाल' सुनि यार ॥४॥

[३८४]

राग–विहाग

जिया तू दुख से काहे डरे रे ॥
पहली पाप करत नहि शक्यो अब क्यों सास भरे रे ॥ १ ॥
करम भोग भोगे ही छुटेंगे शिथिल भये न सरे रे ।
धीरज धार मार मन ममता, जो सब काज सरे रे ॥ २ ॥
करत दीनता जन जन पे तू कोईयन सहाय करे रे ।
'धर्मपाल' कहै सुमरो जगतपति जे सब विपति हरे रे ॥ ३ ॥

[३८५]

राग—रामकली

आयौ सरन तिहारी जिनेसुर ॥
कृपा कर राखौ निज चरनन
आवागमन निवारी ॥ जिने ॥ १ ॥
करम वेदना ज्यारों गति की
सो नहिं परत सहारी ॥
तारण विरद तिहारो कहिये
सुगति मुकति दातारी ॥ जिने ॥ २ ॥
काल चौरासी जौनि फिरयौ हूँ,
मिथ्यामति अनुसारी ॥
करुणा हेतु नइ करि मो पर
अब प्रभु लेहु उबारी ॥ जिन० ॥ ३ ॥
आयो बरा मुकत मणि जिनवर
नेमिनाथ अवतारी ॥
तुम ही हो त्रिभुवन के पालक,
विनोदीलाल बात हमारी ॥ जिन ॥ ४ ॥
[३८६]

राग—काफी

प्रभु बिन कौन उतारै पार ।
भव जल अगम अपार ॥ प्रभु ॥

कृपा तिहारी तें हम पायो ।

नाम मन्त्र आधार ॥ प्रभु० ॥ १ ॥

तुम नीको उपदेस दीयो ।

इह सब सारन को सार ॥

छलने होइ चले तेई निकसे ।

बूडे तिन सिर भार ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

उपगारी कों ना विसरिये ।

इह धरम सुखकार ॥

'धरमपाल' प्रभु तुम मेरे तारक ।

किम प्रभु लौं उपगार ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३८७]

राग–आसावरी

अरे मन पापनसों नित डरिये ॥

हिंसा झूठ वचन अरु चोरी, परनारी नहीं हरिये ।

निज परको दुखदायन डायन तृष्णा वेग विसरिये ॥ १ ॥

जासों परभव बिगड़े वीरा ऐसो काज न करिये ।

क्यों मधु–बिन्दु विषय को कारण अंधकूप में परिये ॥ २ ॥

गुरु उपदेश बिमान बैठके यहाते वेग निकरिये ।

'नयनानन्द' अचल पद पावे भवसागर सो तिरिये ॥ ३ ॥

[३८८]

राग—जगला

जिस विधि किय करम चकचूर ।
सांकी उत्तम क्षमा पे त्यावौंमो म्हाने आवैजी ॥
एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर पास न तिलतुष मात्र हजूर ।
दूजे जीव दयाके सागर तीजे संतोषी भरपूर ॥ १ ॥
चौथे प्रभु तुम हित उपदेशी तारण तरण जगत मशहूर ।
कोमल वचन सरल सत वक्ता निर्लोभी संजम तप-शूर ॥ २ ॥
कैसे ज्ञानावरण निवारयो कैसे गारयो अदरशन चूर ।
कैसे मोह-मल्ल तुम जीते कैसे किये चतारौं घातिया दूर ॥ ३ ॥
त्यागी उपाधि हो तुम साहिब आकिंचन व्रतधारी मूल ।
शेष अठारह दूषण तजके, कैसे जीते काम क्रूर ॥ ४ ॥
कैसे केवल ज्ञान उपायो अन्तराय कैसे कियो निमूल ।
सुरनर मुनि सेवैं चरण तिहारे, तो भी नहीं प्रभु तुमको गरूर ॥ ५ ॥
करत दास अरदास नैमसुख सेवी वर दीजे मोहे दान जरूर ।
जन्म जन्म पद-पंकज सेऊं और नहीं कछु चाहूं हजूर ॥ ६ ॥

[३८६]

राग — जगला

जिस विधि कीने करम चकचूर-
सो विधि बतलाई तेरा ।
भरम मिटाऊं वीरा ।
जिस विधि कीने करम चकचूर

सुनो सत अर्हंत पथ जन ।
स्वपर दया जिस घट भरपूर ॥
त्याग प्रपच निरीह करै तप ।
ते नर जीते कर्म क्रूर ॥ १ ॥

तोडे क्रोध निठुरता अघ नग ।
कपट क्रूर सिर डारी धूर ॥
असत अ ग कर भग बतावे ।
ते नर जीते कर्म करूर ॥ २ ॥

लोभ कदरा के मुखमे भर ।
काठ असजम लाय जरूर ॥
विषय कुशील कुलाचल फूंके ।
ते नर जीते करम करूर ॥ ३ ॥

परम क्षमा मृदुभाव प्रकाशे ।
सरलवृत्ति निरवाछक पूर ॥
धर सजम तप त्याग जगत सब ।
ध्यावैं सतचित केवलनूर ॥ ४ ॥

यह शिवपथ सनातन सतो ।
सादि अनादि अटल मशहूर ॥
या मारग 'नैनानन्द" हु पायो ।
इस विधिजीते कर्म करूर ॥ ५ ॥

[३६०]

राग—प्रभाती

मेटो विथा हमारी प्रभूजी मेटो विथा हमारी ॥
मोह विषमज्वर आन सतावी।
वेत महा दुःखमारी ॥
या तो रोग मिटनको नाहीं।
औषध विना तिहारी ॥ १ ॥
तुम ही वैद धन्वन्तर कहिये।
तुमही मूल पसारी ॥
घट घट की प्रभु आप ही जानो।
क्या जाने वैद अनारी ॥ २ ॥
तुम हकीम त्रिभुवनपति नायक।
पाऊँ टहल तुम्हारी ॥
सकल दरद करया जिनजी का।
नैनसुख शर्ण तिहारा ॥ ३ ॥
[३६१]

राग—काफी कनडी (ताल एक)

जिनराज थे म्हारा मुक्तदार ॥
और सकल संसार बरावत।
तुम शिव मग दातार ॥ जिन ॥ १ ॥

तुमरे गुण की गणना महिमा।
करि न सकै गणधार॥
बानी श्रवण रूप निरखत ए।
दोऊ ही मो हितकार॥ जिन०॥ २॥
दुखद कर्म वसु मैं उपजाये।
ते न तजैं मेरी लार॥
दूरि करन की विधि अब समझी।
तुमसों करि निरधार॥ जिन०॥ ३॥
स्वपर भेद लखि रागद्वेप तजि।
सवर धारि उदार॥
करम नाशि जिन पाय प्रभुढिग।
नयन लहौ भवपार॥ जिन०॥ ४॥

[३६२]

राग-ललित

जिया वहु रगी परसंगी वहु विधि भेप वनावत॥
क्रोध मान छल लोभ रूप ह्वै।
चेतन भाव दुरावत॥ जिया०॥ १॥
नर नारक सुर पशु परजै धर।
आकृति अमित मिखावत॥
सपरस रस अरु गध वरण मय।
मूरतिवत लखावत॥ जिया०॥ २॥

कबहूँ रंक कबहूँ है राजा ।
निरधन सधन कहावत ॥ जिया० ॥ ३ ॥
इह विधि विविधि अवस्था करि करि ।
मूरख जन भरमावत ॥
जिनवानी परसाद पायकै ।
चतुरसुजनजस गावत ॥ जिया ॥ ४ ॥
[१६३]

राग–मारु

चलै जात पाया परस ज्ञान हीरा ॥
दुख दारिद्र सुकृत सुकृत ।
दूरि भई पर पीरा ॥ चलै ॥ १ ॥
सिव वैराग्य विवेक पथ परि ।
बरषत सम रस मीरा ॥
मोह धूलि सह जात जगमग्यो ।
निर्मल ज्योति गहीरा ॥ चलै ॥ २ ॥
अखिल अनादि अमल अनोपम ।
निज विधि गस गम्भीरा ॥
अरस अगन्ध अपरस अनौसम ।
अचल अभेद अचीरा ॥ चलै ॥ ३ ॥
अरूप्य सुपेत न स्वेत हरित दुति ।
स्याम वरण सु न पीरा ॥

आयत हाथ काच मम मूंछ।
पर पट आदि शरीरा ॥ चले० ॥ ४ ॥
जासु उद्योत होत शिव सन्मुख।
छोडि चतुर्गति फीरा ॥
देवीदास मिटै तिनही की।
सहज विषम भव पीरा ॥ चले० ॥५॥

[३९४]

राग-सोहनी

इस नगरी में किस विधि रहना,
नित उठ तलब लगावेरी रहना ॥
एक कुवे पाचो पणिहारी,
नीर भरें सब न्यारी न्यारी ॥ १ ॥
बुर गया कुवा सूख गया पानी,
विलख रही पाचो पणिहारी ॥ २ ॥
बालू की रेत ओसकी टाटी,
उड गया हस पडी रही माटी ॥ ३ ॥
सोने का महल रूपे का छाजा,
छोड चले नगरी का राजा ॥ ४ ॥
'घासीराम' सहज का मेला।
उड गया हाकिम लुट गया डेरा ॥ ५ ॥

[३९५]

राग—भैंरू

मोर भयो उठि भज रे पास।
जो चाहे तू मन सुख वास॥
चंद किरण छबि मंद परी है।
पूरब दिशि रवि किरण प्रकास॥ मोर ॥१॥
ससि कर विगत भये हैं तारे।
निशा छारत है पति आकासा॥ मोर० ॥२॥
सहस किरण चहुँ दिस पसरी है।
कमल भये बन किरण विकासा॥ मोर० ॥३॥
पक्षीगन मास महण कु चले।
तमचुर बोलत है निज भास॥ मोर ॥४॥
आलस तजि भजि साहिब कू।
कहे जिन हर्ष धर्म सु भास॥ मोर ॥५॥
[३६६]

राग—कनड़ी

मेरी कहणी मानि ले जीवरा रे॥
दुलभ नर भव कुल श्रावक को जिन धर्म दुलभ जानि ले॥ जीवरा रे ॥१॥
जिहि बसि नरकादिक दुखपावों तिहि विधि को अब भानिजै।
सुर सुख मुक्ति मोक्षफल लहिये ऐसी परणति ठानि लें। जीवरा० रे ॥२॥

पर सौं प्रीति जानि दुखदैनी आतम सुख पिछानि लै।
आश्रव बंध विचार करीनें नश्वर हिय मैं आनि लै ॥
जीयरा रे ॥३॥

दरसण ग्यान मई अपनो पद, तासौं रुचि की ठानि लै।
सहज परम की होय निरजरा, ऐसो उदिम ठानि लै ॥
जीयरा रे० ॥४॥

मुनि पद धारि ग्यान केवल लहि, सिवतिय सौं हित मानि लै।
किसनसरूप परतीति आनि अब, सद्गुरु के वच मानि लै ॥
जीयरा रे० ॥५॥

[३६७]

राग-गोडी

साधो भाई अब कोठी करी सराफी।
बडे सराफ कहै ॥
भव विस्तार नगर के भीतर।
वणिज करण को आए ॥ साधो० ॥१॥
कुमति कुग्यान करी अति जाजिम।
ममता टाट विछाया ॥
अधिक अग्यान गद्दी चढि बैठे।
तकिया भरम लगाया ॥ साधो० ॥२॥
मन मुनीम आनोवर कीन्हा।
औगुन पारिख राखा ॥

इ त्री पंच लगावे पठाई ।
लोभ बसात सु भासा ॥ साधो० ॥३॥

अबे सुभाव बीवा रुप्रनामा ।
तिस्ना बड़ी बधाई ॥

राग दोष की रोकड़ राखी ।
पर निंदा बड़बाई ॥ साधो० ॥४॥

आठ करम आड़तिये भारी ।
साहुकार सवाये ॥

पुन्य पाप की हुन्डी पठाई ।
सुख दुख दाम कमावे ॥ साधो ॥५॥

महा मोह बीमी बड़वारी ।
कांटा कपट पसारा ॥

काम क्रोध का तोला कीन्हा ।
तोला सब संसारा ॥ साधो० ॥६॥

अब हम कीना ग्यान कड़ेवा ।
सतगुर खेला ठाया ॥

सहजराम कहै या बानिज मैं ।
नफा हाथ न कछु आया ॥ साधो० ॥७॥

[३६८]

राग-ईमन

बहुरि कब सुमरोगे जिमराज हो ॥

औसर बीति जायगो तब ही
पछिते होवि न काज ॥ बहुरि ॥ १ ॥

बालापन ख्यालन मैं खोयो,
तरुनायो तियराज ॥
विरध भये अजहूँ क्यौ न समरों,
देव गरीबनिवाज ॥ बहुरि० ॥ २ ॥

मिनषा जनम दुर्लभ पै है,
अरु श्रावग कुल काज ॥
औसो संग बहुरि नहीं मिलि है,
सुन्दर सुघर समाज ॥ बहुरि० ॥ ३ ॥

माया मगन भयो क्या डोलै,
देखि देखि गज बाज ॥
यह तौ सब सुपने की सपति,
चुरहलि कौ सो साज ॥ बहुरि० ॥ ३ ॥

पाच चोर तेरौ घर मोसै,
तिन कौ करो इलाज ॥
अब बस पकरि करो मनवा को,
सर्वाहन को सिरताज ॥ बहुरि० ॥ ५ ॥

औरन को कछु जात नाहि न,
तेरो होत अकाज ॥
लालचन्द विनोदी गावै,
सरन गहे की लाज ॥ बहुरि० ॥ ६ ॥

[३६६]

राग–ललित

कहिये को कहिन की होय ॥
आप आप में परगट दीसे
बाहिर निकस न पावे कोइ ॥ कहिये ॥ १ ॥
वचन राशि सब पुद्गल परजै
पुद्गल रूप नहीं पद सोय ॥ कहिये ॥ २ ॥
निर विकलप अनुभूति सासती
मगन सुज्ञान ध्यान अस सोय ॥ कहिये ॥ ३ ॥
[४०]

राग–ख्याल तमाशा

क्रिया तुम चारी त्यागोगी बिन दिया मत अनुरागोगी ॥
पंच पाप के मध्य विराजे नाम सुनत दुख भाजे ।
हिंदू मियापी अविचार भाजे सुख सुपने नहिं जागे ॥ १ ॥
राजा बचे लोकों मंहे सज्जन पंच विहरे ।
पंच भेद गुण समझ तजो अब पवस्व विहारी मंहे ॥ २ ॥
प्राण समान काम परधन को मत कोई हरन विचारो ।
हिंसा ते भी बडो पाप है यह भाखी गणधारो ॥ ३ ॥
सम्यक्पोष पावें दुख पावे और भी दुगति दुखावे ।
'पारस' त्याग किया सुख उपजे गोड लोक कहलाये ॥ ४ ॥
[४१]

शब्दार्थ

१ वृषभ—प्रथम तीर्थङ्कर भगवान आदिनाथ। ससारार्णवतार—ससार रूपी समुद्र के तारने वाले। नाभिराय—भगवान आदिनाथ के पिता। मरुदेवी—भगवान आदिनाथ की माता, धनुप—चार हाथ अथवा दो गज प्रमाण एक धनुप।

२ नेम—२२ वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ, श्रीकृष्ण के चचेरे भाई। गिरिनारि—जूनागढ के पास गिरनार पर्वत, इसका नाम 'उज्जयन्त' भी है। सारग—मृग समूह। सारगु—कामदेव। सारंगनयनि—मृगनयनी। ततमत—तन्त्रमन्त्र। सावरे—श्यामवर्ण वाले नेमिनाथ। राजुल—राजा उग्रसेन की पुत्री जिसका नेमिनाथ के साथ विवाह होने वाला था।

३ मनमोहन—नेमिनाथ। वोहरे—लौट गये। पोकार—पुकार। पलरति—रत्ती भर, बिल्कुल। तानो—व्यंगात्मक शब्द। दिवाजे—महाराजा। सारगमय—धनुप युक्त। धूनी ताने—तीर साधे हुए। छोरी—छोडी। मुगति वधू विरमानो—मुक्ति रूपी स्त्री से रमने को।

४ हलधर—बलराम। हरषीयनसू—इनसे हर्षित हुये। चन्द्र वदनी—राजुल। थीर—स्थिर।

५. मरिग्गा–नरेन्द्रराजा। रजत है–धूल के समान लगा है। मंथर–शंकर कल्याणकारी।

६ सागनि–आगम। नेरे–पास। धीर–धीरज का सूचक। गुपति–गुप्त। निठोर–निष्ठुर।

७ बरज्यो–मना करने पर। मतिफोर–ज्ञान को ठुकराकर।

८ मयमन–शृंगार। कमरा–चमक। पोर्यु–पिरोती है। गुननी–गुणों की। बेरी–माला। गये–हाथ। कुरंगिनी–हरिणी। सर–शर बाण।

९ सुदरान–सुन्दर है दर्शन जिनका–ऐसा सेठ सुदर्शन। अभिया रानी–अभया रानी–जो सेठ पर मोहित हो गई थी।

१० हरिवदनी–चन्द्रवदनी राजुल। हरि को तिलक–हरिका तिलक। हरि–नेमिनाथ। कंवरी–कुमारी राजुल। हरी–हरा अथवा पीला रंग। बादल–कानों का गहना। हरि–हरता कर। अवनि–कान। हरि–सूर्य चन्द्रमा। हरि सुता सुत–राजुल–नेमि सिंह के बच्चे बच्ची। द्विज–चन्द्रमा। चितुक–ठोडी। सुगमस–कमल। देही–शरीर। हरी गमनी–सिंह की सी चाल वाली। कुवरि–प्रताप। बैनी–नेत्र। लगनी–लगने लगे।

११ पैनीसे–पीले और मीले। नरपभादी–सुन्दर वस्त्र को साह कु–वर। मान मरोरी–मान को मरोड़ कर।

१२ राका-पूर्णिमा। शशधर-चन्द्रमा। जनक सुता-सीता। वारिज-नेत्र रूपी कमल। वारी-पानी, आसू। विदर-विदर्भ। सीआ-सीता। मंते-सलाह।

१३. निमिष-आख मीचने जितना समय। चरिपमो-अर्थ चराचर। सारगधर-राम।

१४ बोहोरी-वापिस, लौटकर। समुद्र्विजय-नेमिनाथ के पिता। इन्दु-चन्द्रमा। छारि-छाडि। चरे-चढे।

१५ पास जिनेश-जिनेन्द्र देव, २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ। फणेदा-सर्प का फण। कमठ-भ० पार्श्वनाथ का पूर्व भव का वैरी-एक असुर। भविक-भव्यजन। तमोपह-अन्धकार नष्ट करने वाले। भुविज-दिविजपति-भूपति इन्द्र। वामानदा-वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ।

१६ निवाजत-कृपा करना। महीरूह्-कल्पवृक्ष। सारग-मयूर।

१७ वाधि-वृथा। विषे-विषय भोगों मे। कूट-कूट-नीति। निपट-बिल्कुल। बिटल-बदमाश। विघटायो-घटाया। मोही-मुझसे।

१८ चिन्तामणि-सब मनोरथ पूर्ण करने वाला रत्न। बिरद-यश, कर्त्तव्य। निबहिये-निभाइये। बिकाने-बिक गये।

मनमथु-कामदेव। प्रीतपाले-रक्षा करे। खटुकाई-षट् काय के जीव। फणिपति-फणीन्द्र। पाई-पार। करन-इन्द्रियां। अतिसाई-अतिशय युक्त।

२८ फनी फणिपति। बिनु अ बर-बिना वस्त्र-दिगम्बर। सुभ करनी-शुभ करने वाले। तरुन तरनी-तरुण सूर्य-मध्यान्ह काल का सूर्य। वसुरस-आठ प्रकार का रस। साधुपनी-साधुपन। दुरितु-पातक।

२६ सरवरि-बराबरी। जडरूप-मतिहीन। पकज-कमल। हिम-पानी। अमृत श्रवनि-अमृतमय उपदेश सुनने के लिये। सिरि वसनी-वैभवमय आवास।

३० सिराइ-प्रसन्न होना। सहताइ-संतोषित। पराछित-दूर जाते हैं। पसाइ-प्रसाद। उपसमहि-शात। मारी-महामारी। निरजरहि-निर्जरा होना, धीरे २ समाप्त होना।

३१ सक्र-इन्द्र। चक्रधर-चक्रवर्ति। धरन प्रमुख-धरणी प्रमुख, राजा। बहि रग-बाह्य। सग-परिग्रह। परिसह-परीषह।

३२ कल्याणक-गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के समय होने वाले महोत्सव। सचीपति-इन्द्र। सिवमारग-मोक्ष मार्ग। समोसरन-केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद-उपदेश देने

की सभा। सिरिराय—श्री जिनराज। केवल-कलपज्ञान-पूर्ण ज्ञान। मगमग—झूमते हुए।

१३—निरंबर निवस्त्र। कटाक्ष-कटाक्ष।

१४ सासति—दण्ड देना। वधु—वध हिंसा। मृषा-मूठी। विष वधू—वेश्या। अविद्या अविद्या। संतान-परम्परा।

१५ संवत—बराबर रहने वाला। पारे—पावे प्राप्त करे। मारुत—वहता। निवेरो—हरने वाले। कुमुद-विरोधि कमलों के मुर्झाने वाला चन्द्रमा। कुसी कुल सागर—सागर के साथ घटन पतन वाला। भरे—बहता है। घन—बिन्दु।

१६ करम—कम। विगोये—वृथा खोता है। चिन्तामणि रत्न। बाइस को—काग उड़ाने को। कुंजर हाथी। धूप—धम। गांवो—मोह छिपा। मिरग—मृग। मानि—मस्त। कंदर्प—कामदेव।

१७ भरसात—आलस्य करता है। चतुर गति-देव मनुष्य तिर्यंच और नरक गति। विपति—भ्रम। विरमाय—रम रहा है। सहज—स्वाभाविक। अपान—अपना। आसनि ओस-दशा में मिली हुई भाप जो रात्रि के समय मरती से जम कर जल कण के रूप में गिरती है।

१८ ही—मा लगाना चतन—आत्मा। चतन—जीव।

३६ जिन—जनि, मत करो। प्रकृति—स्वभाव। तू—हे आत्मन। सुज्ञान—विवेकी। यहु—यह। तऊ—तोभी। परतीति—भरोसा। भुहो—हो चुका। सुयहु—होगया। समिति—बराबरी। मोहि—मुझको। वसिकै—वस करके। तुतोहि—तुमको। करन—करने की। फीति—फिरता है।

४० मधुकर—भौरा। कुभयो—खराब हो गया। अनत—अन्य जगह। कुविसन—खराब व्यसन। अबस—बेवस। राजहस—परम गुरु। सनमानो—सम्मानित। सहतीने—समाती हुई।

४१ मे मे -मैं मैं। सुक्यो—क्यो। गठनि—गठने वाला। कर—हाथ मे। कुसियार—एक प्रकार का ईख। सुक—तोता।

४२ श्रवन—कान।

४३ फलिहु—फल। सु अहले—साधारण। भायो—अच्छा लगता है।

४४ उरगानौ—सेवक, चेरा। त्रासनि—डर से। मदनु-कामदेव। छपानौ—छुपाया। राजु—राज्य। वसु प्रतिहार—अष्ट प्रातिहार्य-केवल ज्ञान होने पर तीर्थंकरों के आठ विशेष गुण उत्पन्न होते हैं -(१) अशोक वृक्ष, (२) रत्नमय सिहासन, (३) तीन छत्र, (४) भामडल, (५) दिव्य ध्वनि, (६) देवो द्वारा पुष्प

दृष्टि (७) चौसठ चंवरों का ढुरना (८) दुंदुभि बाजों का बजना। अनन्त चतुष्टय—केवल ज्ञान होने पर अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य (बल) प्रकट होते हैं। चौबीस अतिसय—तीर्थंकरों के ३४ अतिशय होते हैं १० जन्म के १० केवल ज्ञान के और शेष १४ अतिशय देवताओं द्वारा किये जाते हैं। समोसरन—तीर्थंकर को केवल ज्ञान प्रकट होने पर देवों द्वारा रचित सभा स्थल जहां भगवान का उपदेश होता है। राणौं—राजा। बानौं—स्वरूप।

४५ सवज्ञ—पूर्ण ज्ञानी। क्यु—क्यों। टोहि—खोज करके।

४६ मिथ्या—मिथ्यात्व। विसयो—नष्ट हो गया। सुपर—स्वपर। मोह—मोह माया। कुमग—पदार्थों को जानने के मिथ्या उपाय [ज्ञान]। भवयो—हुआ। भंतर—अन्य गतियों में। जीव मार्ग—जबता चली गई। भयो—मुक्त गया चला गया। चाकवार—चकवा। विलवो—नष्ट हो गया। सिवसिरि—मुक्ति।

४७ अनय पक्ष—मिथ्यात्व दृष्टि। जारौ—अंधकार। नास्यो—नष्ट कर दिया। अनेकांत—एक से अधिक दृष्टियों से पदार्थों को जानना का मार्ग जैन धर्म का सबसे बड़ा सिद्धांत इसे 'स्याद्वाद' भी कहते हैं।

विराजत—सुशोभित। भान—ज्ञान सूर्य। मनारय—शासन

रहने वाला, सत्स्वरूप। ज्ञेयाकार—पदार्थ के आकार को। विकास्यौ—प्रकाशित करने वाला। अमद—मदता रहित। सूरति—मूर्त्तिमान-सूरत शकल वाला।

४८ भीनौं—भीगा। अविद्या—अज्ञानता। फीनों—क्षीण किया। विरंग—कई प्रकार के रंग। वाचक—कहने वाला। चित्र—विचित्र। चीन्ही—देखा।

४६ उमरो—अमीर। आन—अन्य। को—कौन। सिगरौ—सम्पूर्ण। श्रेणिक—राजगृही के राजा।

५० सकतु—शंका करना। परत्र—पर। कत—किसे। मदनउ—कामदेव। जार—जला रहे हैं। महाव्रत—हाथी का चालक अथवा महाव्रत। तकसीर—गलती। धुर—धुरा।

५१. कलुप—मलिन। परिनाम—परिणाम, भाव। सल्यनिपाति—काँटे को निकालना। वसु—अष्ट प्रकार।

५२ धौकलु—धमकल-शोरगुल। जम—यम। वाचै—वचे।

५४ आरति-चिन्ता। लसुन-लहसन। वरवस-लाचार। बाल गोपाल-बच्चे तक भी। गोढ-छिपाकर। लुनिये-काटिये। बोइ-बोना।

५५ अपनपौ-अपनापन अथवा अपने स्वरूप को। दारादि-स्त्रियों को। कनक-स्वर्ण। कनक-धतूरा। बौराई-

पागमपन द्याना। रमत-चांदी। पुद्गल भवतन अङ्‌ कसठ-कष्ट। मुठि-मुट्ठी।

२६ बिगसे-फूले। मकरंदु-पराग (फूलों का)। सुचत-चोहत हैं। चित चकोर-चित्त रूपी चकोर पक्षी। बाइपी-बढ़ा। द दु-द्वंद। भ तरगत-हृदय में। म दु-धीमा मंद। सहवानै-सहित। इंदु-पत्र-कविता।

२७ नारे-गाय का बछड़ा। भाउ-भायु। प्रति बंधक रोकने वाला। भकुलाल-भाकुलित होना। परोक्ष-इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान परोक्ष ज्ञान। भवरन-भावरण। मारे-मारी।

२८. कुबद्द-कुबुद्धि मूर्ख। निवाहया-वाहक करके। साल-मकान (सीप का कमरा)। बरबस-जबरम। वहयो-बहा दिया। बारूया-कराहेने वाला। रेवातट-रेवा नदी के किनारे-सिद्धवरकूट क्षेत्र।

२६. मिथ्या देव-झूठे देव। मिथ्या गुरु-झूठे गुरु। भरमायी-भ्रमाया। सरचौ-बना। परिमायी-भ्रमण करता रहा। मिवेरहि-दूर करो।

६० भसदरा—कोई बराबरी वाला नहीं। राजसु—शोभित होना। रज-पुष्पकण। ताप विधि—तपस्या द्वारा। बढ़ेरो—बढ़ाने वाला। मासुम—नष्ट करने वाला। करेरी—

करने वाला। जनितु—पैदा हुआ। पसरयउ—फैला हुआ। आन—दूसरी जगह।

६१ आउ—आयु। महारथ—योद्धा। बापरो—बेचारा। कुसुमित—खिले हुए।

६२ परसों—अन्य से। जान—ज्ञान। हीन—तुच्छ। पऱ-पर। पजवान—प्रधान। गुमान—घमण्ड। निदान—निश्चित।

६३ पातगु—पाप। पटितर—सदृश।

६४ नटवा—नट। नाइक—नायक। लाइकु—योग्य। काछ-कछाइन—नटका वस्त्र विशेष। पखावजु—ढोलक। रागादिक—राग द्वेष आदि। पर—अन्य। परिनति—भाव।

६५ समीति—समीपता, अभिन्नता। डहकतु—जलाना। वसीति—बसना। दाउ—दाव। कैफीति—कैफियत, विवरण।

६६ मोह—ममता। गुननि—गुणस्थान, आत्मा के भावों का उतार चढाव। उदितउ—उदय से। बिअसि—बिना तलवार के। सरचाप-धनुष बाण। दाप-दर्प, घमंड। कौनु-कौन।

६७ बलि-बलशाली। पास-पार्श्व जिनदेव। बिस हरउ-विष हरने वाले। थावर-स्थावर जीव, एकेन्द्रिय वाले जीव। जगम-त्रसधायिक जीव, दो इन्द्रिय से लेकर पाच

इन्द्रिय वाले जीव। कमठ—पारवनाथ के पूर्व भव का वैरी। छमी—क्षमा। बालु—मालक।

६८. सेसर—मस्तक। पाम्ब—पाटल पुष्प के समान। पदुमराग—पद्मरागमणि। आम्य—कहना। दरिसन—दर्शन। दुरित—पातक।

६९ तिपाव—दुःख। तिरमय—आश्रय। महमेव—अभिमान अहंकार मद। परसेव—पसीना। मेव—भेद।

७० निरंजन—निर्दोष। सर—मस्तक। खंजन दग—खंजन पक्षी के समान आँखों वाले।

७१ सामग्र—सीर। गह—महत्व कर। गह—गृह (घर)। मुकदम—गोव का चौधरी।

७२ धनज—धनपार। टाँडा—बाजार। वस्सल—प्रेम। सिरवाला—मुक्ति।

७३ मूलम बेटा जायो—मूल नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न हुआ गुरदा पदोग। बोम—साज २ घर। बालक—गुप्तोपमांग उत्पन्न हुआ।

७४ महाविकल—व्याकुल। हिंसारम—आरंभी हिंसा गृहस्थ के प्रतिदिन के कार्यों में होने वाली हिंसा। मृषा—असत्य। निरोधै—रोके। हिये—हृदय में। दरब—द्रव्य। परजाय—पर्याय। दरबगति—द्रव्य में आने वाले।

७५ चितामनि–चितामणि पार्श्वनाथ । मिथ्यात–मिथ्यात्व। निवारिये–दूर कीजिये । निसवेरा–अज्ञान रूपी रात्रि के समय । बिंब–प्रतिमा ।

७६ भौंदू भाई–बुद्धू, मूर्ख। करषै–खीचते है। नाखैं–डालते है। कृतारथ–कृतकृत्य। केवलि–केवल ज्ञानी, तीर्थंकर। भेद–निजपर का भेद । अपूठे–एक तरफ। निमेखैं–निमिष मात्र, पल भर भी। विकलप–विकल्प। निरविकलप–निर्विकल्प, जहा किसी प्रकार का भेद न हो।

७७ सबद–शब्द। पागी–लीन होना। विलोवै–देखे। ओट–आड मे। पुद्गल–जड। भ्रामक–बहकाने वाली। जगम काय–त्रसकायिक। थावर–स्थावर, एकेन्द्रिय। भीम को हाथी–महामूढ।

७८ दिति–दैत्यों की माता। धारणा–ध्यान करते समय हृदय में होने वाली। निकाछित–सम्यग्दर्शन के निकाचित आदि आठ गुण। वलखत–रोता हुआ। दरयाव–समुद्र। सेतुबध–समुद्र में पुल बाधना। छपक–क्षपक श्रेणी। कबध–धड़।

७९ बिलाय–दूर होना। पौन–पवन, हवा। राधारौनसौं–राधा से (आत्मा) रमण की इच्छा। बौनसौं–वमन से। लौनसौं–सौन्दर्य। अवगौनसौं–आवागमन से।

८० दुविधा–शका।

८१ मेघ-मुग्ध। घेरे-घिरा हुआ। गिरधार-गुरुधारा। पखाल पाषाण। पखार-स्नान करके धाकर। झार-धूल। अगति-अगात कर। पाट-रेशम। कीरा-कीड़ा। कबूतर लोटन-भूमि पर लुढ़कने वाला कबूतर।

८२ नारक दुःखी। नारकिन-नरक में रहने वाले प्राणियों के दुःखों के।

८३ भरत प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र। समकित-सम्यक्त्व। उदोत-उदय। गोम-गोमम्म। सुकुमाल-सुकुमाल मुनि।

८४ मथानी-मथने वाली। पिंड-शरीर। खरै-ज्ञान। खेद-उत्साह देना। रज-मिट्टी। न्यारिया-रास्तों में नालियों के नीचे की मिट्टी को धोकर चाँदी-सोना निकालने वाले। कर्म विपाक-कर्मों का पकना। मन धीजै-मन को शान्त करता है। भींजै-तल्लीन होना।

८५ मरीचिका-किरणों की परछाई मृग-तृष्णा। पुद्गल का पक्वान-जिससे भूख खाने पर भी भूख न मिटे। अपावन-अपवित्र। रज-मिट्टी। अपनायत-अपनापन।

८६ अलख-जो देखने में न आये। भवा-भव में। अथाह-अथाह। दै-ज्ञान की खान का जैसा। सुरचित-सुरचित। धौं सा-आकाश के समान। बरता-बरतने वाला होने वाला।

८७ पटपेलन–एक प्रकार का खेल, कपडे से मुह ढक कर खेला जाने वाला खेल। वेला–समय। परि–पडी। तोहि–तेरे। गल–गले में। जेला–जजाल, काटेदार जेली के समान। झेला–चक्करा। सुरझेला–सुलझाड़ा।

८८ बध–बधु, भाई। जा बध–बध जा। विभूति–वैभव। ठानै–करने का दृढ विचार। बध–कर्मों का आत्मा के प्रदेशों के साथ चिपट जाना। हेत–हेतु कारण।

८९ हित–हित करने वालो मे। विरचि–विरक्त हो। रचि–लवलीन, स्नेह। निगोद–साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की पर्याय विशेष, जहा ज्ञान का सबसे कम क्षयोपशम हो। पहार–पहाड, पर्वत। सुरज्ञान–श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त।

९० समता–समभाव। तीन रतन–सम्यग्यदर्शन सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र रूपी त्रिरत्न। व्यसन–बुरी आदतें, व्यसन सात होते है–(१) जूआ खेलना, (२) चोरी करना, (३) वेश्या सेवन, (४) शराब पीना, (५) मास खाना, (६) शिकार खेलना, (७) पर स्त्री गमन करना। मद–आठ मद हैं। कषाय–जो आत्मा को कषै अर्थात दुःख दे, कषाय के २५ भेद हैं–अनतानुबधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याखान एव सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ की चोकड़ी तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, एवं नपु सक वेद। निदान–क्रिया के फल की आकाक्षा करना। मोहस्यों–मोह ममत्व।

का उपदेश। तत्व–वस्तु, तत्व ७ प्रकार के होते हैं–जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष। सरधा–श्रद्धा, विश्वास।

१०४ जामण–जन्म लेना। विरद–अपनी बात अथवा प्रसिद्धि।

१०५. रविसुत–यमराज, शनि।

१०६ अरिहंत–जिनदेव जिन्होंने घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है। संजम–संयम।

१०७ पगे–रत रहना।

१०८ श्रावग–श्रावक, जैन गृहस्थ।

१०९ भीना–लवलीन होना। झीना–सूक्ष्म। उगीना–उगेरणी करना, दोहराना।

११० करन–कर्ण, कान।

१११ त्रसना–तृष्णा, लालच।

११२ सिद्धान्त–जैन सिद्धांत। बखान–व्याख्यान, वर्णन।

११३ छानी–छुपी हुई। प्रथम वेद–जैन साहित्य चार वेदों (भागों) में विभाजित है–चार वेद अर्थात अनुयोग–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। ग्रन्थबंध–ग्रन्थ के रूप में बांधकर।

११४ नैक-निश्चित। असाता-दुःख अशुभ वेदनीय कर्म का भेद। साता-सुख। ठनक-निश्चित।

११६ अमल-तीर्थंकर। साधरमी-समान धर्म मानने वाले बन्धु।

११७ रत-पुण्यरमा। दुरत-पापमा।

११८ परीसह शारीरिक कष्ट ये २२ प्रकार के होते हैं।

११९ बालक-तीर्थंकर नमिनाथ। समदविजैनन्दन-समुद्र विजय के पुत्र। हरिवंश-वंश का नाम। सुरगिरि-सुमेरु पर्वत। प्रक्षाल-न्हवन स्नान। शची-इन्द्राणी।

१२० अकल नाम-अष्टम प्रभु। अष्ट कर्म—आठ प्रकार के कर्म-ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और अन्तराय। बीस आभूषण-नौ प्रकार के रत्न।

१२१ कूक-मस्ती मूक। चाकरी-नौकरी। टहल-सेवा। बेरा-बेड़ी जंजीर। करमेरा-कसमसाना। नेरा-नजदीक।

१२२ कर्मजनित-कर्मों के उदय से। पसारा-विस्तार। अविकारी-विकार रहित।

१२३ अडी-मनोरथ। गानत-ज्ञान।

१२४ भ ग-भेद। क्षुधित-भूखा। पार-पार उतारने वाला जहाज।

१२५ पचपाप-हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्म, परिग्रह। विकथा-४ प्रकार की विकथायें हैं-स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा भोजनकथा। तीन जोग-मनोयोग, वचनयोग, और काय योग। कलिकाल-कलियुग।

१२६ सुकुमाल-सुकोमल।

१२७ नसाही-नष्ट हो जावे। अमरापुर-मोक्ष।

१२८ मो सौं-मुझ से। मदीत-सहायता। रावरी-आपकी।

१२९ निजघर-अपने आप में। परपरणति-पर रूप परिणमन होना। मृग जल-मृगतृष्णा।

१३० जोग-योग,३ प्रकार के हैं-मनो योग, वचन योग,काय योग। क्षपक श्रेणी-कर्मों को नाश करने वाली सीढी। घातिया-आत्मा का बुरा करने वाले कर्म-ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय-ये ४ 'घातिया कर्म' कहलाते हैं। सिद्ध-जिन्होंने आठों कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है।

१३१ वाम-स्त्री।

१३२ भेद ज्ञान-'स्वपर' का भेद जानने वाला ज्ञान। आगम-तीर्थंकरों की वाणी का संग्रह। नवतत्व-वस्तु तत्व सात प्रकार के हैं-जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा-मोक्ष-इनके पुण्य और पाप ये दो मिलाने से ९ पदार्थ होते हैं। यहां

मन तरन स भय नर-पशाय है। अनुसरना-अनुसार चलना धारण करना।

१३३ आरसी-कांच दपण। सब्वाय-सी आगार। यहाँ द्रव्य-जीव पुद्‌गल धर्म अधर्म आकाश और काल य छह द्रव्य कहलाते हैं।

१३४ रति-प्रेम। बिसरानी-भुला दी। पन्तर-समानता। सुरानी-सुख की।

१३५. नेय-ज्ञेय पदार्थ। ज्ञायक, ज्ञायक-जानने वाला। अरिहंत-जिनके ४ घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं तथा जो १८ दोष रहित एवं ४६ गुण युक्त हैं। सिद्ध जिनके ४ घातियां तथा ४ अघातियां-आठों ही कर्म नष्ट होगये हैं तथा जिनके आठ गुण प्रकट हो गये हैं। सूरि-आचार्य परमेष्ठी इनके ३६ मूलगुण होते हैं। गुरु-उपाध्याय इनके २५ मूल गुण होते हैं। मुनिवर-सर्व साधु इनके २८ मूल गुण होते हैं। विभ्रम-भ्रम मूलबरी-भली। पंचेन्द्री-स्पर्शन इन्द्रिय वाला। पञ्चम्री-स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियधारी। अतिन्द्री-इन्द्रिय रहित।

१३६ सिद्धक्षेत्र-सिद्धालय, मुक्ति। बाना-वेश। अज्ञाना अज्ञानी।

१३७ तन-शरीर। आयु-वक्त या समय। जीव-आत्मा

के साथ कर्मों का बधना। निखरेंगे-खरे उतरेंगे। दो अक्षर-अर्ह'।

१३८ हवाल-हाल। बकसो-क्षमा करो।

१३६ परजाय-पर्याय। विरानी-परायी।

१४० बटेर-एक प्रकार की चिड़िया।

१४१ विभाव-वैभाविक, ससार भाव। नय-प्रमाण द्वारा निश्चित हुई वस्तु के एक देश को जो ज्ञान ग्रहण करता है उसे 'नय' कहते हैं। परमाण-सम्यक् ज्ञान, सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते है। निक्षेप-पदार्थों के भेद को न्यास या निक्षेप कहा जाता है (प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुए लोक व्यवहार को निक्षेप कहते हैं)

१४३ अनहद-स्वत उत्पन्न हुआ। घुन-कीडा।

१४४ लोक रजना-लोक दिखाऊ। प्रत्याहार-योग का एक भेद। पच-परावर्तन-पच भूतों का परिवर्तन। पतीजे-विश्वास करना।

१४५ रतन-रत्नत्रय। परसन-प्रश्न। आठ-काठ-अष्टकर्म रूपी काष्ठ।

१४६ नवल-नवीन। चतुरानन-ब्रह्मा, चतुर्मुखी भगवान। खलक-ससार।

१४७ सत्ता—सत् आदि का स्थान। समता—समभाव। माट—मटका। नय दोनों—निश्चय और व्यवहार नय। धोवा—धोना।

१४८. भौ—भव जन्म-मरण। दस आठ—१८ बार। उसास सास—श्वासोश्वास। साधारन—साधारण वनस्पति। विकलत्रै—तीन इन्द्रियों का धारी। पुतरी—पुतली। नर भौ—मनुष्य जन्म। जाया—उत्पन्न हुआ। दरब लिंग—द्रव्यलिंग पर्याय।

१४९. रिझावन—प्रसन्न करने को। दरवेस—साधु। विसेखा—विशेष।

१५ गरभ छमास अगाऊ—गर्भ में आने से छ मास पूर्व। कनकनग—स्वर्ण परकोटा युक्त। मेरु—सुमेरु पर्वत। अघार—पापको हटाने वाले। पंचकल्याणक—गर्भ जन्म तप ज्ञान और निर्वाण कल्याणक।

१५१ खिन—क्षण। चक्रधर—चक्रवर्ति। रसाल—सुन्दर। विषै—इन्द्रियों के विषय।

१५२. फरस विषै—स्पर्शन इन्द्रिय के विषय। रस—रसना। गंध—घ्राणेन्द्रिय के विषय। अखि—देखन के वास्ते चक्षु इन्द्रिय। सरवन—श्रवण। सुनत—सुनते ही। टेकै—टेक।

१५३ हीन—कमजोर। संघनन—शरीर की शक्ति के द्योतक-संहनन ६ प्रकार के हैं—वज्रवृषभनाराच-संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराचसंहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलक संहनन, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन। आऊषा—आयु। अलप—अल्प। मनीषा—इच्छा। शाली—चावल। समोई—समा करके।

१५४ समाधिमरन—धर्म ध्यान पूर्वक मरण। सक्र—इन्द्र। सुरलोई—स्वर्ग। पूरी आइ—आयु पूर्ण कर। विदेह—विदेह क्षेत्र। भोइ—भोगकर। महाव्रत—हिंसा, झूठ चोरी, कुशील और परिग्रह का पूर्ण रूपेण सर्वथा त्याग—महाव्रत कहलाता है। इसका पालन मुनि लोग करते हैं। विलसै—भुगते।

१५५ थिति—स्थिति। खिर खिरजाई—खिरना समाप्त होना।

१५६ मूढता—अज्ञानता। पिंडा—पिंजरा। तिहडारी—उस डाली पर।

१५७. मूढां—मूर्खों में। माता—मस्त हुआ, पागल की तरह। साधौ—सत्पुरुष, साधु। नाल—साथ मे।

१५८ नय—वस्तु के एक देश को ग्रहण करनेवाला ज्ञान—यह सात प्रकार का है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत। निहचै—निश्चयनय। विवहार—व्यवहार नय। परजय—पर्यायार्थिक नय, दरवित—द्रव्यार्थिक नय, सुतुला-कांटा। वस्तै—वस्तु।

१५६ सिवमत-शैव। आगम-धार्मिक मूल मंत्र।

१६ बहे-बहता रहे, बाढ़ स्रोत में काम आवे।

१६१ मनका-मणिया माला। सराई-सराहना प्रशंसा।

१६२ इन्द्रीविषय-इन्द्रियों के विषय। खयकार-क्षय करने वाला। काम-कामदेव। उनहार-सदृश। खार-मिट्टी। अनिवार-अवश्य।

१६३ गरज आवश्यकता। सरीना-पूरा नहीं होना।

१६४ गरवामा-घमंड करना। सादि अनन्त सबतें-मूल अनेक जन्म धारण कर। उचाना-ऊँचे। बिगास-बढ़ाना। असन-भोजन। पोख्यो-पोषण किया। बिहाना दिन। बांन्ह-घटाना। गिलाय-ग्लानि। मूये-मरने पर। प्रेत-पिशाच। पांच चोर-पञ्चेन्द्रिय विषय। छ्यना-छाया किया। ब्रह्मज्ञान-आत्म स्वरूप।

१६५. सपत-शीघ्र। प्रेमनाई प्रेम। नीव-नीम। तरजाई-तिरजाना। कुधात-छोहा। बूंद-सीप में पड़ी हुई बूंद। उस पदवी-मोती बनकर मुकुट में जाना। कर्ई-कड़वी। सांबर-पृथ्वी। बचनाथ-'बच' जो पंसारी के मिलती है उसके स्थान से। धाई-बधाई। सरघाई-श्रद्धा कर ली गई है।

१६६ बिरता-विरलता। राजै सुशोभित होना। सजै

धारण करै। उपाजै–उपार्जन करै, बांधना।

१६७ वपु–शरीर।

१६८ नग सो–नगीने के समान। सटकै–चला जाय।

१६९ ख्याति लाभ–प्रशसा, प्रसिद्धि। आन–आयु। जुवती–युवा स्त्री। मित–मित्र। परिजन–बन्धु। दाव–मौका।

१७० भवि-अघ दहन–संसार रूपी पाप की अग्नि। वारिद–बादल। भरम-तम-हर-तरनि–भ्रम रूपी अधकार को हरने के लिए सूर्य। करम-गन–कर्म समूह। करन–करने वाला। परन–प्रण।

१७१. निकन्दन–नष्ट करने वाले। बानी–वाणी। रोष-विदारण–क्रोध को नष्ट करने वाले। बालयती–बाल ब्रह्मचारी। समकिती–सम्यक्त्व धारण करने वाले। दावानल–अग्नि।

१७२ सेठ सुदर्शन निर्दोष सुदर्शन सेठ को रानी के बहकाने मे आकर राजा ने शूली चढाने का आदेश दिया था, किन्तु देवों ने शूली से 'सिंहासन' कर दिया। वारिषेण–'वारिषेण' नाम के एक जैन मुनि-जिन पर दुष्टों ने तलवार से वार किया था। धन्या–धन्यकुमार। वापी–बावडी। सिरीपाल–राजा श्रीपाल को धवल सेठ ने उनकी पत्नी 'रैन मञ्जूषा' से आसक्त होकर जहाज से समुद्र में गिरा दिया था। सोमा 'सोमा सती'–'सोमा' के

चरित्र पर सन्देह कर उसके पति ने एक घड़े में बड़ा काला साँप बंदकर शयन कक्ष में रख दिया और उससे कहा कि इसमें तुम्हारे लिए सुन्दर हार है। जब सोमा ने वह हार निकालने के लिए घड़े में हाथ डाला तो उसके सतीत्व के प्रभाव से वह सर्प मोतियों का हार बन गया।

१७३ अन्तर–हृदय। कृपान–कृपाण कटार। विषै–इन्द्रियों के विषय। लोक रंजना–लोक दिखावा लोगों को प्रसन्न रखना। वेद–ग्रन्थ।

१७४ बंध–कर्मों का बन्धन। विधि–धन।

१७५ बेरस–बिना रस।

१७६ समकित–सम्यक्त्व। पावस–वर्षा ऋतु। सुरति–प्रेम। गुरुधुनि–गुरु की वाणी। साधकभाव–आत्म साधना के भाव। निरधू–पूर्ण रूपेण।

१७७ पासे–चौसर खेलने के पासे। जाके–जिसके।

१७८ ठैन–आसन।

१८० चक्री–चक्रवर्ती। वायस–कौआ।

१८१ पाखान–पाषाण पत्थर। धरमों–धर्मों।

१८२ मालम–चरखे की मालम। बाहदी–बाती।

१८५ सवर–नये कर्मों को आने से रोकना। गरिमा–बडाई, प्रसशा।

१८६ कथ–पति। कुलटा–व्यभिचारिणी।

१८७ मुद्दत–समय।

१८८ दुहेला–कठिन कार्य। व्यवहारी–व्यवहार में लाने योग्य। निहचै–निश्चय, वास्तविक।

१८६ वियोगज–वियोग से उत्पन्न। कच्छ-सुकच्छ–कच्छ-सुकच्छ नाम के राजा। उग्रसेन—राजुल के पिता का नाम, कृष्ण के नाना। वारी–पुत्री राजुल। समदविजै नेमिनाथ के पिता समुद्र विजय।

१६० हेली–सहेली। नियरा–नजदीक। करूर—क्रूर। कलाधर—चन्द्रमा। सियरा—ठण्डा।

१६१ वारि—वबूला, जल बुद्‌बुद। कुदार—कुदाली। कध—कंधे पर। वसूला—लकडी काटने का ग्रमोला।

१६२ संधि—जोड। वरण—रंग।

१६४ अछेव—अपार। अहमेव—अहंपना। भेव—भेद।

१६८ निमप—निमिप मात्र के लिए भी। लरदा—लडने को तैयार। अखदा—कहता हूँ। आरजुदा—इच्छा।

९ विगोवै—मटकाता है, दुःख देता है। छगोवे है—छुपाता है। जोवे—देखना।

२०१ बरज्यो मना किया। कुलगारे—कुल नष्ट करन वाले। अकारि—अकार्य कुकर्म।

२०२ निरधामी—मौन। यादोपति—यादव वंशों के पति-नमिनाथ।

२ ४ दिगम्बर—नग्न। लौंच—सिर के केश उखाड़ना। पछेवी—सबके पीछे। हरी—हितकारी। धनिवेदी—धन्य है, धनधाम बसते हैं।

२ ५ तड़फत—तड़फते हैं।

२०६ मिस—बहाना। हेमवर्णी—स्वर्ण के समान सुन्दर वर्ण वाली।

२०७ धव—पति। अपाई—अपना। बिरद—यश। निवाही—निभाना।

२ ८ वृंद—झुंड समस्त पुंज। दिंद—समूह। पुंज—राशि समूह। तारक—तारने वाला।

२१ ठगोरी—ठगने वाली। गोरी—नारी। चोवो—सुगन्धित द्रव्य। पीरी—ग्रार पीला।

२११ मिल परमति—अपने स्वभाव में लीन होना।

किसोरी–किशोर अवस्था वाली। पिचरिका–फुहारे पिचकारी सणी–की। गिलोरी–बीड़ा। अमल–अफीम। गोरी–गोली। टौरी—टल्ला, धक्का। वरजोरी—जबरदस्ती।

२१२ मगरूरि—घमण्ड, अभिमान। परियण—परिजन, कुटुम्बीजन। वदी—बुराई। नेकी—भलाई। खरी—सही।

२१३ पाहन—पत्थर। श्रुत—शास्त्र। निरधार—निश्चय।

२१४ सलीता—सयुक्त। पुनिता—पवित्र। करि लीता–कर लिया। श्रवनन—कानों से।

२१५ वारी—बलिहारी। पातिग—पाप। विडारी—भगाये। दोप अठारा—तीर्थकरों मे निम्न १८ दोप नहीं होते हैं—१ जन्म, २ जरा, ३, तृपा, ४ क्षुधा, ५. विस्मय, ६ अरति, ७ खेद, ८ रोग, ६ शोक, १० मद, ११ मोह, १२ भय, १३ निद्रा, १४ चिन्ता, १५ स्वेद, (पसीना), १६ राग १७ द्वेप, १८ मरण। गुन छियालीस—अरहन्तो के निम्न ४६ गुण होते हैं—३४ अतिश्य (जन्म के दस केवल ज्ञान के दस तथा देवरचित १४) आठ प्रतिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय।

२१६ नेम—नियम। द्रगयनि—नेत्र।

२१७ जोह्यो—देखा। विथुरिये—फैलाता है।

२१६. सरसावो—हरी-भरी करो।

२२० विषय—वैरी। भवसंतति—संसार परिभ्रमण।

२२१ म्यद—निन्दनीय। निकंद—नष्ट कर।

२२२ निछरावछ—न्योछावर। आवागमन—जन्म-मरण।

२२३ सुक—तोता। वचनता—बोलने की शक्ति। पपाछ—पत्थर। पटपद—भ्रमर। कांई—कूने से। नाग दमनि—एक प्रकार की मक्खी। कटकी—'कुटकी चिरायता'-कड़वी दवा। करवाई—कड़वापन। नग—नगीना। काल-काला चपकी। चपरी-बेचारी। महाथमी-अत्यन्त नीच। अभि परनामी-सम भाव रखने वाले।

२२४ धार—धारे। बाहिं हैं-भुजाओं से। नावँ-मौखाप। नांव-नामकी।

२२६. ध्यावांसी-ध्याऊ गा। दिसरा-लगता है। मेरा-मेरा। डीठ-दिखाती दिया।

२२७ सरखामा-मनुष्य देह। मामा-स्त्री। ठमा-महल आदि। बिसरामा-विश्राम।

२२८. फरस-स्पर्श। साना-सना हुआ।

२२६ चिद-गुप—चिद तथा गुप का भेद रूप ज्ञान।

२३०. निरना–निर्णय निश्चित ।

२३१ सुभटन का–योद्धाओं का ।

२३४ सीत-जुरी–शीतज्वर । परतख-प्रत्यक्ष ।

२३६ झपापात–ऊपर से नीचे की ओर एक दम झपटना ।

२३७ निजपुर–अपने आप मे, आत्मा मे । चिदानन्दजी–आत्माराम । सुमती–सुबुद्धि । पिकी छोरी–पिचकारी छोडी । अजपा–सोऽहं । अनहद–अनाहत शब्द ।

२३८ पोरी–पोल, द्वार । फगुवा–फाग के उपलक्ष मे दिया जाने वाले उपहार । पाथर–पत्थर ।

२३९ चोरासी–चोरासी लाख योनियों में । आरज—'आर्यखण्ड'-जहा भारतवर्ष है । विभाव–वैभाविक, राग-द्वेष रूप भाव ।

२४१ 'भरत बाहुबलि'—प्रथम तीर्थंकर भ० आदिनाथ के पुत्र-भरत बड़े तथा बाहुबलि छोटे थे । भरत छ खण्ड के राजा चक्रवर्ति होगये किन्तु बाहुबलि उनके अधीन नहीं हुये । दोनों में परस्पर नेत्र-युद्ध, जल-युद्ध, तथा मल्ल-युद्ध हुये, तीनों मे ही बाहुबलि लम्बे (दीर्घ-काय) होने के कारण विजयी हुए । पर विजय से विरक्त हो दीक्षा धारण की तथा कई वर्षों तक तपस्या की । उनके शरीर में पक्षियों ने घोसले तक बना लिये,

और वहाँ आ गई। आज भी दक्षिण भारत में संसार प्रसिद्ध 'बाहुबलि' की विशाल मूर्ति विराजमान है।

२४२. मोह-गहल-मोह का नशा। हूँ-मैं। चिन्मूरति-चिदानन्द।

२४३ सुकृत-अच्छा कार्य धर्म। अघ-पाप। अटूट-अनन्त।

२४४ सितावी-शीघ्र।

२४५. चीरन चीर-जीर्ण वस्त्र या देह। चोरत-चुराना। ढीठ-निकम्मा।

२४७. जथा-जैसा।

२४८. विधि निषेधकर-अस्ति नास्ति अथवा स्याद्वाद स्वरूप। द्वादस अंग-द्वादशांग-वाणी धर्म। छायिक समकित-'क्षायिक सम्यक्त्व' [मिथ्यात्व सम्यग् मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात प्रकृतियों के अत्यन्त क्षय से होने वाला सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है।] भवथिति-भवस्थिति। गाही-नष्ट की।

२४९. कर ऊपर कर-हाथ पर हाथ रखकर। भूति-भस्म राख। आशापाशा इच्छाओं को रोक कर। नासादृष्टि-नाक के अग्रभाग पर दृष्टि। सुरगिर-सुमेरु पर्वत। हुताशन-अग्नि। बहु विधि समिध-अनेक प्रकार की कर्म रूपी ईंधन।

स्यामलि-काले। अलिकायनि-आलों का समूह। तृनमनि—घास और मणि।

२५० दावानल-अग्नि। गनपति-गणधर, भगवान की वाणी को झेलने वाले। गहीर-गहरा। अमित-बेहद, अपार। समीर-हवा। कोटि-बार बार, करोड़ों बार। हरहु-दूर करो। कतर-काट दो।

२५१. वर-श्रेष्ठ।

२५२ उद्यम-परिश्रम। घाटी-घाटा। माटी-मृतक शरीर। कपाटी-किवाड़।

२५३. भुजङ्ग-सर्प। स्वपद-अपने पद को। विसार-भूल कर। परपद-पर पदार्थ में। मदरत-नशा किये हुए के समान। बौराया-पागल की तरह बकना। समामृत-समता रूपी अमृत। जिनवृष-जैन धर्म। बिलखे-विलाप करते हैं। मणि-चिन्तामणि रत्न।

२५४ निजघर-अपने आपकी पहिचान। पर परणति-पर पदार्थों के स्वभाव में। चेतन भाव-आत्म स्वभाव। परजय बुद्धि-पर्याय बुद्धि। अजहू-अब तो।

२५५ अशुभ-बुरे कर्म। सहज-स्वाभाविक। शिव—कल्याण, मुक्ति।

१२६ निपट–बिल्कुल। अयाना–अज्ञानी। आपा–अपने आपको। पीय–पीकर। लिप्यो–लिप्त होना सनजाना। कमलदल–कमल पत्र। बिराना–पराया। अजागन–बकरियों के समूह में। हरि–सिंह।

२४७ सुक–तोता। नलिनी–कमल आदा में फंसा रहा। अविरुद्ध–विरोध रहित। दरसा बोधमय–दर्शन ज्ञान से युक्त। जाग–जगा रहना। राग रूस–राग-द्वेष। दाहक–जलने वाला। चाहदाह–इच्छा रूपी अग्नि। गाहै–ग्रहण करे।

२४८ संसय–शल्य। विभ्रम–व्यामोह, भ्रम। विवर्जित–रहित। अदत्त–बिना दिया हुआ। आकिंचन–परिग्रह रहित। प्रसंग–सम्बन्ध। पच समिति–यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति को 'समिति' कहते हैं। इसके पांच भेद हैं–'ईर्यासमिति भाषा समिति एषणा समिति आदान निक्षेपण समिति और उत्सर्ग समिति। गुप्ति–भले प्रकार मनवचन काय के योग को रोकना निग्रह करना 'गुप्ति' कहलाती है। यह ३ प्रकार की है मनोगुप्ति वचनगुप्ति और काय गुप्ति। व्यवहार चरन–व्यवहार चरित्र। कुसुम–सुगन्धित द्रव्य रहती। दास–सेवक। व्याल–सर्प। माल–माला। सममावे–एक रूप। आरत रौद्र–आर्त ध्यान रौद्र ध्यान। अविचल निश्चल।

२४९ मोसम–मरे समान।

१६० तारन–पार लगाना। तकसीर–गलती भूल।

अघ-पाप। विसन-व्यसन। शूकर-सुअर। सुर-स्वर्ग। मो-मेरी। खुवारी-दुखदायी। विसारी-भूली।

२६१ तीन पीठ-तीन कटनियों पर। अधर-बिना सहारे। ठही-ठहरा हुआ। मार-कामदेव। मार-नष्टकर। चार तीस-चौंतीस। नवदुग-अठारह। सतत-निरन्तर। प्रफुलावन-विकसित करने को। भान-सूर्य।

२६२ भाये-अच्छे लगे। भ्रम भौंर-भ्रम रूपी भँवर। बहिरातमता-आत्मा का बाह्य स्वरूप। अन्तर दृष्टि-आत्मा को पहचानने की दृष्टि। रामा-स्त्री। हुताश-अग्नि।

२६३ सोज-सोच। भेदै नष्टकर। तताई-उष्णता। रव-शब्द। करन विषय-इन्द्रियों के विषय। दारु-लकडी। जघान-नष्ट कर। विरागताई-वैराग्यपना।

२६४ काकताली-काकतालीय न्याय —कौए का वृक्ष के नीचे से उडते हुए मुंह का फाडना तथा सयोग से एकाएक उसके मुंह में आम्रफल का आजाना। नरभव-मनुष्य जन्म। सुकुल-उत्तम वंश। श्रवण-सुनना। ज्ञेय-पदार्थ। सौंज-सामग्री। हानी-नष्ट की। अनिष्ट-हानिकारक। इष्टता-प्रेम बुद्धि। अवगाहै-ग्रहण करता है। लाय लय-लौ लगाओ। समरसे-समता रूपी रस। सानी-सना हुआ।

१६५. थिनगाह—पूजा का स्थान। करिवसमाउ—हाथियों का समूह। कुरंग—हरिण। थली—स्थल। धूरि—धूलि, मल। धम मंदी—धमक में मंदी हुई। रिपु कम—कम शत्रुओं को। पड़ी—भाड़ी—छोड़ गई। मद—घर्षी। बनद—मचार। मदद गद ब्याल पिटारी—भव रोग रूपी सांप की टोकरी। पोषी—पोषण किया। शोषी—शोषण करना। सुर धनु—इन्द्र धनुष। शम—शांति।

१६६ गैसमा माग। मादमर—मिथ्याभिमान। बार-बार। मिसी—भरा। मिलपा—मिल बिगार। परन—पृथ्वी। फिरत—फिरता रहना। रौसमा—समूह। सुथल अच्छा देश, स्थान। छिटकायो—छोड़ा।

१६७ बिरचि—बिरक्त होकर। कुबजा कुबड़ी कुरूप पैदा कराने वाली कुमति। राधा—श्रीकृष्ण की पत्नी सदृश। बाधा-विघ्न। रती—सुरी। कारी—काली। बिरगुण—बैराग्य भावना। रत समाधि—अपने आप। कुमग—खराब स्थान।

१६८. शिवपुर—मोक्ष।

१६९. मृग—तृष्णा—मृग मरीचिका। जेवरी—रस्सी। महिप—राजा। तोय—पानी। क्षपय—बिनाश। परमाधन—आत्मा के विपरीत भाव। करता—करने वाला। काल लब्धि—योग्यता उपयुक्त समय। तोष—रोष—सन्तोष से नाराज ही रहा।

२६० मुनो-मनन। प्रशस्त-निर्मल। थिरा-स्थिर। भवाब्धि-संसार समुद्र। सादि-इतर निगोद अर्थात जिसमें जीव नित्य निगोद से निकल कर अन्य पर्याय धारण करके फिर निगोद में आते हैं। अनादि-नित्य निगोद-जिसने आज तक नित्य निगोद के अलावा कोई दूसरी पर्याय नहीं पाई। अङ्क-गिनती का अङ्क। उचरा-उचार शेष रहा। भव-पर्याय। अन्तर मुहूर्त-एक समय कम ४८ मिनट। गनेश्वरा-गणधर। छयासठ सहस त्रिशत छतीशा-छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस। तहाँते-निगोद से। नीसरा-निकला। भू-पृथ्वीकायिक। जल-जलकायिक। अनिल-वायुकायिक। अनल-तेजकायिक, अग्निकायिक। तरु-वनस्पतिकायिक। अनु धरीसु कुंथु कानमच्छ अवतरा-एकेन्द्रिय जीव से पचेन्द्रिय मच्छ तक जन्म धारण किया। खचर-आकाश में विचरण करने वाले जीव। खरा-श्रेष्ठ। लाग-लांघना, पार करना। अनुत्तरा-उत्कृष्ट आयु वाला देवपद।

२६१ बोधे-सम्बोधित किये। कोकसिरो-युक्ति। द्रव्य लिंग मुनि-बाह्य रूप से मुनि। उग्रतपन-घोर तपश्चरण। नव ग्रीवक-१६ वे स्वर्ग से ऊपर का स्थान। भवार्णव-संसार समुद्र।

२६२ देहाश्रित-शरीर के सहारे होने वाली। शिव-मगचारी-मोक्ष मार्ग पर चलने वाला। निज निवेद-अपने

आत्मज्ञ ज्ञान। विकल–फल रहित। द्विविध–जल तरंग और भाव। विकारी–नष्ट की।

२७३ बंध–आत्मा के बन्धन। समरना–याद करना। सम्भिभेद–अलग २ करना। छैनी–लोहे अथवा पत्थर को काटने वाली छैनी। परिहरना–छोड़ना। शर्के–शंका करे। परचाह–आत्मा से जो पर है उसकी इच्छा। भव भरना–जन्म तथा मरण।

२७४ ठगी–ठगी। जड़नि–पुद्गल अचेतन। जाग–जगाया। गहत–ग्रहण करना। जिनवृष–जैन धर्म। लही प्राप्त किया।

२७५ अधानी–अज्ञानी कपटी। आमापनी–हाथम टोल करना। बोध–ज्ञान। शर्म–धर्म कल्याण। विलोवत–मंथन करना बिलोना। सदन–घर। बिरानी–पराया। परिनमन–परिवर्तन। दृग ज्ञान चरन–दर्शन ज्ञान और चरित्र। बतावन–बतलाने वाली।

२७६ पुद्गल–शरीर जीव रहित पदार्थ। निरबै–निर्विकल्प। सिद्ध सदन–मुक्ति। जीव–जीवात्मा।

२७७ मोहमद–मोह रूपी मदिरा। अनादि–अनादि काल से। कुबोध–कुज्ञान। अमल–मल रहित। असारता–नि सार। कृमि बिट वानी–विष्टा के स्थान में भी होना–एक राजा मरकर विष्टा के स्थान में कीड़ा बना था उसकी कथा

प्रसिद्ध है। हरि —नारायण। गदगेह—रोग का घर। नेह—प्रेम। मलीन—मलयुक्त। छीन—क्षीण। करमकृत—कर्मों द्वारा किया हुआ। सुखहानी—सुखों को नष्ट करने वाली। चाह—इच्छाए। कुलघाती—वश को खाने वाली, नष्ट करने वाली। ज्ञानसुधासर—ज्ञान रूपी अमृत का सरोवर। शोषन—सुखाने के लिए। अमित—अपार। मृतु—मृत्यु। भवतन भोग—सासारिक शारीरिक भोग। रुप राग—द्वेष और प्रेम।

२७६ यारी-दोस्ती। भुजग-सर्प। डसत-डसना, काटना। नसत-नष्ट होना। अनन्ती-अनन्त वार। मृतु-कारी मारने वाला। तिसना-इच्छा। तृषा-प्यास। सेये-सेवन करने से। कुठारी-कुल्हाडी। केहरि-सिंह। करि-हाथी। अरी-अडी, वैरी। रचे-मग्न हुये। आक-आकड़ा। आम्रतनी-आम की। किंपाक-एक ऐसा फल जो देखने में सुन्दर किन्तु खाने मे दु खदायी। खगपति—देवताओं का राजा।

२८० भोरी-भोली। थिर-स्थिर। पोषत-पोषण करना। ममता-प्रेम। अपनावत-अपनाना। बरजोरी-जबरदस्ती से। मना-मन मे। विलसो-विलास करो। शिवगौरी-मोक्ष रूपी स्त्री। ज्ञान पियूष-ज्ञान रूपी अमृत।

२८१ चिदेश-चिदानन्द स्वरूप भगवान। वमू-मुह-मोह। दुचार-चार के दुगुणे अर्थात् अष्ट कर्म। चमू—

२८५ समरहि–सुख दुःख मे बराबर रहकर। तिल तुष मात्र–किञ्चित भी। विपरजै–विपरीत। जाति–पदार्थ। सुभाव–स्वभाव।

२८६. वदन–मुह। समीर–हवा। प्रतिबोध–सजग।

२८७ विस्तरती–फैलती। कज–कमल। भरमध्वात–भ्रम को नष्ट करना। वृष–धर्म। चित्स्वभावना–चैतन्य स्वभावपना। वर्तमान "फरती–वर्तमान मे नये कर्मो का वध नहीं होना तथा पूर्वकृत कर्मो का फल देकर निर्जरा होजाना, (झड़ जाना)। सुख–इन्द्रिय सुख। सरवाग उघरती–सर्व गुणों को दिखाती।

२८८ अपात्र–अयोग्य। पात्र–योग्य। वदगी–सलाम। उर–अत। नमै–नमस्कार करें। सराहै–सराहना करें। अवगाहै–प्राप्त होता है। दुसह–कठिनता से सहने योग्य। सम–बराबर। आयस–आज्ञा। महानग–कीमती नगीना, अमूल्य रत्न। पद्धति–विधि। गेय–जानने योग्य।

२८९ विगोया–भुलाया। मधुपाई–शराबी। इष्ट-समागम–प्रिय वस्तु की प्राप्ति। पाटकीट–रेशम का कीड़ा। आप आप–अपने आप। मेल–मैल। टोया–टटोला। समरस–समता रूपी रस।

२९० तें–तू। गेय–पदार्थ। परनाम–स्वभाव।

परनमत—पर्याय रूप में पलटना। अन्यथा—अन्य प्रकार से। अपमें—पानी में। अमल प्रकृति—अमल रस। ग्यानक—ज्ञानी। बरतें—प्रवर्ते। निवारै—निवारण करें।

२५१ उनमारग—खोटा मार्ग। प्रभुता इकी—प्रभुता के मद में मस्त रहना। जुग करि—काफी समय। मीडे—इच्छा करना मसलना।

२५२ वादि—वाद विवाद बकवाद। अलप—अल्पहीन। अपरके—अपना तथा पराया। उपारा—प्रकट। समायुक्त—व्यायुक्त। समल—मल सहित। धंम—धाम।

२५३ क्षेम—कुशल। अवगाह—ग्रहण करना। सुरभ—गंध। इनमई—इन ही रूप। सुमुख—निश्चित रूप से स्थित। धतूरा—एक ऐसा पेड़ जिसके खाने से नशा आवे। कल धौत—सोना चांदी। छाको—नशा हुआ। सिरावे—ठंडा होना। बोध सुधाने—ज्ञानामृत पीये।

२५४ छिन भई—क्षण भर में नष्ट होने वाला। पसारौं—फैलाव। विस्मै—आश्चर्य। सुहृद—मित्र। रीस—असमता। सद्रूप—सदाचार। बंध—बंधन। छिमा—क्षमा।

२५५ जिनमत—जैन सिद्धान्त। परमत जैनतर सिद्धान्त। रहस—रहस्य। करता—सृष्टि कर्त्ता। प्रमाण—सम्यग् ज्ञान।

गुरु मुख उदै-गुरु के मुख से उत्पन्न हुई अर्थात वाणी।

२९६. प्रवरतो-रहो। असम-असदृश। मिथ्याध्यात-मिथ्या अन्धकार। सुपर-स्वपर। भविक-भव्य जन।

२९७ आसरे-सहारे।

२९८ आवरण-पर्दा, ढकने वाली वस्तु। गत-चले गये। अतिशय-विशेषता। मोया-मोहित होकर। भूरि-बहुत।

२९९ त्रिपति-तृप्ति। नेमत-व्रत नियम। गोचर भइयो-सुनली।

३०० साख-टहनिया। भेषज-औषधि। बाहिज—बाह्य। सुदिढ़-सुदृढ। सुरथानै-स्वर्ग। स्वथा करो-हृदयगम करो। वृप-धर्म।

३०१ छुल्लक—क्षुल्लक—११ वीं प्रतिमा धारी श्रावक जो एक चादर तथा लगोटी रखता है। ऐअल—ऐलक—११ वीं प्रतिमाधारी श्रावक जो लगोटी मात्र परिग्रह रखते हैं। अलेख-बिना देखे। इस्थानक—स्थान। श्रुत विचार—शास्त्र-ज्ञान। उदर—पेट। तुत्त—तुच्छ, तुप मात्र। निरापेक्ष—अपेक्षा रहित। पिण्ड—समूह।

३०२ भवतव्य—होनेवाली, होनहार। लखी—देखी।

३१० तस्कर–चोर। बटमार–लुटेरे। कुसंतति–खराब सन्तान। छय–क्षय।

३११. जान की–जाने की। ठाढ़ी–खड़ी। बिलम–देरी। प्रयास–प्रयत्न। नसा–नष्ट कर।

३१२ आस–आशा। रास–राशि या समूह। विद्यमान–वर्तमान। भावी–भविष्यत् आगामी। अविचारी–विचार हीन सहचारी–साथ विचरण करने वाले।

३१३ नावरिया–नौका। पलटनि–समूह, फौज। दुइ-करियां–नाव की दो कड़िया-शुभ अशुभ कर्म। छिप्र–शीघ्र ही।

३१४ अबोध–अज्ञानी। व्याधि–रोगी। पियूष–अमृत। भेषज–औषधि। ठठेरा का नभचर–जिस प्रकार ठठेरा के यहां नभचर (तोता, मैना) आदि शब्द सुनने का आदी होकर निडर होजाता है।

३१५ पतीजे–विश्वास करे। जुदी–अलग। खलि–खल, तेल निकालने के बाद तिलों का भूसा। परनमन–परिणमन, उस रूप होजाना। निरुपाधि–उपाधि रहित।

३१६ परमौदारिक काय–मनुष्य तथा तिर्यन्चों के शरीर को 'औदारिक शरीर' कहते हैं। सुमन अलि–मन रूपी भौंरा।

पद सरोज-चरण कमल। लुब्ध-लालायित मोहित। विथा व्यथा।

२१७ लोच-लोक। श्रुत-शास्त्र। भाहत हैं-करते हैं।

२१८ अमीर-धनवान। गलत-गहने की तरह फिरने वाला। ज्ञान दृग वीरज सुख-अनन्त ज्ञान दर्शन वीर्य एवं सुख। निरत-लीन होना।

२१९ अनोकुह-वृक्ष। छोहत-कटना-छांटना। विरिया-बार। पूरब कृतविधि-पूर्व में किये गुभ कर्मों का। निबद्ध-सम्बन्ध। गुन-मनि-माल-गुण रूपी मणियों की माला।

२२ विधि-कर्म। पाटकीट-रेशम का कीड़ा। चिक्कास-चिकनाई। सलिल-जल। कनिक रस-धतूरा। मोमा-माया। अनुष्ठान-धार्मिक विधान।

२२१ दुष्कृत-खराब कार्य। अपर-अन्य। प्रयोग-उपाय। तस्कर माही-चोर द्वारा चुराई हुई। हीसिल-लगान। मार-मारने वाला। हीनाधिक देन लेन-देन के कम लेने के अधिक बाट तराजू आदि रखना। प्रतिरूपक विवहारक-अधिक मूल्य की वस्तु में वैसी ही कम मूल्य की वस्तु मिलाकर चलाना। व्रत-नियम धर्म। हत-करना। कारित-करवाना।

अनुमत–करने वाले की प्रशसा करना–अनुमोदना। समयातर–भविष्य। मुखी–सन्मुख। वृत–व्रताचरण, धर्म।

३२२ जिनश्रु तरसज्ञ—जैन शास्त्रों के मर्म को जानने वाले। निरिच्छ—इच्छा रहित। विथारा—विस्तार।

३२३ मृतिका—चिकनी मिट्टी। वारु—वालू रेत। वारा–देर। टुक—थोडे से। गरवाना—गर्व करना।

३२४ अयन—छह मास। अकारथ—व्यर्थ। विधि—कर्म।

३२५ शिवमाला—मोक्ष रूपी माला।

३२७ चारुदत्त—एक सेठ का पुत्र। गुप्त ग्रह–तहखाना। भीम हस्तते—भीम के हाथों से। धवल सेठ–एक सेठ जो राजा श्रीपाल का धर्म का वाप बना था तथा श्रीपाल की रानी मदन मञ्जूषा पर मोहित होकर श्रीपाल को समुद्र मे गिरा दिया। श्रीपाल—एक राजा जो कोढी हो जाने के कारण अपने चाचा द्वारा राज्य से वाहर निकाल दिये गये थे तथा जो कोटिभट के नाम से भी प्रसिद्ध थे। श्रीपाल चरम शरीरी थे। डील–शरीर। ग्रामकूट—गाव का मुखिया–सत्यघोष नामक एक पुरोहित था। जो असत्य वोलने में अपनी जीभ काटने का दावा करता था। एक वार एक सेठ के पाच रत्न धरोहर

रस जान के बाद वापस मांगने पर इन्कार कर दिया। बात राजा तक पहुँची। जांच करने के बाद राजा ने सत्यघोष को असत्य बोलने के अपराध में तीन दण्ड दिये। जिसमें एक दण्ड गोबर की थाली भरकर उसे खिलाने का भी था।

१०८ महस—हजार। मैन—पंक्ति। सैन—शयन। मविसैन—अभिजन।

२२० रापन—अनुरक्त होना। जोयो—देखा। मोयो—मोहित हुआ। विगोयो—व्यर्थ खोया। शिव फल—मोक्षफल। जरवों—जलता हुआ। टोवो—देखा। ठोव—स्थान।

२२१ परमेष्ठेयो—परमस्थ। मोहराय—मोह राजा। किंकर—नौकर।

२२२ महासेन—भगवान चन्द्रप्रभ के पिता। चन्द्र प्रभ आठवें तीर्थंकर। बदन—मुख। रदन—दांत। सत—सात। पच्चीस—पच्चीस। शत आठ—एक सौ आठ। अपसरा—नाचने वाली देवियां। कोडि—करोड़ कोटि।

२२३ भर्मे—भ्रम। पहन—पाहन पाषाण।

२२४ मावर—नहीं तो। सुचारी—सरचारी बुरी तरह। पंचम काल—पांचवां काल काल के मुख्यत दो भेद हैं—उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी। प्रत्येक में छः काल होते हैं—(१) सुखमा सुखमा (२) सुखमा (३) सुखमा दुखमा (४) दुखमा सुखमा (५) दुखमा (६) दुखमा दुखमा। उत्सर्पिणी काल में यह क्रम उल्टा चलता है।

३३५ दौ दाभ्यो-से जला। मदोदरी-रावण की स्त्री। भरतेरो-भर्त्तार, पति। हेरो-देखो।

३३६ माघनन्द-माघनन्दि नाम के आचार्य। पारणै हेत-उपवास के बाद भोजन करने के लिए। धी-लडकी। उदयागत-उदय मे आये हुये। विशिष्ट-विशेपता युक्त। भावनि-होनहार। जरद कुवर-जिनके हाथों श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई थी। बलभद्र-वलदेव।

३३७ कर्म रिपु-कर्म शत्रु। अष्टादश-अठारह। आकर-खान, खजाने। ठाकुर-भगवान्।

३३८ विपयारा-ग्रहण करने योग्य। रुज-रोग। स्कध-दो या दो से अधिक परमाणुओं का समूह। अणु-पुद्गल का सबसे छोटा टुकडा जिसका फिर कोई टुकडा न हो सके। पतियारा-विश्वास।

३३९ जिनागम-जैन वाड्मय। शमदम-शमन तथा दमन की। निरजरा-कर्मों का खिरना, झड़ना। परम्परा-सिलसिले से।

३४० आठों जाम-आठों पहर।

३४१ अविच्छिन्न-लगातार। अगाध-अथाह। सप्तभंग-स्यादस्ति नास्ति आदि ७ अपेक्षाएँ। मरालवृन्द-हसों का समूह। अवगाहन-ग्रहण करना, डुबकी लगाकर स्नान करना। प्रमानी-प्रमाण मानना।

३४२ अक्ष–अक्ष इन्द्रियां। गोष्ठी—सभा। विघटे–नाश होना। पक्षयुत–पंखों से युक्त।

३४३ पारि–पाश। दुद्धर–भयानक। ठेगा अंगूठा। इन्द्रजाल–जादूगरी।

३४४ अबाधित–जिसे किसी प्रकार बाधा न पहुंचाई जा सके। दहन अग्नि। दहत–जलाती है। तदगत–उसमें रहने वाली। वरणादिक–रूप रसादि। एक क्षेत्र अवगाही–एक ही क्षेत्र में रहने वाले। किल्लावत–खाने के समान। निरद्वन्द–जिसका कोई विरोध करने वाला न हो। निरामय–निर्दोष। सिद्ध समानी–सिद्धों के समान। अबंक–सीधा।

३४५ वारुणी–मद्य। वरंद–समूह। परम ध्यान–शुक्ल ध्यान उत्कृष्ट ध्यान। पूर–प्रवाह। डोले–इधर से उधर पड़कना। निवत–निश्चित। समोये—समेटे। तोये–तेरे।

३४६ बगेर–तीतर अथवा उस पक्षी जैसी छोटी चिड़िया।

३४७ आनि–अन्य। जतन–यत्न। अजहुं–अब भी। सुजाण–चतुर। मटक्यो–हिलना। मार्जारी–बिल्ली। मीच–मृत्यु। मस–पकड़ना। कीरसु–तोते की तरह। मार्जारीमीच——पटक्यो–मृत्यु रूपी बिल्ली तेरे शरीर को तोते तरह पर पटक रही है। अब तू संभल। ठद्दु–शठ। विपदरी–विपदा आपदा।

३४८. किरन–किरणों। उद्योत–प्रकाश। जोवत–देखते हैं।

३४९ पेखो–देखो। सहस किरण–सहस्त्र किरणों वाला सूर्य। आभा–कान्ति। भूति विभूति–वैभव। दिवाकर–सूर्य। अरविन्द–कमल।

३५० श्याम–नेमिनाथ। मधुरी–मीठी। विभूषण–आभूषण। माननी–स्त्री। तंत-मंत्र–जादू टोना। गजगमनी–हथिनी के समान चाल चलने वाली। कामिनी–स्त्री, राजुल।

३५१ वामा–भ० पार्श्वनाथ की माता। नव–नौ। कर–हाथ। शिरनामी–नमस्कार करके। पचाचार–आचार ५ प्रकार का होता है–दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। आपो–पार उतारो।

३५२ घट–घड़ा। पटादि–कपड़ा। गौन–गमन। आनगति–अन्य गति में। नेरौं–नजदीक। सदन–घर।

३५३ लाहो–लाभ। ते–वे। खेह–धूल।

३५४ नयो–नमस्कार किया। पूजित–पूजा करने से। अबलग–अब तक। उधारो–उद्धार करो।

३५५ कनक–स्वर्ण। मोहनी–स्त्री। विस–विषय।

३५६ भटभेडा–टक्करें। गोती–एक ही गोत्र वाले भाई-बन्धु। नाती–भानजे दोहिते आदि। सुख केरा–सुख प्राप्त

करना। तपति-गर्मी। सेया-सेवा की, अराधना की। हरा-
रैसा। फेरा-चक्कर।

३५७ बिसरायौ-भुला दिया।

३५८ मितां-मित्र। सुपनवा-स्वप्न का। हटवाडेवा-
बाजार दिन बाजार लगने का। गहेला-पागल हो रहा है।
गैला—मार्ग। बेला-समय। महेला-महल।

३५९ हरी-इन्द्र। अर्गजा-सुगन्धित द्रव्य चन्दन।
पाटंबर-वस्त्र। जाचक-माँगने वाला।

३६० भोर-प्रात:काल। मनुवा-मन। रैन-रात्रि।
बिहानी-प्रात। अमृत बेला-प्रात:काल।

३६१ अवधू-एक प्रकार का योगी आत्मन्। मठ मैं-
मन्दिर में शरीर में। बरती-बत्ती। सरची-धन।
बाँधी-बाँटना देना। बट-हिस्सा।

३६२ पाँच भूमि-पंचभूत—पृथ्वी आप तेज वायु और
आकाश। ब्रह्म-ब्रह्मन्। चक्री-चक्रवर्ति। लहना-लाभ।
दी से-दिखाई देना। परमुख-प्रमुख।

३६३ सकुचाय-संकोच करना। न्याव-तरह। कोटि—
करोड़ों। विकल्प-विचार। व्याधि-दुःख रोग। वेदन—
अनुभव। खड़ी द्वार अपराध—मुक्तरमा के लिए खिंचट रहे हैं।
अघात-अघाय। विरमाव-दिल में ठहराने को।

३६४. पामीजे–प्राप्त होता है। भव–जन्म-जन्म में। भीजे–भीगना।

३६५ रहमान–रहिम। कान–श्रीकृष्ण। भाजन–बर्तन। मृत्तिका-मिट्टी। खण्ड–अलग अलग टुकड़े। कल्पनारोपित—कल्पना के आधार पर। खपे–क्षय करे, नष्ट करे। चिन्है–पहिचाने।

३६६ रचक–तनिक, अल्प। पाच मिथ्यात–एकात, सशय, विपरीत, अज्ञान, विनय ये पाच प्रकार का मिथ्यात्व है। एह थी–जगी हुई थी। नेह–स्नेह, प्रेम। ताहू थी–उनके वश होकर। सुराना–मद्यपायी, शराबी। कनक बीज–धतूरे का बीज। अरहट घटिका–अरहट की चकरी, कुए पानी निकालने का गोल यत्र। नवि–नहीं चोलना–चोला।

३६७ तिय–स्त्री। इक चिति–एक चित होकर। कुच–स्तन। नवल–नवीन। छबीली–सुन्दर। दशमुख–रावण। सरिसे–सरीखे, समान। सटके–ग्रहण करे।

३६८. जलहुँ–जल का। पतासा–बुदबुदा। भासा–दिखाई दिया। असण–लालिमा। छकि है–मस्त हो रहा है। गजकरन चलासा—हाथी के कान के समान चचल। सासा–चिता। हुलासा–प्रसन्न।

३६९ कजली वन–वह वन जहा हाथी रहते हैं। कुजरी–हथिनी। मीन–मछली। समद–समुद्र। मउ–मरना।

मुणि गयो-मंद हो गया। चरमु-चक्षु। पचिक-शिकारी। मुक्कीयो-छोड़ा। मुच्छर्ग-वश में हुआ। भो भो-भव भव में। मुहरया-मोह। भने-कहे। संत-सत्व।

१७० पोटली-गाँठ।

१७१ अभेवा-अभेद भेद रहित। जिह-जिस। शिवपट-मोक्ष के किवाड़। वचनातीत-कहने में न आवे।

१७२. तमी-तभी। आतु कुल सिरदार-यादव वंश में सिरमौर।

१७३ बरजी-मना की हुई रोकी हुई। चल-चैन।

१७४ दस विधि धर्म-दस प्रकार धर्म-उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य। मांदल-एक प्रकार का मृदंग (ढाल रूप मंदिर)। आंगार-अग्नि।

१७६ वसि कर-वश में कर। बंधी-बंधकर। परि मल-सुगंधि। अक्ष-इन्द्रिय। मोहे-वश हारर। मथ खावे-पकड़के गिराना। पारधि-शिकारी। कुरंग-हिरन। पया-पाँचों। सात-सुखसी। सुखायत-सुख का कर। असंग-अवस्था कभी नष्ट नहीं होने वाला।

१७७. चगा-चतुरा। आगा-मकान। नाग-हाथी। तुरग-घोड़ा (तुरग)। अगा-हवा में उड़ने वाला (विद्याधर)।

कगा–कोए की आख के समान चचल । अमुलिक–अमोलक–कवि के पिता का नाम । पगा–अनुरक्त हो ।

३७८. दुरै–छिपे । थिरता–स्थिरता ।

३७६ निधि–भण्डार । विगाय–गमाना । कई–कही । निरमई–कुबुद्धि । आपुमई–अपने समान । वलि गई–बलिहारी जाना ।

३८० जाई–बेटी । प्रतिहरि–प्रति नारायण.—जैन मान्यतानुसार रावण आठवे प्रतिनारायण थे । अघाई–पाप का स्थान । श्रेणिक–राजगृही के राजा बिवसार जो बाद मे जैन हो गया था । प्रारम्भ मे किये गये पापों के वध के कारण राजा श्रेणिक को नर्क जाना पडा । पाडव–पाचों पाडव । चक्री भरत–भरत चक्रवर्त्ती —प्रथम तीर्थंकर भ० आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र जिनका मान भग अपने छोटे भाई बाहुबलि से हारने पर हुआ था । कोटीध्वज–सती मैना सुन्दरी का पति राजा श्रीपाल ।

३८१ विघटावै–उडावे, नष्ट करें । भ्रम–मिथ्यात्व । विरचावै–विरक्त होवे । एक देश–अणुव्रत, श्रावकों (गृहस्थों) के व्रत । सकलदेश–महाव्रत, मुनियों के व्रत । द्रव्य कर्म–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म द्रव्य कर्म कहलाते हैं । नो कर्म—शरीरादिक नो कर्म कहलाते हैं । रागादिक–रागद्वेष रूप भाव कर्म । घातिघातकर–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और

अन्तराय इन चार घातियां कर्मों के नाश कर। ज्ञेय-जानने योग्य पदार्थ। पजय-पर्याय।

१८३ शुद्ध नय-निश्चय नय की अपेक्षा। बंध बिन-कर्म बंध के स्पर्श के बिना। नियत-निश्चित। निर्विशेष—पूर्ण।

१८४ इक ठार-एक स्थान पर। चोवो-चंदन। रीझ—प्रसन्न होना।

१८५ सरे-काम सरना।

१८६ वेदना-दुःख। सहारी-सहन करना। सुगति-स्वर्ग सुख संपदा। सुकति-मुक्ति। नेह-कृपा।

१८७ हलक-कर्मों के बोझे से रहित। सिरभार-कर्मों के बोझ से लदे हुए। तारक-तारने वाले।

१८८ डायन-डाकिनी। मधु बिन्दु-शहद की बूंद के समान अल्प। विषय—इन्द्रिय सुख। भवकूप—संसार रूपी बड़े कुए में।

१८९ तिल तुष-रंच मात्र। ज्ञानावरण-ज्ञानावरणीय कर्म। अदर्शन-दर्शनावरणीय कर्म। गरपो-नष्ट किया। व्याधि-रागद्वेष आदि उपाधि भाव। आकिंचन-अप रमा अन्तराय-घातिया कर्मों में से एक भेद। गरब-अभिमान।

१९० प्रपंच-पाखण्ड निरहि-इच्छा रहित। निठुरता

निष्ठुरता। अघनग-पापों के पहाड़। कदरा-गुफा। कुलाचल—पर्वत। फू के-जलाये। मृदुभाव-कोमल भाव। निरवाछक-इच्छा रहित। केवलनूर-केवल ज्ञान। शिवपंथ-मोक्ष मार्ग। सनातन-परम्परागत।

३६१. विथा- व्यथा, दु ख। विपम ज्वर-तीव्र बुखार। तिहारी-आपकी। धन्वन्तर-आयुर्वेद के प्रतिष्ठापक वैद्य धन्वन्तरि जो समुद्र मथन के समय प्राप्त होने वाले रत्नों में से एक थे। अनारी-अनाड़ी, अज्ञानी। टहल-सेवा, बदगी।

३६२ गणधार—गणधर, गणपति। निरखत—देखना। प्रभुढिग-प्रभु के पास।

३६३ बहुरगी-अनेक रंगों वाला। परसगी-अन्य के साथ रहने वाला। दुरावत-छिपाते हो। परजै-पर्याय। अमित-बेहद। सधन-धनवान। विविध-अनेक प्रकार की। परसाद-कृपा।

३६४ सुकृत-अच्छे कार्य। सुकृत-धर्म। सित-श्वेत। नीरा-जल। गहीरा-धारण करने वाला। निजविधि-अपने आप। अरस-रस रहित। अगंध-गध रहित। अनीतन—परिवर्तन रहित। अपरस-स्पर्श रहित। पीरा-पीला। कीरा-कीड़ा। विषम भव पीरा—ससार की असह्य पीड़ा।

३६५. सलव-कर। स्हैना-तहसील का वसूली करने वाला

अपराधी। कुवे-शरीर रूपी कूप। पणिहारी-पानी भरने वाली इन्द्रियां। थुर गया-थक गया। पानी-शरीर की शक्ति। बिलख रही रो रही। बालू की रेत-बालू रेत के समान शरीर। ओस की टाटी-आंखें आदि। हंस-आत्मा। माटी-मृतक शरीर। सोन का-स्वर्ण का। रूप का—चांदी का। हाकिम आत्मा। करा-शरीर।

३६६ पास-पार्श्वनाथ। ससि-चन्द्रमा। बिगस-खिल गये। पसरी-फैली। बिकसा-विकसित। पखीयन-पक्षीगण। मास-भोजन। तमचुर-मुर्गा। भास-भाषा (बोली)।

३६७ मानि लै-ध्यान करले। सुर-इन्द्र। भु जि—भुगत कर। करीने-करसे। बांनि-भारत। कांनि छैं-कानों से सुनसे।

३६८. कोठी-दुकान। सराफी-व्यापार की। भव बिस्तार—संसार के बढ़ाने को। बाणिज—व्यापार। परिख-पारखी परखने वाला। तगादे—तकाजा, उतावलापना जल्दी। रूजनामा-रोजनामचा। बरसाई-बरसा बरसी के दम। बहुधारी-बुद्धि। कांटा-तोलने का कांटा। तोला-१२ मासे का एक तोला। भडेवा—भाड़ा-भाड़ी।

३६६. तरुणापे-युवावस्था। त्रियराज-स्त्रियों में। बिरध-वृद्ध। गरीबनिवाज-गरीबों पर कृपा करने वाले।

बाज—घोड़े। चुगल्लि-चुगल। पांच चोर—पांचों पाप। मोसै—मसोसना, मसलना।

५००. निर विकल्प—विकल्प रहित। अनुभूति—अनुभव करना। शाश्वती—हमेशा।

५०१. अनुरागो—अनुराग करो, प्रेम करो। भंडै—गालियां निकाले। पञ्च—पंच लोग। विहडै—बुरा भला कहे। पदस्थ—पैठ, इज्जत। मड़ै-जमे। भाख्वी—कही। उजलाये-कीर्ति घटे। पञ्च-भेद युत—चोरी के पांचों अतिचार सहित—(१) चोरी का उपाय बताना, (२) चोरी का माल लेना, (३) राजाज्ञा का उल्लंघन अर्थात् हासिल-टैक्स आदि की चोरी करना (४) अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, (५) नापने तोलने के गज, बाट आदि लेने के ज्यादा तथा देने के कम रखना, कम तोलना, नापना।

॥ कवि नामानुक्रमणिका ॥

क्र० सं०	कवि का नाम	पद संख्या	पृष्ठ संख्या
८०	माहिकराम	३४६—३४९	३०३—०४
८१	ज्ञानानन्द	३५०—३५२	३०५—३०८
८२	विनयविजय	३५३	३०९
८३	श्यामसुन्दर	३५४	३१०
८४	चिदानन्द	३५५	३११
८५	भ० सुरेन्द्रकीर्ति	३५६—३५८	३११—३१३
८६	देवाब्रह्म	३५९—३६०	३१४—३१६
८७	बिहारीदास	३६१	३१६—३१७
८८.	टेमराज	३६२—३६४	३१७—३१९
८९.	हीराचन्द	३६५—३६७	३१९—३२०
९	हीरालाल	३६८—३६८	३२१—३२२
९१	मानिकचन्द	३६९—३८३	३२२—३२९
९२.	धनपाल	३८४—३८७	३२७—३२९
९३	मगनानन्द	३८८—३९३	३२९—३३४
९४	बुधीदास	३९४	३३४—३३५
९५	घासीराम	३९५	३३५
९६	जिनहर्ष	३९६	३३६
९७	किशनसिंह	३९७	३३६—३३७
९८	साहबराम	३९८	३३७—३३८
९९	विनोदीलाल	३९९	३३८—३३९
४	पारसदास	४०१	३४०

रागानुक्रमणिका

राग का नाम	पद संख्या
झंझोटी	—१९८ ।
टोडी	—२५८ ।
दरबारी कान्हरो	—१२१ ।
दीपचन्दी	—२८९, ३२० ।
देवगधार	—२८, २१६ ।
देशाख	—४, ५ ।
देशाखप्रभाति	—२५ ।
देशीचाल	—३७९ ।
धनाश्री	—१७, १८ २३, ८१, ८९, १९६ ।
नट	—१९७, ३४९ ।
नट नारायण	—२, १५, ९६, ६७, ६८ ।
परज	—२०६, २७२ ।
प्रभाती	—२२, ३९१ ।
पालू	—१८४ ।
पूरवी	—१९४, २२१ ।
बरवा	—२४९ ।
बसंत	३४४, ३८१ ।
बिलावल	—३०, ५३, ५४, ६३, ८४, ८५, ९४, १०१, १०२, १०४, १०६, ११३, ११९, १२६, १२७, २०८, २४७, २९६, २९७, ३०६, ३२९, ३४०, ३५४ ।

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पत्र पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८— ८	तां टक	ताटक
२०—१०	आपरे	आयु रे
२६—१२	बन	विनु
३०—१८	विपति	विपनि
३२—१०	चि	चित
३२—२०	मरूप	अरूप
३८—१६	कुल	व्याकुल
३८—१६	समुझ तुहि तु	समुझतु हितु
३६— २	जि	वनि
४६— ३	अन	आन
५०— ८	ते तजत	ते न तजत
५३—११	धन	धुन
५४—२०	रजन	भजन
६८— ८	अपको	अपनो
७१— ३	गई	भई
६४— ३	सुविधा	दुविधा
६६—१२	भूले	भूले
६६—१५	धन	धर्म
१०२—१८	भव	भव भव
१०८—१०	काहिप त	कहियत
१२१—१७	धचन	बचन
१३०—१६	लेखै	लखै
१३२— ६	बहु तन	बहुत न
१३५—१३	माब	मात
१३६—१६	सपत	सत